ISSN 0976-0849

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

वर्ष 18 • अंक 18 • आश्विन कृष्ण चतुर्थी, विक्रम संवत् 2081 • सितम्बर 2024

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 10वीं पुण्यतिथि

की

पावन स्मृति में समर्पित

महाराणा प्रताप महाविद्यालय

जंगल धूसड़, गोरखपुर

की

शोध पत्रिका

विमर्श

ISSN 0976-0849

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Editorial Advisory Board

U.P. Singh, Ex Vice Chancellor, V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur

Makkhan Lal, Director, Delhi Institute of Heritage Research and Management, New Delhi

Mrinal Shankar Raste, Ex Vice Chancellor, Symbiosis International University, Pune

Surendra Dubey, Ex Vice Chancellor, Siddhartha University, Kapilvastu, Siddharthanagar

V.K. Singh, Ex Vice Chancellor, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shri Prakash Mani Tripathi, Vice Chancellor, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak (M.P.)

Chandrashekhar, Vice Chancellor, Raja Mahendra Pratap Singh Vishwavidyalaya, Aligarh

Murli Manohar Pathak, Vice Chancellor, Sri Lal Bahadur Shastri Central Sanskrit University, New Delhi

Rajesh Kumar Singh, Ex Vice Chancellor, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

A.K. Singh, Vice Chancellor, Mahayogi Guru Gorakhnath Ayush Vishwavidyalaya, Gorakhpur

A.K. Vajpai, Vice Chancellor, Mahayogi Gorakhnath University, Gorakhpur

Sadanand Prasad Gupta, Ex Executive Chairman, U.P. Hindi Sansthan, Lucknow

V.K. Srivastava, Professor, Geography. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pratibha Khanna, Professor, Education. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Das, Professor, Chemistry, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.K. Singh, Professor, Zoology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajawant Rao, Professor, Ancient History, Archaeology & Culture. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mahesh Kumar Sharan, Professor, Maghadh University, Bodhgaya (Bihar)

Shailja Singh, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shobha Gaur, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Ravi Shankar Singh, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Vinod Kumar Singh, Professor, Defence & Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Harsh Sinha, Professor, Defence and Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Himanshu Chaturvedi, Professor, History, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shikha Singh, Professor, English, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pragya Mishra, Professor, Ancient History, Ram Manohar Lohia Awadh University, Faizabad

Rajesh Singh, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Vivek Nigam, Professor, Economics, Ewing Christian College, Prayagraj

Divya Rani Singh, Professor, Home Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Raj Sharan Shahi, Professor, Education, Bhimrao Ambedkar Central University, Lucknow

V. Ramanathan, Professor, Chemistry Department, IIT-BHU, Varanasi

D.S. Ajitha, Principal, Guru Gorakshanath School of Nursing, Gorakhpur

Mrityunjay Kumar, Renowned Journalist

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Volume 18 • Number 18 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2081 • September 2024

Chief Editor

Dr. Pradeep Kumar Rao

Editor

Dr. Subodh Kumar Mishra

Co-editor

Dr. Ikshwaku Pratap Singh

The Journal of

Maharana Pratap P.G. College

Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)-273014

This Journal is a *Peer Reviewed Referral* Volume.

ISSN- 0976-0849

Vol. 18 • Number 18 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2081 • September 2024

Vimarsh, an interdisciplinary *refereed or peer reviewed* is an annual and bilingual journal of Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP).

Copyright of the published articles, including abstracts, vests in the Editors. The objective is to ensure full Copyright protection and to disseminate the articles, and the journal, to the widest possible readership. Authors may use the article elsewhere after obtaining prior permission from the editors.

Research Papers related to Interdiscilinary subjects are invited for publication in the journal. Research papers, book reviews, Subscription and other enquiries should be sent to – Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP) - 273014, Mob. : 9794299451, 9452971570, 7376584058. You may also e-mail your contributions and correspondence at ***vimarshmpdc@gmail.com.***

Guidelines for Contributors given on the inner side of the back cover.

The Editors and the Publisher can not be held responsible for errors and any consequences arising from the use of information contained in this journal. The views and opinions expressed do not necessarily reflect those of the editors and the publisher.

Designed & Printed at :
Moti Paper Convertors, Gorakhpur Mob. : 9415282504

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

पुण्य-स्मृति

गोरक्षपीठ द्वारा संचालित
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
शिक्षा क्षेत्र की एक अग्रणी संस्था है।
पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोरखपुर को केन्द्र बनाकर
प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक लगभग चार दर्जन
शिक्षण संस्थानों का संचालन करने वाले
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
की स्थापना 1932 ई. में
गोरक्षपीठाधीश्वर
महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज
ने की थी और इसे विशाल वटवृक्ष का रूप दिया
उनके शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने।
महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़
इसी महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
जैसे वटवृक्ष की एक शाखा है।
महाविद्यालय के संस्थापक परमपूज्य
राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की
10वीं पुण्यतिथि के पावन अवसर पर
सादर समर्पित है

विमर्श-2024

वन्दे भारतमातरम् !!

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्षं तद्भारत नाम भारती यत्र सन्ततिः।। वा.पु.

पृथ्वी का वह भाग जो समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है, भारतवर्ष है, जहाँ भारती प्रजा रहती है।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।

यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्याः भोगभूमयः।। वा.पु.

इस जम्बू-द्वीप में भी, हे महामुने! भारतवर्ष श्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है और बाकी भोग-भूमियाँ ही हैं।

अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।

कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्।। वा.पु.

भारतवर्ष में जीव हजारों जन्मों के अनन्तर पुण्य जुटाने से कदाचित् मनुष्य जन्म प्राप्त करता है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। मनु.

इस देश में जन्म पाए हुए श्रेष्ठ जन्मा पुरुषों से पृथिवी के सारे मनुष्य अपने-अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें।

रत्नाकराधौतपदां हिमालयकिरीटिनीम्।

ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्यां वन्दे भारतमातरम्।।

समुद्र जिसके पाँव पखार रहा है, हिमालय जिसका किरीट है और जो ब्रह्मर्षि-राजर्षिरूप रत्नों से समृद्ध हैं, ऐसी भारत-माता की मैं वन्दना करता हूँ।

राष्ट्र-सन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

जन्म तिथि : 18 मई, 1919
जन्म स्थान : ग्राम-कांडी, जिला-गढ़वाल (उत्तरांचल)
पारिवारिक स्थिति : बाल ब्रह्मचारी
गुरु का नाम : ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजनाथ जी महाराज
शिक्षा : शास्त्री संस्कृत (वाराणसी एवं हरिद्वार में अध्ययन)
कार्य क्षेत्र : हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये सतत कार्यरत अनेक धार्मिक संगठनों से सम्बद्ध

राजनीतिक उपलब्धियाँ

लोकसभा सदस्य

- 1970 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - निर्दलीय
- 1989 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - हिन्दू महासभा
- 1991 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - भारतीय जनता पार्टी
- 1996 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - भारतीय जनता पार्टी

विधानसभा सदस्य

- 1962 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1967 - मानीराम - निर्दलीय
- 1969 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1974 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1977 - मानीराम - जनता पार्टी

संसदीय जिम्मेदारियाँ

- 1971 - सदस्य, परामर्शदात्री समिति, गृह मंत्रालय (भारत सरकार)
- 1989 - सदस्य, परामर्शदात्री समिति, गृह मंत्रालय (भारत सरकार)
- 1993 - संसदीय प्रणाली व्यवस्था लागू होने पर गृह मंत्रालय के सदस्य

महत्वपूर्ण पद (ब्रह्मलीन होने के तिथि से पूर्व)

- उपाध्यक्ष, आल इण्डिया हिन्दू महासभा
- मेम्बर, आल इण्डिया हिन्दू महासभा
- महासचिव, आल इण्डिया हिन्दू महासभा

धार्मिक पद (ब्रह्मलीन होने के तिथि से पूर्व)

- गोरक्षपीठाधीश्वर-श्री गोरक्षनाथ पीठ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्रीराम जन्म भूमि मुक्ति यज्ञ समिति
- अध्यक्ष-अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारहपंथ- योगी महासभा, हरिद्वार
- अध्यक्ष-श्रीराम जन्म भूमि उच्चाधिकार समिति
- अध्यक्ष-गुरु गोरखनाथ सेवा संस्थान, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्रीराम जानकी मन्दिर, झुंगिया बाजार, गोरखपुर

राष्ट्र-सन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

शिक्षा के क्षेत्र में

अध्यक्ष (ब्रह्मलीन होने की तिथि से पूर्व) -

- महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ महाविद्यालय, चौक, महजराजगंज
- दिग्विजयनाथ एल.टी. प्रशिक्षण महाविद्यालय, गोरखपुर
- दिग्विजयनाथ इण्टर कालेज, चौक बाजार, महराजगंज
- महाराणा प्रताप कृषक इण्टर कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- दिग्विजयनाथ जूनियम हाई स्कूल, चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर
- गुरु गोरक्षनाथ विद्यापीठ, पितेश्वरनाथ मन्दिर, भरोहिया, पीपीगंज, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, मंगलादेवी मन्दिर, बेतियाहाता, गोरखपुर
- महन्त दिग्विजयनाथ बालिका विद्यालय, चौक, महराजगंज
- आदिशक्ति माँ पाटेश्वरी पब्लिक स्कूल, देवीपाटन, तुलसीपुर, बलरामपुर
- योगिराज बाबा गम्भीरनाथ सेवाश्रम समिति, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- गुरु श्रीगोरक्षनाथ स्कूल ऑफ नर्सिंग, गोरखनाथ, गोरखपुर
- गुरु श्री गोरखनाथ संस्कृत विद्यालय, मैदागिन, वाराणसी

प्रबंधक (ब्रह्मलीन होने की तिथि से पूर्व) -

- दिग्विजयनाथ स्तनातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप महिला महाविद्यालय, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरक्षनाथ, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप इण्टर कालेज, गोरखपुर
- गोरक्षनाथ उ.मा. विद्यालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप पूर्व माध्यमिक विद्यालय, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप पूर्व माध्यमिक विद्यालय, लालडिग्गी, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप शिशु शिक्षा विहार, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, गोरखपुर

चिकित्सा के क्षेत्र में (ब्रह्मलीन होने की तिथि से पूर्व)

- अध्यक्ष-गुरु श्री गोरखनाथ चिकित्सालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-महन्त दिग्विजयनाथ आयुर्वेद चिकित्सालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्री माँ पाटेश्वरी सेवाश्रम चिकित्सालय, देवीपाटन, तुलसीपुर, बलरामपुर
- अध्यक्ष-गुरु गोरखनाथ इन्स्टीच्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज, सोनबरसा, मानीराम, गोरखपुर

योग के क्षेत्र में (ब्रह्मलीन होने की तिथि से पूर्व)

अध्यक्ष-महायोगी गुरु गोरखनाथ योग संस्थान, गोरखनाथ, गोरखपुर

ब्रह्मलीन	: 12 सितम्बर 2014
जनता दर्शन	: 13 सितम्बर 2014
समाधि	: 14 सितम्बर 2014

जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी
जो हठि राखे धर्म को, तिहिं राखै करतार।।

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

स्मृति सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला

दिनांक 21 से 27 अगस्त, 2024

उद्घाटन समारोह

बुधवार, 21 अगस्त, 2024

अध्यक्ष : **प्रो. पूनम टण्डन**
माननीय कुलपति
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)

मुख्य अतिथि : **प्रो. जे.पी. पाण्डेय**
माननीय कुलपति
डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम तकनीकि विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

समापन समारोह

मंगलवार, 27 अगस्त, 2024

अध्यक्ष : **प्रो. कविता शाह**
माननीय कुलपति
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)

मुख्य अतिथि : **प्रो. मदनलाल ब्रह्म भट्ट**
माननीय कुलपति
हेमवती नन्दन बहुगुणा चिकित्सा सेवा विश्वविद्यालय, देहरादून, उत्तराखण्ड

व्याख्यान कार्यक्रम

गुरुवार, 22 अगस्त, 2024 • पूर्वाह्न 11.00 बजे से

-: विषय :-

व्यक्तित्व निर्माण की दिशा

-: वक्ता :-

डॉ. वेद प्रकाश पाण्डेय

से. नि. प्राचार्य, किसान पी.जी. कालेज, सेवरही, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश

शुक्रवार, 23 अगस्त, 2024 • पूर्वाह्न 11.00 बजे से

-: विषय :-

भाषायी स्वत्वबोध और हिन्दी

-: वक्ता :-

प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त

पूर्व कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

शनिवार, 24 अगस्त, 2024 • पूर्वाह्न 11.00 बजे से

-: विषय :-

हिन्दू, हिन्दुइज्म एवं हिन्दुत्व : वास्तविकता एवं भ्रांतियाँ

-: वक्ता :-

डॉ. नचिकेता तिवारी

आचार्य, मकैनिकल इंजीनियरिंग विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर, उत्तर प्रदेश

रविवार, 25 अगस्त, 2024 • पूर्वाह्न 11.00 बजे से

-: विषय :-

संस्कार, संस्कृति एवं ज्ञान परम्परा

-: वक्ता :-

प्रो. मज़हर आसिफ

आचार्य, भाषा एवं साहित्य संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सोमवार, 26 अगस्त, 2024 • पूर्वाह्न 11.00 बजे से

-: विषय :-

विद्यार्थी जीवन में योग की महत्ता

-: वक्ता :-

डॉ. बलवान सिंह

से.नि. आचार्य, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग,
भटवली पी.जी. कालेज, भटवली, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

Vimarsh

An Interdisciplinary Journal

Volume 18 • Number 18 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2081 • September 2024

CONTENTS

Articles **Pages**

1. महायोगी गुरु गोरखनाथ का सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण
डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त 1

2. नाथपन्थी शब्दावली के चर्चित शब्द
डॉ. आद्या प्रसाद द्विवेदी 14

3. नाथपंथ : दर्शन और साधना
प्रो. द्वारका नाथ 21

4. नाथ दर्शन में मोक्ष की अवधारणा: भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में
डॉ. सुनील कुमार 30

5. भारतीय संत परम्परा एवं नाथपंथ
डॉ. कुशलनाथ मिश्रा एवं डॉ. हर्षवर्धन सिंह 40

6. नाथपन्थ में शिव तत्त्व
डॉ. नरसिंह चरण पण्डा 48

7. भारतीय संस्कृति के स्रोत और प्रवाह के अध्येता : वासुदेव शरण अग्रवाल
प्रो. रामदेव शुक्ल 55

8. अज्ञेय की व्यैक्तिक स्वातंत्र्य का अनुशीलन: पाश्चात्य विचारकों के विशेष सन्दर्भ में
अभिषेक कुमार शर्मा 72

9. अंगकोर वाट: विश्व का विशालतम विष्णु मंदिर
डॉ. मनीषा शरण 78

10. वैदिक युग में नारी : ऐतिहासिक विवेचन
डॉ. पद्मजा सिंह 82

11. प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप
शिप्रा सिंह 88

12. वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में नाभिकीय शक्ति : एक सुरक्षात्मक उपागम के रूप में
स्मिता सिंह एवं प्रो. विनोद कुमार सिंह 94

13. भारत-बांग्लादेश सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंध : एक अवलोकन
डॉ. ब्रजेश कुमार मिश्र 101

14. भारत–अफगानिस्तान सम्बन्ध का सामरिक मूल्यांकन
डॉ. अमित कुमार उपाध्याय एवं अमित कुमार 108

15. भारत–नेपाल रणनीतिक संबंधों पर एमसीसी का प्रभाव : एक विश्लेषण
डॉ. अभिषेक सिंह एवं हर्षवर्धन सिंह 119

16. प्राकृत भाषा का विकास : एक अवलोकन
डॉ. विकास चौधरी 127

17. विद्यार्थी जीवन में योग की महत्ता
डॉ. बलवान सिंह 137

18. From Stone to Thread: Odisha Sculptures Inspiring Sambalpuri Ikat Motifs
Chitta Ranjan Sahoo & Adyasha Dash 143

19. The role of Diet that promote distinctive ways to maintain healthy skin from aging skin
Dr. Deepshikha Nagvanshi 150

20. Studies on Photoactive TiO_1 Nanomaterials for Applications in Solar Cells
KishorNand, Firoz Hassan, Md. Rashid Tanveer and S. K. Vernwal 165

21. Buddhism in Vietnam
Dr. Mahesh Kumar Sharan 174

22. Tribal Entrepreneurship
Dr. Meetu Singh 179

23. Mental Health Disparities Among Tribal Communities: A Gender-based Analysis
Piyush Kr. Tripathy, Dr. Lalit Kr. Mishra, Dr. Pragyesh Kr. Mishra 187

24. The role of Artificial Intelligence in Information Warfare: Challenges and Opportunities
Prithvi Singh, Dr. Harsh Kumar Sinha 197

25. Database Management System
Priyanshu Srivastava 209

26. Artificial Intelligence & Its Applications
Suraj Mishra 216

27. A Narrative Review of Social media Usage and Mental Health among Youth
Dr. Aparna Mishra 224

28. Impact of Leadership Style in Organisational Behaviour
Dr. Niraj Kumar Singh 230

29. The Multifaceted Responsibilities of Teachers: A Comprehensive Analysis
Harshita Singh 236

30. पुनर्पाठ

i. National Policy on Education
Mahant Digvijay Nath 241

ii. अष्टावक्र
डॉ. मुरली मनोहर जोशी 253

31. सप्तदिवसीय व्याख्यान माला रपट 275

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 1-13

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

महायोगी गुरु गोरखनाथ का सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण

डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त*

सारांश: भारतीय धर्म संस्कृति की साधना पद्धतियों में नाथपंथ और इसके प्रवर्तक महायोगी गुरु गोरखनाथ का सर्वप्रमुख स्थान है। भारतीय संत परम्परा में यह मान्य सत्य है कि गुरु गोरखनाथ ने अपने युग की प्रवाहित युगधारा को मोड़ा। शंकराचार्य के बाद भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में गोरखनाथ से अधिक महिमामय व्यक्तित्व दूसरा नहीं हुआ। भारत में उत्पन्न एवं फलने-फूलने वाली सभी सन्त परम्परा गोरखनाथ के दर्शन एवं आदर्शों की ऋणी है। पतंजलि के हठयोग के क्लिष्ट सैद्धांतिक पक्ष को सहज व्यवहारिक स्वरूप में परिवर्तित कर योग को जनमानस तक पहुँचाने का महती कार्य गोरखनाथ ने किया। गोरखनाथ वास्तव में नानक और कबीर से कहीं बड़े समाज सुधारक थे। भारतीय धर्म-साधक-सम्प्रदायों की पतनोन्मुख तथा विकृत स्थिति के समय वामाचारी तांत्रिक साधना जोरों पर थी। पंचमकारों का जमकर प्रयोग हो रहा था। भोगवाद अपनी चरम सीमा पर था तथा धर्माचरण सम्बन्धी नियमों का पालन नहीं हो रहा था, ऐसे संकटपूर्ण समय में महायोगी गोरखनाथ ने भारतीय संस्कृति, धर्म, समाज एवं साधकों के उद्धार हेतु समाज में साधना की पवित्रता, संयमपूर्ण जीवन की आवश्यकता, चारित्रिक श्रेष्ठता और आडम्बर रहित जीवन का संदेश प्रसारित किया। भारतीय समाज एवं संस्कृति को अपनी इन्हीं अवदानों के कारण गुरु गोरखनाथ सदैव प्रासंगिक बने रहेंगे।

बीजशब्द: नाथपंथ, गोरखनाथ, गोरखबानी, साधना पद्धति, नाथ दर्शन, हठयोग, वज्रयान, तंत्र साधना, वामाचार

भारतीय धर्म और दर्शन परम्परा में पतंजलि के योग दर्शन को युग सम्मत बनाकर सशक्त एवं जीवंत मत के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले महायोगी गुरु गोरखनाथ का व्यक्तित्व अनन्य है, अप्रतिम है। वस्तुतः वे युग प्रवाह को मोड़ने वाले, परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने वाले,

*65आई, जंगल सालिकराम, गोरखपुर-273014, मो.- 9450878347

 ISSN 0976-0849

परम्परागत विचार प्रवाह के भीतर से सार्वजनीन तत्त्व को प्रकट करने वाले धर्मज्ञ, विचारक और सिद्ध योगी थे। मध्यकालीन धर्म एवं दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् पं. गोपीनाथ कविराज का मानना है कि "योग साधना का चरम आदर्श जैसा इस सम्प्रदाय में स्वीकृत है, वह पतंजलि के पूर्व या परवर्ती कुछ बौद्ध तथा बहुत अंशों तक शांकर वेदांत की धारणाओं से मूलतः भिन्न है तथापि हमें यह निश्चित रूप से लक्षित करना चाहिए कि नाथ मत का सैद्धांतिक आदर्श प्राचीन व मध्यकालीन भारत के अद्वैतवादी मतों के अनुरूप ही है। इस आदर्श को एक शब्द में सामरस्य कहा जा सकता है जिसका तात्पर्य है समस्त भेदात्मक स्थितियों से ऊपर उठकर समरस हो जाना। कविराज जी का मत है कि नाथ पंथ का आदर्श है पहले पिंड सिद्धि द्वारा जीवन मुक्ति प्राप्त करना और तत्पश्चात् अमरत्व द्वारा परामुक्ति प्राप्त करना। साधना की यह परम्परा आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत की नींव पर ही रखी गयी थी।

ओशो रजनीश ने गोरखनाथ के महत्त्व का आंकलन करते हुए उन्हें भारतीय विचार परम्परा, दर्शन परम्परा और साधना परम्परा की अनिवार्य कड़ी बताया है। रजनीश का मानना है कि गोरखनाथ से इस देश में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। गोरख के बिना न नानक हो सकते हैं न कबीर। भारत की समस्त संत परम्परा गोरखनाथ की ऋणी है। ओशो का मत है कि "जैसे पतंजलि के बिना भारत में योग की कोई संभावना नहीं रह जायेगी, जैसे बुद्ध के बिना ध्यान की आधारशिला उखड़ जायेगी, जैसे कृष्ण के बिना प्रेम की अभिव्यक्ति को मार्ग न मिलेगा ऐसे ही गोरख के बिना उस परम सत्य को पाने के लिए विधियों की जो तलाश आरम्भ हुई, साधना की जो व्यवस्था बनी, वह न बन सकेगी। गोरखनाथ ने जितना आविष्कार किया मनुष्य के भीतर अंतर खोज के लिए उतना शायद किसी ने भी नहीं किया है।"

डॉ. सम्पूर्णानन्द इस बात को विशेष रूप से रेखांकित करते हैं कि नाथ सम्प्रदाय भारत के आध्यात्मिक विकास के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक गुरु गोरखनाथ ने पतंजलि के हठयोग को जो केवल ज्ञान के स्तर पर सुरक्षित था, क्रिया के स्तर पर लाने का कार्य किया। योग वस्तुतः आध्यात्मिक अनुशासन के लिए सर्व स्वीकृत शब्द है। डॉ. सम्पूर्णानन्द ने नाथ सम्प्रदाय की आचरणगत पवित्रता पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है– "योग में सफलता के लिए चरित्र की निर्मलता, शारीरिक, भौतिक सुखों का त्याग, जगत् के मिथ्या आकर्षणों से विरति आवश्यक है और यह निर्विवाद है कि नाथ सम्प्रदाय के जन्मदाताओं ने इन गुणों का असाधारण रूप से पालन किया।"

"उपनिषदों में इस बात पर बल दिया गया है कि आत्मज्ञान की प्राप्ति अपने बुद्धि बल के आधार पर नहीं हो सकती क्योंकि उसमें अहंकार का आवरण पड़ा रहता है। आत्मज्ञान के योग्य बनने के लिए चेतना के अहंकार, वासनाओं, सांसारिक आकर्षणों, मोह और मद से मुक्त होना चाहिए।

सत्यान्वेषक नैतिक और आध्यात्मिक योग्यता बढ़ाकर ही सत्य की उपलब्धि कर सकते हैं। इसी योग्यता वृद्धि का नाम योग है।"

योग की महत्ता तथा योग विद्या को लोक व्याप्ति देने में गोरखनाथ के अवदान का उल्लेख करते हुए सम्पूर्णानन्दजी लिखते हैं- "ऋषियों ने समस्त वेद वेदांगों को, बौद्धिक ज्ञान को अपरा विद्या और जिसके द्वारा पूर्ण परम सत्य का साक्षात्कार हो सकता है उसे परा विद्या कहा है। योग विद्या परा विद्या है। पूर्ण सत्य की प्राप्ति का यह एकमात्र उपाय है। इस योग विद्या को लोक व्याप्ति देने में महायोगी गोरखनाथ का अन्यतम योगदान है। इस प्रकार गोरखनाथ की भूमिका के महत्त्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।"

गोरखनाथ के वास्तविक महत्त्व को प्रत्यक्ष करने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषण आवश्यक है। महात्मा बुद्ध के अवसान के बाद बौद्ध धर्म हीनयान और महायान सम्प्रदाय में विभक्त हो गया। कालान्तर में महायान मंत्रयान में परिवर्तित हुआ और भैरवीचक्र की उपासना के ग्रहण के बाद मंत्रयान वज्रयान में रूपान्तरित हुआ। वज्रयान में तांत्रिक उपासना स्वीकृत हुई जिसने वामाचार के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसे देखकर ही पाँचवी शताब्दी में वसुबन्धु ने अपने ग्रंथ 'अभिधम्म कोश' में चेतावनी दी कि इस युग का धर्म अपनी अंतिम साँसे गिन रहा है। यह ऐसा युग है जिसमें दुराचार और व्यभिचार का बोलबाला है। जो लोग मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें अत्यंत सावधान रहना चाहिए।[1]

स्वामी विवेकानन्द यों तो बौद्ध धर्म के प्रशंसक थे किन्तु उसके पतन पर उनकी टिप्पणी ध्यातव्य है– "अपनी अद्भुत नैतिक क्षमता के बावजूद बौद्ध धर्म अत्यंत मूर्तिभंजक था और उसकी बहुत सी शक्ति मात्र नकारात्मक प्रयत्नों से बिखर जाती थी। फलतः उस देश में ही उसका पतन हुआ जहाँ वह जन्मा था। उसके जो अवशेष रहे थे कर्मकाण्डों और अंधविश्वासों से भरे थे। ये कर्मकाण्ड उससे कहीं ज्यादा अच्छे थे जिन्हें दबाने का प्रयत्न बौद्ध धर्म ने किया था। यद्यपि वेदों की पशु बलि को वह आंशिक रूप में समाप्त करने में सफल हुआ किन्तु उसने देश को मंदिरों, मूर्तियों और चिह्नों से पाट दिया। इससे बढ़कर यह कि आर्यों, मंगोलों और आदिवासियों की जो खिचड़ी उसने तैयार की उसके जरिये अवचेतन रूप से उसने कई किस्म के वीभत्स वामाचारों के लिए रास्ता तैयार किया। यही कारण है कि महान् बुद्ध की शिक्षाओं के इस विकृत रूप को शंकराचार्य और उनके संन्यासी दल द्वारा इस देश में से खदेड़ा गया।"[2]

"वज्रयानी साधक घोषणा करते थे कि इस जगत् में कुछ भी अशुद्ध अथवा अपवित्र नहीं है। साधक के लिए सभी निषिद्ध बातें करणीय हैं। भोग को योग में परिवर्तित करने वाले ग्रंथ 'गुह्य समाज तंत्र' के अनुसार बुद्धत्व की प्राप्ति उस समय सरल बन जाती है जब साधक सभी प्रकार के

 ISSN 0976-0849

विषय भोगों में निमग्न हो जाता है क्योंकि भावों की उत्तेजना निर्वाण के समान है और जहाँ त्याग और तपस्या पराजित होती है वहाँ सभी इच्छाओं की पूर्ति विजयी होती है।" (वही, पृ. 26)।

इस प्रकार वज्रयानी तंत्र विधि निषेधों से लोगों को विमुख कर रहा था। इसके साथ शैव मत में शक्ति उपासना से समाज में अराजकता को बढ़ावा मिल रहा था। ऐसे समय जब राजे महाराजे, गृहस्थ तथा अन्य सामान्य जन सिद्धों योगियों की शक्तियों से आतंकित होकर जी रहे थे, महायोगी गुरु गोरखनाथ ने अपने निष्कलुष त्यागमय जीवन का उदाहरण लोक के समक्ष रखा। एक प्रकार से उन्होंने योग विद्या का उज्ज्वल स्वरूप सामने रखा। योगी लोग सदैव अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा आदि सिद्धियों के सहारे वासना पूर्ति में प्रवृत्त थे। महायोगी गोरखनाथ ने त्यागमय जीवन को चरितार्थ किया। उन्होंने भ्रष्टाचार तथा गर्हित कर्म में लिप्त योगियों के विरूद्ध कठोर अभियान चलाकर योगमार्ग के प्रति जनता के मन में विद्यमान भय और विकर्षण को समाप्त किया।

महायोगी गोरखनाथ के समय भारत की राजनीतिक स्थिति भी जटिल थी जिनका प्रभाव उनके चिंतन पर पड़ा। सम्राट हर्षवर्धन के बाद उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति में बिखराव आ गया था। किसी केन्द्रीय सत्ता के अभाव के कारण भारतवर्ष के राजाओं में प्रतिस्पर्धा का उदय हुआ और आंतरिक एकता में दरार पड़ी। इसके फलस्वरूप विदेशी आक्रांताओं के लिए स्थिति सरल हो गयी। सिंध पर ईस्वी सन् 638 से 711 ई. तक के तिहत्तर वर्षों के काल में नौ खलीफाओं ने पन्द्रह बार आक्रमण किये। पन्द्रहवें आक्रमण का नेतृत्व मुहम्मद बिन कासिम ने किया। कम्बोज और गांधार पर पहले से ही अधिकार कर लिया गया था। 712 ई. में सिंध पर आक्रमण में दाहिर पराजित हुए। सिंध पर अधिकार करने के बाद पंजाब और मुल्तान को भी इस्लाम मतानुयायियों ने अपने अधीन कर लिया। हालाँकि बाद में कश्मीर के शासक ललितादित्य ने तथा पंजाब के राजाओं और प्रतिहारों ने मुस्लिम साम्राज्य के प्रसार को रोक दिया। मुहम्मद गजनवी के आक्रमण और लूट के बाद उसके भतीजे सैय्यद सालार मसूद ने भारत पर आक्रमण किया और मुल्तान, दिल्ली, मेरठ और अंत में सतरिख (बाराबंकी) पर विजय प्राप्त की। किन्तु उस समय श्रावस्ती के तत्कालीन राजा सुहेलदेव ने पड़ोसी राजाओं के साथ मिलकर 1034 ई. में सालार मसूद को पराजित किया। उसके बाद लगभग एक सौ पचास वर्ष तक मुस्लिम आक्रान्ताओं ने आक्रमण का साहस नहीं किया। पर इस्लाम मतानुयायी भारत में आये और उनके साथ आया इस्लाम नामक मजहब जिसने स्थानीय समाज पर अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ किया। महायोगी गोरखनाथ को इस्लाम की उस चुनौती का सामना करना पड़ा।

गुरु गोरखनाथ के समय देश की सामाजिक स्थिति का आंकलन कर उनके महत्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है। डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय ने अपने शोध ग्रंथ में तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला है। गोरखनाथ के आविर्भाव के बहुत पहले वर्ण व्यवस्था कर्मणा

न होकर जन्मना और वंशानुगत हो गयी थी। दूसरी सदी ईसा पूर्व के आसपास शुंग वंश के शासनकाल में यह परिवर्तन विशेष रूप से हुआ। ब्राह्मण वर्ग की सामाजिक श्रेष्ठता लगभग निर्विवाद थी। संयत् जीवन उच्च कर्म के कारण वे सम्मान्य थे। शास्त्रों के अनुसार उस समय भी आपद्धर्म की छूट थी जिसके अनुसार विशेष परिस्थितियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एक-दूसरे का धर्म स्वीकार कर, अपनी जीविका चला सकते थे। हालाँकि ब्राह्मण वर्ग की श्रेष्ठता निर्विवाद थी। परंतु कालांतर में निरंतर विदेशी आक्रमण विशेष कर मुस्लिम आक्रमण, राजपूत राजाओं के परस्पर विद्वेष और विग्रह से स्थितियाँ जटिलतर होती गयीं। समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव बढ़ रहा था और उसके प्रति विद्रोह का भाव भी उत्पन्न हो रहा था। इस जटिलतर स्थिति का सामना करने के लिए एक ऐसे महापुरुष की आवश्यकता थी जो उनके बीच का हो, जो भारतीय परम्परा के प्राचीन आदर्शों को लेकर उसे युगानुरूप आकार दे सके। उस समय के नेता से जिस प्रकार चारित्रिक उच्चादर्श की अपेक्षा थी, वह जनता ने महायोगी गोरखनाथ में पायी।[3] गोरखनाथ ने अपने समय की विभिन्न जटिल स्थिति के बीच अपना मार्ग निकाला और जनता को सही राह दिखायी। इसी कारण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही लिखा है कि "शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भक्ति आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली आन्दोलन गोरखनाथ का योगमार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।"[4]

गोरखनाथ के समय इस्लाम एक बड़ी चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया था। इस्लाम का भारत में प्रवेश हो चुका था और हिन्दू तथा इस्लाम मतानुयायियों के बीच धार्मिक आस्था को लेकर विवाद भी था। गोरखनाथ ने उग्र प्रयत्न का आश्रय नहीं लिया; उन्होंने तत्वज्ञान के आधार पर दोनों समुदायों में अभेद स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि हिन्दू मुसलमान दोनों भ्रम की स्थिति में हैं, वे असली मर्म को नहीं जानते; वे मन्दिर, मस्जिद में उलझे हुए हैं, असली मर्म को योगी ही पहचानता है–

हिन्दू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद जहाँ देहुरा न मसीत।।

(सबदी 68)

वस्तुतः गोरखनाथ स्थूल भौतिक पदार्थों को, बाह्याचार को व्यर्थ मानते हैं। उनकी दृष्टि में आत्मा की शुद्धि अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए वे कहते हैं–

हिन्दू आषैं राम कौं मुसलमान खुदाइ।
जोगी आषैं अलष कौं तहाँ राम अछै न खुदाइ।।

(सबदी 69)

 ISSN 0976-0849

हिन्दू राम को परमेश्वर मानते हैं और मुसलमान खुदा को, किन्तु योगी जिस अलख का आह्वान करते हैं वहाँ न राम है न खुदा अर्थात् वह इन दोनों से परे है।

गोरखनाथ अनुभवजन्य ज्ञान को प्रमाण मानते हैं। इसके सूत्र कठोपनिषद् में मिलते हैं। कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम्।।

अर्थात् यह आत्मा प्रवचन द्वारा प्राप्य नहीं है, न मेधा शक्ति से, न बहुत शास्त्रों के श्रवण से यह लभ्य है। यह आत्मा जिसका वरण करता है उसी के द्वारा यह लभ्य है, उसी के प्रति वह आत्मा अपने कलेवर को अनावृत करता है। गोरखनाथ ने भी स्वसंवेद्य ज्ञान को महत्त्व दिया। इसीलिए उन्होंने कहा–

काजी मुल्लां कुराणं लगाया ब्रह्म लगाया वेदं।
कापड़ी संन्यासी तीरथ भ्रमाया न पाया नूवांन पद भेवं।।
(सबदी 96)

काजी मुल्ला ने कुरान का पाठ किया, ब्राह्मणों ने वेद, कापड़ी (गंगोत्री से गंगाजल लाने वाले) और संन्यासी को तीर्थों ने भ्रम में डाल रखा है। इनमें से किसी ने निर्वाण पद का भेद नहीं पाया।

गोरखनाथ देख रहे थे कि इस्लाम मतानुयायी हिंसा में लिप्त हैं और हिंसा का सहारा लेकर अन्य मतावलम्बियों को आतंकित कर रहे हैं। गोरखनाथ ने हिंसा की इस प्रवृत्ति का विरोध किया–

महंमद महंमद न करि काजी महंमद का विषम विचारं।
महंमद हाथि करद जे होती लोहै घड़ी न सारं।।
(सबदी 09)

हे काजी! मुहम्मद मुहम्मद न कर। क्योंकि तुम मुहम्मद को जानते नहीं हो। तुम समझते हो कि जीव हत्या करते हुए तुम मुहम्मद के मार्ग का अनुसरण कर रहे हो परंतु मुहम्मद का विचार बहुत गंभीर और कठिन है। मुहम्मद के हाथ में जो छुरी थी वह न लोहे की गढ़ी हुई थी न इस्पात की जिससे जीव हत्या होती है। जिस छुरी का प्रयोग मुहम्मद करते थे, वह शब्द की छुरी थी वे शिष्यों की भौतिकता को शब्द की छुरी से मारते थे, जिससे वे विषय वासनाओं के लिए मर जाते थे। ऐसे मुहम्मद पीर थे। अतः हे काजियो, उनके भ्रम में न भूलो तुम उनकी नकल नहीं कर सकते। महायोगी गोरखनाथ ने इस्लाम के एकेश्वरवाद पर भी प्रहार किया। यह उनके अदम्य साहस और सत्य के प्रति अटूट निष्ठा का प्रमाण है। उन्होंने मुल्लाओं द्वारा मुहम्मद मुहम्मद चिल्लाने पर फटकार लगायी है–

महंमद महंमद न करि काजी महंमद का बौहोत विचारं।
महंमद साथि पैकंबर सीधा ये लष अजी हजारं।।
(सबदी 225)

अर्थात् मुहम्मद एक नहीं अनेक हैं।

इस प्रकार गुरु गोरखनाथ ने हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच व्याप्त असामंजस्य को दूर किया। यही कारण है कि उन्हें हिन्दू-मुस्लिम समन्वयकर्त्ता कहा जाता है। उन्होंने समन्वय का अनोखा स्वरूप सामने रखा–

उतपति हिंदू जरणां जोगी अकलि पीर मुस्लमानी।
ते राह चीन्हो हौ काजी मुलां ब्रह्मा विष्णु महादेव मानीं।।
(सबदी 14)

उत्पत्ति से हम हिन्दू हैं जरणां (साधना) के कारण योगी हैं और अक्ल से मुसलमान पीर। हे मुल्लाओं और काजियों उस मार्ग को पहचानो जिसे ब्रह्मा विष्णु महादेव तक ने माना है।

गुरु गोरखनाथ के समक्ष बड़ी चुनौती योगी तथा साधकों के जीवन में प्रवेश कर चुके पाखण्ड की थी। उन्होंने देखा पण्डित विभिन्न बाह्याचार में आकण्ठ मग्न है। पाखण्ड के कारण वह अपने स्वरूप को पहचान नहीं पा रहा है। उन्होंने वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के लिए पण्डितों का आह्वान किया। वे यह भी अनुभव कर रहे थे कि विभिन्न मत वाले विद्वान् व्यर्थ में एक-दूसरे के मत का खण्डन करते रहते थे। उनका मानना था कि योगी को इस प्रकार के खण्डन-मण्डन से विरत रहते हुए साधना करनी चाहिए। गोरखनाथ जी का मानना था कि जैसे सभी नदियों का जल समुद्र में ही समाता है उसी प्रकार शिष्य का विश्वास गुरु मुख के वचनों में होना चाहिए–

कोई बादी कोई बिवादी जोगी कौं बाद न करनां।
अठसठि तीरथ समँदि समावै यूँ जोगी कौं गुरुमुषि जरनां।।
(सबदी 13)

गोरखनाथ के समक्ष एक बड़ी समस्या असंयमित जीवन जीने वालों को संयम और इन्द्रिय निग्रह का पाठ पढ़ाने की थी। इन्द्रियासक्ति न केवल मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में बाधक है बल्कि व्यावहारिक जीवन में भी कठिनाई उत्पन्न करने वाला है। इसलिए महायोगी ने सर्वाधिक बल संयमपूर्ण जीवन जीने पर दिया–

यंद्री का लड़बड़ा जिभ्या का फूहड़ा गोरख कहै ते पर्तषि चूहड़ा।।
काछ का जती मुष का सती। सो सत पुरूष उत्तमो कथी।।
(सबदी 152)

 ISSN 0976-0849

जो इन्द्रिय संयमी नहीं है, जिह्वा से फूहड़ बातें करता है गोरखनाथ का मानना है वे प्रत्यक्ष भंगी हैं। लंगोट का पक्का (संयम रखने वाला) मुख का सच्चा अर्थात् मुख से सत्य वचन कहने वाला सत्पुरूष ही उत्तम कहा जाता है। गोरखनाथ ने आध्यात्मिक जीवन के लिए काम और क्रोध को सबसे बड़ा शत्रु माना है। वस्तुतः सामान्य जीवन में ये दोनों विकार कठिनाई उत्पन्न करते हैं। इसलिए महायोगी ने इन्द्रिय निग्रह को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बताया–

हसिबा खेलिबा रहिबा रंग काम क्रोध न करिबा संग।
हसिबा खेलिबा गाइबा गीत दिढ़ करि राखि आपनां चित्त।।

(सबदी 7)

स्त्रियासक्ति को भी साधना में अवरोध माना गया है। इसलिए गोरखनाथ का मानना है कि इससे दूर रहना चाहिए–

धन जोबन की करै न आस चित्त न राखै कमिनी पास
नाद बिन्द जाकै घटि जरै ताकी सेवा पारवती करै

(सबदी 19)

इसे गोरखनाथ की स्त्रियों के प्रति दुराग्रह के भाव के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। बौद्ध धर्म में स्त्रियों के प्रवेश की अनुमति का परिणाम वे देख-जान चुके थे इसलिए साधना की दृष्टि से स्त्रियों को बाधक माना गया। सम्पूर्ण संत साहित्य में जहाँ स्त्रियों का चित्रण माया के रूप में है, वहाँ यही दृष्टिकोण दिखायी पड़ता है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी इस दृष्टिकोण की पुष्टि की है– "गोरखनाथ ने इन्द्रिय निग्रह पर इसलिए अत्यधिक बल दिया कि उन्होंने बौद्ध विहारों में भिक्षुणियों के प्रवेश का परिणाम बौद्ध धर्म के अधःपतन में देखा हो, यह भी संभव है कि भैरवी और योगिनी शूद्र स्त्रियों की ऐन्द्रिक उपासना में धर्म के विकृत रूप का साक्षात्कार किया हो अथवा वज्रयानी साधना में पंचमकार की साधना के प्रवेश से उत्पन्न विकृति का साक्षात् अनुभव किया हो।[5]

गीता में मन को नियंत्रित करने पर बल दिया गया है। गोरखनाथ ने भी इस पर जोर दिया है–

यहु मन सकती यहु मन सीव यह मन पाँच तत्त्व का जीव।
येहु मन ले जै उनमन रहै तो तीनि लोक की बाता कहै।।

(सबदी 50)

यही मन शिव है यही मन शक्ति है यही मन पंचतत्त्वों से 'निर्मित' जीव है (मन का अधिष्ठान भी शिव तत्त्व परब्रह्म ही है। माया (शक्ति) के संयोग से ही ब्रह्म मन के रूप में अभिव्यक्त होता है और मन से पंच भूतात्मक शरीर की सृष्टि होती है। इसलिए मन का बड़ा महत्त्व

है)। मन को लेकर उन्मनावस्था में लीन करने से साधक सर्वज्ञ हो जाता हैं; तीनों लोकों की बातें कह सकता है।

योग साधना में वृत्तियों को अंतर्मुखी बना लेना आवश्यक माना जाता है। इसके लिए कछुए का उदाहरण दिया जाता है। जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है उसी प्रकार मनुष्य को भी वृत्तियों को अंतर्मुखी बना लेना चाहिए। मनुष्य जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए गोरखनाथ ने मन को, क्रोध वृत्ति को नियंत्रित करने पर बल दिया–

मन मैं रहणा भेद न कहिणां बोलिबा अमृत बांणी।
अगिला अगनी होइबा अवधू तौ आपण होइबा पाणी ।।

(सबदी 63)

वन प्रांतर में रहने की अपेक्षा मन में रहना चाहिए अर्थात् बहिर्मुखी वृत्तियों को अंतर्मुखी कर देना चाहिए। अपने मन का रहस्य किसी से भी नहीं कहना चाहिए (क्योंकि रहस्यमयी अनुभूति को कोई समझने वाला नहीं है)। मीठी वाणी बोलनी चाहिए। अगर दूसरा आदमी तुम पर आग बबूला हो जाय तो (तुम्हें) पानी हो जाना चाहिए अर्थात् कोई क्रोध करे तो क्षमा शील हो जाना चाहिए।

गोरखनाथ जीवन में साक्षी भाव को महत्त्व देते हैं। यही विदेह भाव भी है। उपनिषद में भी साक्षी भाव को महत्त्व दिया गया है। अनासक्त या निष्काम कर्म योग यही है। गोरखनाथ ने इसे स्वीकृति प्रदान की है–

गोरख कहै सुणहु रे अवधू जग मैं ऐसे रहणा।
आषै देखिबा कानै सुनिबा मुष थै कछू न कहणां ।।

(सबदी 72)

गुरु गोरखनाथ के समक्ष प्रबल भोगवाद एक बड़ी चुनौती थी। विशेषकर वज्रयानी सिद्धों में यह प्रवृत्ति विकृति की चरम सीमा तक विद्यमान थी। महायोगी ने इस प्रवृत्ति को अनुचित बताया और उसकी भर्त्सना की–

भरि भरि षाइ ढ़रि ढरि जाइ। जोग नहीं पूत बड़ी बलाई।।
संजम होइ बाइ संग्रहौ। इस विधि सकल पूरिस कौं गहौ।।

(सबदी 145)

पेट भर-भर कर खाने से बिंदु क्षरित होता है। उस दशा में योग संभव नहीं होता बल्कि योग संकट हो जाता है। संयम धारण कर वायु संग्रह करना चाहिए (इसे ही प्राण साधना कहते हैं) और उसे नष्ट होने से बचाना चाहिए। इस प्रकार परिवर्तन रहित परमात्मा को प्राप्त करना चाहिए।

 ISSN 0976-0849

गोरखनाथ किसी अतिवाद के पक्ष में नहीं है। वे मध्यम मार्ग को अपना समर्थन देते हैं। भारतीय चिंतन परम्परा में भी मध्यम मार्ग को ही महत्त्व दिया गया है। संस्कृत की प्रसिद्ध उक्ति है–

अति रूपेण वै च अति सर्वेण रावणः।
अतिदानाद् बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्।।

अर्थात् अति रूपवती होने के कारण सीता का अपहरण हुआ। अति गर्व के कारण रावण मारा गया और अति दानी के कारण राजा बलि बंधन में पड़ गये। अतः निश्चित ही अति का सर्वत्र त्याग किया जाना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने भी मध्यम मार्ग के अवलम्बन को उचित माना है–

घर कीन्हें घर जात है घर छाँडे घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच हीं राम प्रेम पुर छाइ।।
(दोहावली)

गोरखनाथ ने भी इस जीवन दृष्टि को स्वीकार किया है–

षांये भी मरिये अणखांये में भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि हीं तरिये।।
मधि निरंतर कीजै वास। निहचल मनुआ थिर होइ सास।।
(सबदी 146)

अघाकर खाना भी मौत है, बिल्कुल न खाना भी मौत है। गोरख कहते हैं कि हे पुत्र! इन दोनों में संयम करने से ही मुक्ति हो सकती है। इसलिए मध्यम रहनी से ही रहना चाहिए जिससे मन निश्चल हो और श्वास स्थिर।

समाज जीवन की एक बड़ी समस्या शब्द और कर्म में अन्तराल की रही है। यह समस्या महाभारत काल में भी थी। व्यास बहुत पीड़ा के साथ कहते हैं कि मैं दोनों भुजाएँ उठाकर कहता हूँ कि धर्म से ही अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, पर मेरी कोई सुनता नहीं। गोरखनाथ ने भी अपने समय में कथनी-करनी में द्वैत का अनुभव किया था। आडम्बर और झूठ ने सच्चाई को पृष्ठभूमि में धकेल दिया था। इसीलिए उन्हें कहना पड़ा–

कहणि सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या गुंण्या सूवा बिलाई षाया पंडित के हाथ रह गई पोथी।।
(सबदी 119)

कहना आसान है किन्तु कहने के अनुसार रहना कठिन और बिना रहनी के कहना किसी काम का नहीं, खोखला या छूछा है। तोता पढ़कर गुनकर कुछ शब्दों को दुहराना भर सीख सकता है, उसके अनुसार काम नहीं कर सकता, उनका अर्थ नहीं समझता। ऐसे ही अनुभवहीन पढ़े-गुने

पंडित के हाथ में भी केवल पोथी रह जाती है सार वस्तु उनके हाथ नहीं आती और परिणामत: वह काल का ग्रास बन जाता है। गोरखनाथ बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि जीवन में आचरण की प्रामाणिकता का ही महत्त्व है; शब्द का प्रमाण आचरण ही है। वे शब्द और कर्म के अन्तराल को पाटने के लिए साधना की आवश्यकता का अनुभव करते हैं–

कहणि सुहेली रहणि दुहेली बिन खाया गुड़ मीठा।
खाई हींग कपूर बषाणै गोरष कहै सब झूठा।।

(सबदी 120)

"कहना आसान है, पर रहना दुर्लभ, बिना गुड़ खाये मुँह से 'मीठा' शब्द मात्र का उच्चारण कर देने से मीठे स्वाद का अनुभव नहीं प्राप्त हो सकता। ऐसा अनुभवहीन व्यक्ति धोखे में पड़ा रह जाता है। उसको वास्तविकता की पहचान नहीं होती। खाता तो वह हींग है किंतु कहता है कर्पूर।" गोरखनाथ का कहना है कि यह वास्तविक अनुभव नहीं है, आरोपित है।

महायोगी गोरखनाथ यह देख रहे थे कि समाज के अधिकांश लोग वाग्वीर हो गये हैं, कर्म पर उनकी आस्था नहीं रह गयी है। उन्होंने इस प्रवृत्ति को घातक बताया–

कथणीं कथै सो सिष बोलिये वेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा हम रहता का साथी।।

(सबदी 270)

अर्थात् कर्मशील मनुष्य अधिक महत्त्व रखता है। महायोगी आचरण को ही प्रधान मानते हैं–

रहता हमारै गुरु बोलिये हम रहता का चेला।
मन मानै तो संगि फिरै नहिं तर फिरै अकेला।।

(सबदी 271)

वस्तुत: भारतीय परम्परा में विश्वास की अपेक्षा आचरण की पवित्रता, शब्द और कर्म की एकता, सहज जीवन पर सर्वाधिक बल दिया गया है। आचरण ही मनुष्य जीवन की दिशा निर्धारित करता है। इसीलिए गोरखनाथ कहते हैं–

अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा। बांध्या मेल्हा तौ जगत्र चेला।।
बदंत गोरष सति सरूप। तत विचारै ते रेष न रूप।।

(सबदी 153)

"हे अवधूत? अगर मन चंगा (शुद्ध) है तो कठौती में ही गंगा हैं अर्थात् जहाँ चाहो वहाँ गंगा विद्यमान है। क्योंकि गंगा सेवन के जो फल बताये गये है वे मन की शुद्धता से स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। यदि माया के बंधन में पड़े हुए मन को (अर्थात् जीव को) मुक्त कर दिया तो समस्त जगत्

 ISSN 0976-0849

शिष्य हो जायेगा। गोरख सत्य स्वरूप का निर्वचन करते हैं। जो उस तत्त्व का विचार करेंगे वे स्वयं रूप और रेख से रहित हो जायेंगे।"

गोरखनाथ आडम्बर रहित सहज जीवन को संयमित जीवन को, सबसे अधिक महत्त्व देते हैं–

अवधू सहजै लैणा सहजै प्रीती ल्यौ लाई।
सहजै सहजै चलैगा रै अवधू तौ बासणा करैगा समाई।।

गोरखनाथ जीवन में वाक् संयम को बहुत महत्त्व देते हैं। साधना की दृष्टि से और व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से भी वाक् संयम का महत्त्व है। इसीलिए गोरखनाथ मनुष्य को चेतावनी देते हैं–

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिबा पावं।
गरब न करिबा सहजै रहिबा बनत गोरख रावं।
(सबदी 27)

तत्कालीन समाज में गृहस्थ भी कर्त्तव्यच्युत हो रहे थे। इसीलिए सद् गृहस्थ की परिभाषा महायोगी को गढ़नी पड़ी–

गिरही सो जो गिरहै काया। अभिअंतरि की त्यागै माया।।
सहज सील का धरै सरीर। सो गिरही गंगा का नीर।।

अर्थात् वही सद् गृहस्थ है जिसने अपने शरीर को वश में करके रखा है, अन्तःकरण से माया को त्याग दिया है। इतना शीलवान है कि शरीर ही मानो स्वाभाविक शील का बना हुआ है। वही गृहस्थ गंगा जल के समान शुद्ध है तथा औरों को भी शुद्ध करने वाला है।

इन उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्वतः सिद्ध है कि भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण में, गुरु गोरखनाथ का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे युगद्रष्टा आचार्य, दार्शनिक, समाज-नियामक, क्रांतद्रष्टा कवि थे। महायोगी गोरखनाथ के विषय में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने सिद्धों की तरह तीव्र प्रतिरोध का मार्ग नहीं अपनाया, उन्होंने नकारात्मकता के स्थान पर सकारात्मकता को अधिक महत्त्व दिया। उनके सिद्धांत अद्वैत वेदांत के चिंतन को ही आगे बढ़ातें हैं, वे वेद विरोधी नहीं थे। वे आध्यात्मिक अनुभूतिवादी थे। ब्रह्मानन्दलीन होने के साथ ही उन्होंने समाज सुधारक की भी भूमिका निभाई। उन्होंने स्थूल कर्मकाण्ड की अपेक्षा विवेक को अधिक महत्त्व दिया। लोकमंगल उनका मुख्य प्रतिपाद्य रहा है। उनके दर्शन में शास्त्र और लोक दोनों का समन्वय है। उन्होंने अपने समय में हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच की खाई को दर्शन के धरातल पर पाटने का प्रयास किया,

विदेशी आक्रमणों से हताश जनता में आत्म विश्वास का संचार किया, सिद्धों के अतिचार से समाज को मुक्त किया। बौद्ध, वैष्णव, सूफी संत मत का समन्वय अपने मत के साथ किया। इसलिए उनका ऐतिहासिक महत्त्व है। नाथ साहित्य का संत, सूफी तथा सगुण भक्ति साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित जो आचरणगत उपदेश उन्होंने दिये उनका आज भी उतना ही महत्त्व है।

सन्दर्भ सूची:

1. शुक्ल, रामदेव, नाथपंथ और लोकतत्त्व, नाथपंथ साधना और साहित्य, पृ. 26
2. तत्रैव, पृ. 27
3. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, भारतीय साहित्य के निर्माण : गोरखनाथ, साहित्य एकेडमी, नई दिल्ली, 2020 ई., पृ. 24-25
4. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ संप्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1950 ई., पृ. 12
5. वर्मा, राजकुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायणलाल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2010, पृ. 17

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 14-20

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

नाथपन्थी शब्दावली के चर्चित शब्द

डॉ. आद्या प्रसाद द्विवेदी*

सारांशः नाथपन्थ भारत के प्राचीनतम पंथों में अग्रणी है। नाथपन्थी साधकों ने अपने तपोबल एवं नैतिकतापूर्ण आचरण से पतन की ओर अग्रसर समाज को न सिर्फ संपूर्ण पतन से बचाया अपितु समाज में मानवीय आदर्शों एवं मूल्यों को भी स्थापित किया। नाथपन्थ अपनी विशिष्ट साधना पद्धति एवं यौगिक क्रियाओं को महत्व देने के कारण एक सर्वव्यापी सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुआ। नाथपन्थी साधकों ने एक समरस समाज के निर्माण के लिए जितना प्रयास किया, उतना प्रयास भारत के शायद ही किसी सम्प्रदाय ने किया हो।

बीजशब्दः अभिचार, हठयोग, गोरखधंधा, कुण्डलिनी, उन्मनी, सहज, नाद, बिन्दु

जब वज्रयानियों और सिद्धों के चमत्कार और अभिचार समाज में अपनी प्रतिष्ठा से च्युत हो गये, शाक्त मतावलंबी मद्य और मांसादि के लिये तथा सिद्ध तांत्रिक आदि सभी संबंधी आचारों के कारण घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे तथा जब इनकी यौगिक क्रियाएँ भी मन्द पड़ने लगीं, तब इन यौगिक क्रियाओं के उद्धार के लिये ही उस समय नाथ सम्प्रदाय का उदय हुआ।[1] इसमें नवनाथ मुख्य कहे जाते हैं। गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, कारिपानाथ, ग्रहिणीनाथ, चर्पटनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, भर्तृहरिनाथ और गोपीचन्द्रनाथ। गोरक्षनाथ ही गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुये।

इस पंथ वालों की योग साधना पातंजल योग का विकसित रूप है। उसका दार्शनिक अंश छोड़कर हठयोग की क्रिया जोड़ देने से नाथ पन्थ की योग क्रिया हो जाती है। नाथ पन्थ में 'ऊर्ध्वदेता' या अखण्ड ब्रह्मचारी होना सबसे अधिक महत्त्व की बात है।[2] मांस-मद्यादि सभी तामसिक भोजनों का पूरा निषेध है। यह पन्थ चौरासी सिद्धों के तांत्रिक वज्रयान का सात्विक रूप से परिपालक प्रतीत होता है। इस मत में शुद्ध हठयोग तथा राजयोग की साधनायें अनुशासित हैं। योगासन, नाड़ी ज्ञान, षटचक्र निरूपण तथा प्राणायाम द्वारा समाधि की प्राप्ति उसके मुख्य अंग हैं। शारीरिक पुष्टि तथा पंच महाभूतों पर विजय की सिद्धि के लिये रसविद्या का भी इस मत में एक विशेष स्थान है।

*मालती कुंज, सिद्धार्थ इन्क्लेव विस्तार, एच.आई.जी. II 32, तारामण्डल, गोरखपुर, मो.-9415632538, 9450639170

इस पन्थ की शब्दावली में कुछ ऐसे विशिष्ट शब्द हैं जो आज के सामान्य अर्थ से बहुत भिन्न हैं। यहाँ ऐसे ही कुछ प्रचलित शब्दों का विवरण दिया जा रहा है।

गोरखधंधा –

आज गोरखधंधा का सामान्य अर्थ उल्टे-सीधे कार्यों के संदर्भ में ज्यादा होता है। छल-कपट, धोखाधड़ी, चालाकी भरे कृत्यों को इसी श्रेणी में रखा जाता है। दरअसल यह शब्द सिद्ध योगियों की शब्दावली से निकला हुआ है। यों देखें तो गोरखधंधा अपने-आप में एक यंत्र था, नाथपन्थी साधना का अभ्यास उपकरण। डोरी या धागे से बने चक्र के उलझाव-सुलझाव के द्वारा सिद्धि प्राप्ति का अनुष्ठान। इसके अनेक प्रारूप रहे हैं। गुच्छों का सुलझाव भी रहा और अनेक चक्रों के बीच से किसी वस्तु को निकालने जैसा अभ्यास भी। इसका यौगिक-आध्यात्मिक-तांत्रिक महत्त्व जो भी रहा हो, पर नाथ-सिद्धों की पद्धतियों के चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन की महिमा ही समाज पर ज्यादा रही। साधना के दुष्कर मार्ग की कठिनाइयों से बचते हुये अनेक साधकों ने भौतिक सुख-सविधाओं के लिये यौगिक क्रियाओं का मायाजाल रचा। मंत्र-मुद्रा आदि के जाल में उलझाकर आम-जन को खूब ठगा। मूलतः ये सभी पुणलिया आध्यात्मिक विस्तार के लिये थीं, पर चमत्कारी भागों में उलझकर रह गईं। अनेक लोगों को लगता है कि गोरखधंधा का मूलार्थ ही दरअसन उल्टे-सीधे काम कर अपना मतलब साधने में है। उन्हें लगता है, इसके जरिए गोरख-पन्थियों अथवा नाथ पन्थियों को बदनाम किया जाता है। मगर ऐसा नहीं है, मूलतः यह युग्म पद नाथ परपरा से ही निकला है और इसका विशेष महत्त्व है, गोरखपंथियों साधुओं को सिद्धि-अभ्यास उपक्रम को एक अनिवार्य चर्या है 'गोरखधंधा' जो साधना की कठिन पद्धति की वजह से समाज में चर्चित हो गया।

गोरखधंधा का ही एक अन्य नाम धंधारी भी है।[3] धंधारी के शब्दकोशीय अर्थों में अकेलापन, सन्नाटा, सूखापन जैसे अर्थ भी हैं। निश्चित ही इसमें सिद्धि की राह में तल्लीन होने का संकेत छुपा हुआ है। गोरखनाथ की धंधारी अद्‌भुत थी। इसलिये साधक को चक्कर में डालने वाली सिद्धि प्रक्रिया के बतौर इसका प्रयोग हुआ होगा। गोरखनाथी जोगियों के निराली धज के बारे में जायसी ने अपने 'पद्‌मावत' काव्य में लिखा है–

मेखल सिंघी, चक्र धंधारी। जोगवाट रुदराछ अधारी।
कंथा पहिरि देडकर गहा, सिद्ध होइ कहुँ गोरख कहा।
मुद्र स्रवन कंठ जयमाला। का उपदान काध बधछाला।।

उन्मनी –

उन्मनी हठयोग की मुद्राओं में से एक मुद्रा है। इसका शाब्दिक अर्थ है विरक्त अथवा उदासीन होना। संसार से विरक्ति के लिये इस मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। इसमें हठित को

 ISSN 0976-0849

नासाग्र पर केन्द्रित करते हैं और भृकुटी के ऊपर की ओर प्रक्षेप करते हैं। गोरखनाथ, कबीर आदि योगमार्गी सन्तों ने साधना के लिये इस मुद्रा को बहुत उपयोगी माना है। 'गोरखवाणी' में इसका उल्लेख कई जगहों पर हुआ है–

टूटी डोरी रस कसै बहे, उन्मनी लागा अस्थिर रहै।।
उन्मनी लागा होइ अनन्द। टूटी डोरी विथरौ कन्द।।

'उन्मनी' हठयोग की सिद्धावस्था है, जिसमें मन समाधिस्थ हो जाता है।[4] 'आज्ञाचक्र' के समीप शरीर से सम्बन्धित सात कोष माने गये हैं। इनमें 'उन्मनी' भी एक है। जब 'चेहको' उन्मनी कोष में पहुँच जाती है, तब साधक पुनरावृत्ति को प्राप्त नहीं होता है और वह समाधिस्थ होकर अजर-अमर हो जाता है। इस स्थिति को प्राप्त हुआ साधक निरन्तर अमृत रसपान किया करता है। कबीर ने इस शब्द का बार-बार प्रयोग किया है। उन्होंने स्वयं 'उन्मनी' स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है–

उन्मनि ध्यान षट भीतर पाया, अवधू मेरा मन मतिवारा।
उनमनि चढ़ा गगन रस पीवे, त्रिभुवन गया उजियारा।

वास्तव में, 'उन्मनि' को तुरीयावस्था कहा जा सकता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये साधक भृकुटि पर ध्यान केन्द्रित करता है और ध्यानमग्न हो जाने के फलस्वरूप साधक का शरीर एकदम बाह्य बातों के प्रति विरक्त अथवा उदासीन हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त करके साधक द्वैतभाव को भूलकर पूर्ण अद्वैतावस्था की अनुभूति में रमने लगता है, जैसा कि कबीर साहब ने कहा है–

उन्मनि मनुआँ सुन्य समाना, दुविधा दुर्गति भागी।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्मनि अवस्था शून्य में केन्द्रित, अर्थात् समाहित होने में समर्थ होती है। मन की समस्त दुविधाएँ समाप्त जाती हैं, मन एकदम निश्चल और शान्त हो जाता है। द्वैत अथवा भेद बुद्धि जनित उसके समस्त संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं।

शून्य –

शून्य शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों में शून्य शब्द का प्रयोग सर्वसत्ता को अर्पण में हुआ है। महाभारत काल में शून्य परम-तत्त्व की एक संज्ञा माना गया है और महात्मा भीष्म ने विष्णु को सहस्र नामों में एक शून्य भी बताया है। जगत्गुरु शंकराचार्य ने शुन्य को परमशक्ति का एक नाम माना है। तथागत बुद्ध ने शुन्य का प्रयोग संसार एवं आत्मा की अनित्यता के अर्थ में किया है; परन्तु परवर्ती बौद्धों ने उसको अनिवर्चनीय स्थिति का द्योतक माना। महायान

मत में शून्य 'परमार्थ सत्ता' का वाचक माना जाने लगा। चाणक्य नीतिशास्त्र में शून्य के विषय में कहा गया है–

अविधजीवनं शून्यं दिक शून्या चेदवान्धवा।
पुत्रहीनं गृह शून्य, सर्वशून्या दरिद्रता।।

शून्य, शिखर, शढ़ तथा मोती आदि प्रतीकों का प्रयोग नाथ सम्प्रदाय में खूब हुआ है। गुरु गोरखनाथ ने कहा है–

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती, अगम अगोचर ऐसा।
गगन शिखर महि बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे कैसा।।

सिद्धों और नाथों के समय में 'शून्य' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ। परमज्ञान, परमतत्त्व, परमनाद, ब्रह्मरूप, सहसादचक्र, गगनमण्डल, समाधि या कैवल्यावस्था, सुषम्ना नाड़ी, अनाहतचक्र आदि।

सिद्ध और नाथकालीन अर्थवैभव युक्त शून्य कबीर को प्राप्त हुआ। उन्होंने इसको ग्रहण तो किया, साथ ही उसके अर्थवैभव में मौलिक योगदान भी किया। उन्होंने शून्य को 'भावब्रह्म' के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार कबीर का शून्यवाद एक सच्चे श्रद्धालु और आस्तिक भक्त का शून्यवाद है। वह बौद्धों के शून्यवाद से सर्वथा भिन्न है।

सहज–

'सहज' का सामान्य अर्थ स्वाभाविक अथवा सरल है। दर्शन के क्षेत्र में इसका अर्थ स्वरूप में स्थित अथवा जब जीव अपने आनन्द रूप को पहचान ले, तब समझ लेना चाहिए कि वह अपने 'सहज' रूप में है। सिद्धों, नाथों तथा सन्तों में समान रूप से सहज शब्द का महत्त्व है। यद्यपि इसको एक ही अर्थ में प्रयुक्त नहीं किया है।

सहज वह परम तत्त्व है जो प्रज्ञा और उपाय के सहगमन से उत्पन्न होता है, उसी के आधार पर सहज काया, सहज सुन्दरी, सहजानन्द आदि की कल्पना की गई है। किन्तु यह केवल बौद्धों ने नहीं किया था। लगता है, कई तांत्रिक पद्धतियों ने 'सहज' शब्द को स्वीकार कर उसे नया गुह्य अर्थ दे दिया था। मत्स्येन्द्रनाथ के 'योगिनी-कौल-मार्ग' में भी सहज से स्वभाविक प्रवृतिमूलक मार्ग के अतिरिक्त ऐसी साधना का अर्थ लिया जाने लगा, जिसने स्त्रीतत्त्व और पुरुषतत्त्व का मिलन सम्पन्न हो।[5] 'जोगिनी-कौल-मार्ग' का नाथपन्थ से काफी निकट से संपर्क रहा है। नाथ-पंथ में भी शक्ति और शिव का मिलन नाद और बिन्दु के मिलन के रूप में माना जाता रहा है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सिद्धों के पूर्व बौद्ध परम्परा में सहज शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। नाथ पंथी

 ISSN 0976-0849

साहित्य में भी सहज को परमतत्त्व के रूप में ग्रहण किया गया है। 'गोरखबानी' में कहा गया है– "ए ही पाँचों तत बाबू सहज समान।" इसमें दुविधा मिटाकर सहज स्वभाव में रहने का उपदेश है। गोरखनाथ सहज तत्त्व के व्यापारी बताये गये हैं। सहज को परम पद निर्वान बताया गया है। गोरखनाथ जी साधक के आदर्श आचरण को व्याख्यापित करते हुये कहते हैं–

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चलिबा, धीरे धरिबा पावं
गरब न करिबा, सहजै रहिबा भगत गोरख रावं।

यह 'सहज रहिबा' या 'सहज रहनि' वस्तुतः सन्तों में बहुत प्रमुख हो गयी। कबीर ने जब कहा है कि "सन्तों सहज समाधि भली" तब अन्होंने सहज समाधि से न प्रज्ञा और उपाय के समागम का संकेत किया है, न नाद और बिन्द के मिलन का। उन्होंने केवल समस्त वाह्य आडम्बरों से रहित, सरल भावपूर्ण जीवन निर्वाह के अर्थ में प्रयोग किया है। वैसे तो नाथों में भी सहज रहनि का उल्लेख है पर कबीर में सहज रहनि का प्रमुख आधार है हरि भक्ति और प्रभु के प्रति भावात्मक अर्पण। नाथपन्थी साहित्य में इसका सर्वथा अभाव है। सिद्धों ने 'सहजावस्था' को द्वैताद्वैत विलक्षण की स्थिति माना है, परन्तु नाथ पन्थियों ने इस शब्द का प्रयोग निम्न अर्थ में किया है कारण स्पष्ट है। नाथपन्थी सहजयोगी में विश्वास न करके हठयोग में विश्वास करते थे। उन्होंने इसका प्रयोग स्वाभाविक अर्थ में दिया है। इस प्रकार सिद्धि का पारिभाषिक 'सहज' शब्द नाथों में आकर स्वाभाविक का वाचक बन गया। गोरखनाथ ने एक स्थान पर कहा है–

गिरही को सो गिर है काया, अभ्यन्तर को त्यागे माया।
सहज सील का धरै शरीर, सो गिर ही गंगा का नीर।।

कबीर दास ने 'सहज' शब्द का प्रयोग एक सर्वथा भिन्न अर्थ में किया है। उनका 'सहज' सहजवाद तथा सिद्धों के जीवन के सहज उपयोग से भिन्न है। कबीर के अनुसार सहजवाद भक्ति की सहज प्राप्ति से सम्बन्धित है।[6] इसके सहजवाद का लक्ष्य स्वभाविक गति के वैराग्य और भक्ति की प्राप्ति करना है जो बहुत कुछ वैष्णव आचार्यों पुष्टिमार्गी भक्ति-पद्धति के सदृश है। यथा–

सहज-सहज सब कोय कहै, सहज न चीन्हे कोय।
जिन सहजे हरि जी मिले, सहज कहीजे सोय।।

कबीरदास ने कहीं-कहीं समाधि और नादस्वरूपी ब्रह्म के अर्थ के पर्याय के रूप में भी 'सहज' शब्द का प्रयोग किया है और कहीं इन्होंने निर्गुण ब्रह्म के अर्थ में भी किया है।

नाद और बिन्दु-

नाद और बिन्दु सृष्टि के मूल तत्त्व के सम्बन्ध में योगियों द्वारा कल्पित तत्त्व है। 'नाद' शब्द

का पर्याय शब्द तत्त्व है जिसके द्वारा अव्यक्त ब्रह्म व्यक्त रूप में आया और सृष्टि का क्रम चला। वैदिक साहित्य में शब्द को ब्रह्म कहा गया है। वहीं नाद मानव शरीर के भीतर विद्यमान है। साधना की पूर्ति होने पर उसकी अनुभूति होती है। इस नाद में ही ज्योति का भी आविर्भाव होता है। यह नाद परमात्व तत्त्व का भी प्रतिनिधित्व करता है, और इसको शिव भी कहते हैं।[7] नाद में लय पाने की सिद्धि के विषय में गुरु गोरखनाथ ने कहा है कि वह विरले को ही प्राप्त होती है। जो इसको प्राप्त करता है, वह सिद्ध हो जाता है। 'बिन्दु' शक्ति का परिचायक है। शिव के साथ इसका मिलन प्रत्येक साधक का अभीष्ट है। यह जीवन तत्त्व कहा जाता है और जीव शक्ति के रूप में वीर्य का पर्याय माना गया है। इसी कारण, बिन्दु की साधना का ही एक दूसरा नाम भी लिया गया है।

सिद्धों के पाद-बिन्दु का प्रयोग खूब किया है। परन्तु उनके द्वारा किये गये प्रयोगों में नाद-बिन्दु साधना के सात्विक रूप के दर्शन नहीं होते हैं। कारण स्पष्ट है, अधिकांश सिद्ध वाममार्गी थे। इसी कारण सिद्ध मठ में इस साधना को विशेष महत्त्व नहीं दिया गाया है। नाथ-पंथ सिद्धमत की प्रतिक्रिया स्वरूप उदय हुआ था। इस कारण नाथ-पंथ में नाद-बिन्दु के तात्विक रूप को विशेष महत्व दिया है।

कबीरदास ने नाद-बिन्दु शब्दों का प्रयोग उन्हीं अर्थों में किया है, जिन अर्थों में गुरु गोरखनाथ ने किया है। गोरखनाथ ने कहा है कि वह किसी विरले को ही प्राप्त होती है। जो इसको प्राप्त करता है, यह सिद्ध हो जाता है।

कबीर बिन्दु की साधना को उपसाधना मानते हैं और भगवत्शक्ति को ही मूल साधना मानते हैं–

नाद ब्यंड की नादरी, रामनाम कनिहार।
कहैं कबीर गुल गाहिले, गुर गति उतरौ पार।।

कबीर के विचार से नाद-बिन्दु उस नाद के समान है जिसके लिये रामनाम रूपी खेवैया अपेक्षित है। उनके मतानुसार कोरी नाद-बिन्दु साधना काठ की नाव के समान शुष्क एवं जड़ है। एक स्थान पर तो बिन्दु साधना की उन्होंने निन्दा तक कर दी है–

बिन्दु राख जौ तरपै भाई।
सुख है क्यों न परम गति पाई।

इस प्रकार कबीर ने परम्परा से प्राप्त नाद और बिन्दु की साधना को विशेष महत्व नहीं दिया। उन्होंने प्रायः नाद का प्रयोग 'अनहद नाद' के अर्थ में तथा बिन्दु का प्रयोग 'ब्रह्मचर्य पालन' के अर्थ में किया है। कहीं-कहीं पर उन्होंने नाथ-पन्थियों की मान्यता के अनुसार 'नाद' का प्रयोग 'परमात्मा' के लिये और बिन्दु का प्रयोग 'जीवात्मा' के लिये किया है।

 ISSN 0976-0849

सन्दर्भ सूची:

1. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, गोरखनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2005 ई.
2. बनर्जी, अभय कुमार, गोरख दर्शन, दिग्विजयनाथ न्यास प्रकाशन, गोरखपुर, 1971 ई., पृ. 39
3. बिग्स, जी.डब्लू., गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज, जी.एम.सी.ए. पब्लिशिंग हाऊस, लंदन, 1938 ई., पृ. 113
4. राघव, रांगेय, गोरखनाथ और उनका युग, आत्माराम एण्ड संस, नई दिल्ली, 1963 ई., पृ. 81
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1950 ई., पृ. 37
6. मल्लिक, कल्याणी, नाथ संप्रदायेत्तर इतिहास, दर्शन और साधना प्रणाली, कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रेस, कलकत्ता, 1950 ई., पृ. 183
7. चंदोला, भगवती प्रसाद, नाथ पंथ, नेपाली कोठी प्रकाशन, वरुणापुल, वाराणसी, 1975 ई., पृ. 63

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 21-29

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

नाथपंथ : दर्शन और साधना

प्रो. द्वारका नाथ*

सारांश: नाथ योग दर्शन एवं साधना, जिसके आदि प्रवर्तक आदिनाथ शिव हैं। इस पंथ के विकास एवं संवर्द्धन में नाथपंथी साधकों विशेषकर मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, चर्पटीनाथ आदि नवनाथों सहित अनेक नाथयोगियों और साधकों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। अपने तत्व दर्शन एवं साधना के लिए पूर्ववर्ती सभी वैदिक-अवैदिक, निगमागम परम्पराओं में विकसित यौगिक एवं तांत्रिक विचारधाराओं और साधनाओं का समन्वित और संशोधित रूप है, जिसे निश्चित रूप से श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी एवं गोरखनाथ जी ने अलग पहचान और मान्यता के साथ ही व्यापक प्रचार-प्रसार भी दिया। इस प्रकार यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि नाथ योग दर्शन एवं साधना के स्वरूप निर्धारण में पूर्ववर्ती औपनिषदिक चिन्तन, पतंजलि योग दर्शन एवं साधना का पर्याप्त प्रमाण और अवदान है।

बीजशब्द: नाथ तत्व, अजपा-जपा, गोरखनाथ, पिंड, ब्रह्मांड, कुंडलिनी, नाद, जीव, ब्रह्म, दर्शन

महायोगी गुरु गोरखनाथ से हिंदू धर्म एवं दर्शन में एक नये युग का सूत्रपात्र हुआ था। आदि शंकराचार्य के बाद ऐसी महान आत्मा भारत में अवतरित नहीं हुई थी। आदि शंकराचार्य की तरह ही उनकी भूमिका भारतीय धर्म साधना एवं साहित्य में महत्वपूर्ण है। अपने समकालीन दार्शनिकों एवं धार्मिक शिक्षकों में गोरखनाथ उत्कृष्ट हैं। उन पर भारत के संत दर्शन का पूरा भवन खड़ा है। उन्होंने परमसत्य को पाने के लिए जितनी विधियाँ दी हैं, यदि विधियों की दृष्टि से देखा जाय तो वे सबसे बड़े आविष्कारक हैं। उन्होंने साधना की नई विधा सिखाई। जात-पात के भेदभाव के विरुद्ध भी उन्होंने आवाज उठाई। वह कहते थे कि कोई भी व्यक्ति उनकी शिक्षाओं का अनुसरण कर सकता है और संत बन सकता है। गोरखनाथ साधना-तपस्या के एक पंथ के संस्थापक भी थे जिसे नाथपंथ कहा जाता हैं। वे सिद्ध मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्य थे। इस पंथ को चलाने वाले मत्स्येन्द्र नाथ (मछन्दर नाथ) तथा गोरखनाथ माने जाते हैं।

*आचार्य, दर्शनशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

गोरखनाथ की रचनाएं संस्कृत और प्राचीन हिंदी में मिलती हैं। संस्कृत रचनाओं में 'गोरक्ष सिद्धांत', 'सिद्ध साधना पद्धति', 'कापालिक साधना पद्धति' आदि हैं। हिंदी रचनाओं को 'गोरख वाणी' नाम से डॉ. पितांबर दत्त बड़थ्वाल द्वारा संग्रहीत किया गया है। डॉ. बड़थ्वाल ने चौदह रचनाएं गोरखनाथ द्वारा रचित मानी है- सबदी, पद, प्राण संकली, सिष्यादरसन, नरवैय बोध, अभैमात्रा जोग, आतम-बोध, पंद्रह तिथि, सप्तवार, मछीन्द्र गोरखनाथ, रोमावली, ग्यानतिलक ग्यानचौंतीसा एवं पंचमात्रा। इन रचनाओं में उपदेश और सबद अर्थात् गीत दोनों ही हैं। इनकी भाषा आध्यात्मिक, शब्दावली प्रधान लोकभाषा है, जो आगे चलकर कबीर आदि निर्गुणोपासक संतो द्वारा अपनाई गई। अनेक साधानात्मक उपदेश और अनुभव जो गोरखवाणी में मिलते हैं, वे अन्य संतो की रचनाओं में भी प्राप्त होते हैं। इसलिए इन्हें संत काव्यधारा का उद्‌गम भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ-

बसती न सुन्यं, सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा
गगन शिषर महि बालक बोले ताका नाँव धरहुगे कैसा।[1]

नाथपंथी साधकों में गोरखनाथ के समकालीन और परवर्ती कुछ साधकों के नाम उल्लेखनीय हैं- चौरंगीनाथ, चरपटीनाथ, गोपी चन्द्र, भतृहरि, नार्गाजुन, चुठाकरनाथ, भरथरी, जलंधीपाव आदि। नाथपंथ का साहित्य कठोर साधनात्मक था। उसमें लोक जीवन में आध्यात्मिक शक्ति जगाने की अद्‌भुत क्षमता थी। इसी कारण भक्तिकाल में संत काव्य पर उसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था।

भारत की सारी संत-परपंरा महायोगी गुरु गोरखनाथ की ऋणी है। जैसे पंतजलि के बिना भारत में योग की कोई संभावना नहीं रह जायेगी; जैसे बुद्ध के बिना ध्यान की आधारशिला उखड़ जाएगी; जैसे कृष्ण के बिना प्रेम की अभिव्यक्ति को मार्ग न मिलेगा- ऐसे गोरख के बिना उस परम सत्य को पाने के लिए विधियों की जो तलाश शुरू हुई, साधना की जो व्यवस्था बनी, वह न बन सकेगी। गोरख ने जितना आविष्कार मनुष्य के भीतर अंतर-खोज के लिए किया, उतना शायद किसी ने भी नहीं किया है। उन्होंने इतनी विधियां दीं कि अगर विधियों के हिसाब से सोचा जाये तो गोरख सबसे बड़े आविष्कारक हैं। उन्होंने मनुष्य के अंतरतम में जाने के लिए, ढ़ेरों द्वार खोले। जो भी सार्थक है, गोरख ने कह दिया है। जो भी मूल्यवान है, कह दिया है।

गोरख कहते हैं-

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरख मरि दीठा।।[2]

अर्थात् मर जाओ, मिट जाओ, बिल्कुल मिट जाओ! क्योंकि मृत्यु से ज्यादा मीठी और कोई चीज इस जगत में नहीं है और ऐसी मृत्यु मरो, जिस तरह से मरकर गोरख को दर्शन उपलब्ध हुआ, ऐसे ही तुम भी मर जाओ और दर्शन को उपलब्ध हो जाओ।

गोरखनाथ मध्यकाल के एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली धार्मिक नेता थे। इस पंथ का व्यापक प्रभाव और प्रचार गुरु गोरखनाथ के व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण हुआ। लोक-जीवन, इतिहास और साहित्य के अनेक संदर्भ हैं, जिनमें गोरखनाथ का उल्लेख मिलता है। इन्होंने शैव और शाक्त साधनाओं को मिलाकर शिव-शक्ति योग साधना का प्रचार किया, और काया-शोधन अर्थात् शरीर को शुद्ध करना साधना का आधारभूत कृत्य बताया। इनकी साधना हठयोग पर आधारित है, जिसमें प्राणायाम और ध्यान के द्वारा कुंडलिनी जाग्रत करने का विधान है। कुंडलिनी जाग्रत करने से ही अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरु-महिमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनः साधना, कुंडलिनी-जागरण, शून्य-समाधि का वर्णन किया है। इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता मिलती है।

दार्शनिक दृष्टि से इस पंथ में पिंड और ब्रह्मांड को एक समान कहा गया है 'जोई-जोई पिंडे सोई ब्रह्मांडे' अर्थात् जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में हैं। इसीलिए शरीर को जानना और उसकी साधना के साथ सिद्धि से संपूर्ण ब्रह्मांड को भी जाना जा सकता है और उसकी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। इस साधना पथ में जगत का मूल चेतन तत्व शिव है। शक्ति उसकी क्रियात्मक शक्ति है। शिव तत्व आत्मतत्व है और शक्ति उससे अभिन्न है। शिव कहते हैं **"हे परमेश्वरि'! शक्ति से रहित होने पर शिव कुछ भी करने में असमर्थ हैं, इससे युक्त होकर ही वह कुछ करने में समर्थ होते हैं।"**[3] इसीलिए शक्ति के बिना 'शिव' को शव कहा गया है। एक ही प्रधान तत्व के दो रूप हैं शिव और शक्ति। इन्हीं के योग से सृष्टि होती है। शक्ति ही पांच अवस्थाओं से होते हुए कुंडली या कुंडलिनी के रूप में प्रादुर्भूत हुई है। इस तत्व दर्शन के द्वारा पिंड को ब्रह्मांड का लघु रूप बताया गया है और शिव-शक्ति दोनों को ही एक ही चेतन का द्वधा रूप बताकर शंकराचार्य के जगत मिथ्यात्व का प्रतिवाद किया गया। शंकराचार्य ने ब्रह्म को ही सत्य और जगत को मिथ्या माना था। गोरखनाथ ने इसका प्रतिवाद किया और उनके पंथ ने जगत को विश्वसनीय बनाया। जीव या पिंड के महत्व को प्रतिपादित किया और पिंड की साधना व सिद्धि से ब्रह्मांड की सिद्धि का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

गोरखनाथ सृष्टि विकास से अपना विचार प्रारंभ करते हैं। मानव का यह शरीर (पिंड) किस प्रकार रचित हुआ, उसकी रचना की क्या प्रक्रिया थी, उसकी रचना में कौन-कौन से तत्व हैं और किन-किन तत्वों से यह शरीर संचालित होता है- ये सारी शरीर वैज्ञानिक जिज्ञासाएं गोरखनाथ के सामने उठती हैं, क्योंकि उनके सामने सिद्ध काया के प्राप्ति की समस्या थी; क्योंकि परिपक्व घट रूप काया के बिना यथेष्ट समय तक ज्ञानजल उसमें टिक नहीं सकता था। इस समस्या का समाधान खोजते-खोजते गोरखनाथ संपूर्ण सृष्टि प्रक्रिया और उसके विकासमान तत्वों का व्याख्यान करने लगते हैं और अंततः परमतत्व नाथ (परम शिव) तक पहुंच जाते हैं। साधना की यह प्रक्रिया सृष्टि के

 ISSN 0976-0849

विपरीत है, जिसमें पिंडपद का परमपद में समरसीकरण हो जाता है और वह भी सिद्ध काया में जीवनमुक्ति की अवस्था में। गोरखनाथ के दर्शन के अनुसार जीवन मुक्ति की अवस्था ही आदर्श अवस्था हैं। देहपात में जो मुक्ति होती है, उसे गोरखनाथ यथार्थ मुक्ति नही कहते, क्योंकि इस मुक्ति में शरीर ही नहीं रहता। जिस देह से परमपद की प्राप्ति होती है, उसकी रक्षा करना या अजर अमर करना नाथ योगी का कर्तव्य है। विदेहमुक्ति में इस देह का ही त्याग हो जाता है। गोरखनाथ ने कहा है:

अजरामरपिंडो यो जीवन्मुक्तः स एव हि।[4]

इस प्रकार के योग से दैहिक परिवर्तन साधित होता है। इस देह लाभ को अजरामरपिंड लाभ या सिद्धदेहलाभ कहते हैं, जिससे इच्छामृत्युवरण संभव हो जाता है। वेदान्त का आत्म-साक्षात्कार नाथमार्ग की परमपद प्राप्ति है, किंतु साथ ही गोरखनाथ आदि सिद्ध उस देह को ही स्थायी करने के लिए सचेष्ट हैं। योग की साधना से योगी प्रारब्ध का क्षय करता है। तत्पश्चात वह देह को धारण रखे या न रखे, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। इस प्रकार नाथयोगी का लक्ष्य होता है ऐसे शरीर की प्राप्ति जिसका पात या पतन न हो, जिसके बाहर प्राण न जाता हो। इसका लक्ष्य वह अवस्था है, जिसमें शरीर भी ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। शरीर भी चिन्मय हो जाता है और अनन्यता की प्राप्ति होती है। यह पिंड सिद्धि परमपद में समरसीकरण का अनिवार्य सोपान है। इस प्रकार नाथों का लक्ष्य है जीवनमुक्तियुक्त सिद्धदेह से नाथ रूप में अवस्थान या पिंडपद का परमपद में समरसीकरण।

गोरखनाथ का तत्वज्ञान मूलतः सिद्धसिद्धान्तपद्धति में विवेचित है। सिद्धसिद्धान्तपद्धति में कश्मीर शैव दर्शन के 36 तत्वों का पूरा दार्शनिक समाहार प्रतीत होता है। पिंड और ब्रह्मांड की समतत्वता और समपदार्थता सिद्ध करने के लिए दार्शनिक आधार के रूप में इस तत्व ज्ञान का विकास किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सिद्धसिद्धान्तसंग्रह और सिद्धसिद्धान्तपद्धति के आधार पर छत्तीस तत्वों का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है:

1. परमशिव
2. शक्ति
3. सदाशिव
4. ईश्वर (इन्द्रप्रधान)
5. शुद्ध विद्या (उभय प्रधान)
6. माया

7-11. पंचकंचुक

12. पुरुष

13. प्रकृति

14. महत्

15. अंहकार

16-20. पंचतन्मात्र

21-31. एकादश इन्द्रियां

32-36. पंचभूत

पिंडोत्पत्ति के अनुसार विभाजित करने पर कुछ छः पिंडो का विवरण मिलता है, जिनमें उपयुक्त तत्वों का विनियोजन है:

1. परपिंड (तत्व 1-2)
2. आद्यपिंड (तत्व 3-5)
3. साकार या महासाकार पिंड (तत्व 5-13)
4. प्राकृत पिंड या प्रकृति पिंड (तत्व 14-20)
5. अवलोकन पिंड (तत्व 21-31) और
6. गर्भ पिंड (तत्व 32-36)

यह अंतिम पिंड स्थूलतम पिंड है और सृष्टि प्रक्रिया में अंतिम स्थूल विकास है। इस प्रकार गोरखनाथ ने शिव-शक्ति के विकास को अंततः जीव तक दिखाकर गर्भपिंड के रचना की पूरी भूमिका प्रस्तुत की है।

गोरखनाथ ने पिंड विचार करते हुए चक्रों के ध्यान का वर्णन किया है। तांत्रिक वाङ्मय में षट्चक्रों के ऊपर एक सहस्त्रार चक्र का भी वर्णन मिलता है। छठे चक्र के रूप में तालुचक्र का वर्णन किया गया है। तांत्रिक ग्रन्थों में भ्रूमध्य स्थिति द्विदलात्मक आज्ञाचक्र को छठा चक्र माना गया है। तंत्रों की भूमध्य स्थिति छठा चक्र ही गोरखनाथ का सप्तम चक्र है। आठवां चक्र ही ब्रह्मरंध्र निर्वाण चक्र है, जहां जालन्धरपीठ है। तांत्रिकों का सातवां चक्र आकाश चक्र या सहस्त्रार चक्र है जो गोरखनाथ का नवां और अंतिम चक्र है जिसे उन्होंने 'षोडशदलकमल' कहा है, जिसकी कर्णिका में त्रिकूटाकारा परमशून्या उर्ध्व शक्ति है, जिसका ध्यान करने का निर्देश है। यही पूर्णगिरिपीठ है। चक्रों का विस्तृत विवरण निम्नवत् हैं[8]:

 ISSN 0976-0849

चक्र	स्थान	दल संख्या	वर्ण	तत्व और गुण	तत्व का रंग	मंडल का आकार	बीज और वाहन	देवता और वाहन	धातु शक्ति	अन्यन्यत्व और इन्द्रिय
1. मुलाधार	रीढ़ के अधोभाग में पायु और मुष्क मूल के मध्य	4	व, श. ष, स	पृथ्वी आकर्षण गंध	पीत	वर्गाकार	लं ऐरावत	ब्रह्मा हंस	डाकिनी	गंध तत्व घ्राणेन्द्रिय पैर
2. स्वाधिष्ठान	मेरुदण्ड में मेढ़ के ऊपर	6	ब भ म य र ल	जल, संकोचन रस	श्वेत	अर्द्ध चन्द्र	व मकर	विष्णु गरुड़	रकिनी	रसतत्व रसना हाथ
3. मणिपुर	मेरुदण्ड में नाभि के पास	10	ड ढ ण न त थ द ध प फ	तेज प्रसरण रूप	लाल	त्रिभुज	रं मेष	रुद्र वृषभ	लाकिनी	रूपतत्व, चक्षु, पायु
4. अनाहत	हृदय के पास	12	क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ	वायु गति स्पर्श	धूम्र	षट् कोण	य कृष्ण मृग	ईश	काकिनी	स्पर्श, त्वचा उपस्थ
5. विशुद्धाख्य	कंठ के पास	16	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ल लृ ए ऐ ओ औ अं अः	आकाश अवकाश शब्द	श्वेत	वृत्त	ह श्वेत हस्ती	सदाशिव	शाकिनी	शब्द कान वाक्
6. आज्ञा	भ्रुवों के बीच में	2	ह क्ष	मन	?	?	ओं	शंभु	हाकिनी	महत् सूक्ष्म प्रकृति हिरण्यगर्भ

गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित नाथ-साधना के लक्ष्य से स्पष्ट है कि वे साधना के दो लक्ष्य मानते हैं- गौण लक्ष्य-पिंडसिद्धियुक्त जीवन्मुक्ति; मुख्य लक्ष्य है- पिंडपद का परमपद में समरसीकरण। गोरखनाथ के कायाकल्प या कायाशोधन का उद्देश्य ब्रह्मपद की उपलब्धि में सहायक होना है।

गोरखनाथ के साधनमार्ग में गुरु का महत्व सर्वोपरि है। सिद्धसिद्धान्तपद्धति में कहा गया है कि सिद्ध पुरुष अदैहिक साधना का आश्रय ग्रहण कर परमपद को प्राप्त करते हैं। इन साधनों में स्थिति लाभ की प्राप्ति गुरु के दृष्टिपात से होती है। इसलिए गुरु से बड़ा कोई नहीं है। वह अपनी करूणा के खड्गपात से पशु (साधक) के आठों पाशों का छेदन करता है। साधक को भ्रान्त करने वाले को गोरखनाथ गुरु नहीं मानते। उपर्युक्त गुणधर्मों से समलंकृत गुरु को प्राप्त कर शिष्य जन्म और संसार बंधन से मुक्त हो जाता है तथा परमानंदमय होकर निष्कल शिवत्व की उपलब्धि करता

है। प्रकृति के सभी विकारों का अवधूनन करने वाला सिद्ध ही, अवधूत योगी ही, सदगुरु का पद प्राप्त कर सकता है।

गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। हठयोगियों के सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चन्द्र। इन दोनों के योग को ही 'हठयोग' कहते हैं। गोरखनाथ ने ही षट्चक्रों वाला योग मार्ग चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करने वाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था, और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था। गोरखनाथ जी के अनुसार "शरीर के नवों द्वारों को बन्द करके वायु के आने-जाने का मार्ग यदि अवरूद्ध कर दिया जाए, तो उसका व्यापार 64 सन्धिओं में होने लगेगा। इससे निश्चय ही कायाकल्प होगा और साधक एक ऐसे सिद्ध में परिणत हो जायेगा जिसकी छाया नहीं पड़ती"–

'अवधू नवघाटी रोकिलै बाट, बाई वणिजै चौसठि हाट।
काया पलटे अविचल विद्य, छाया विवरजिते निपजै सिध।।'[6]

वे कहते हैं, "साधना के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाने पर अनाहत नाद सुनाई पड़ता है जो समस्त सार तत्वों का भी सार है और गम्भीर से गम्भीर है। इससे ब्रह्मानुभूति की स्थिति उपलब्ध होती है जिसे स्वसंवेद्य होने के कारण कोई शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। तभी प्रतीत होने लगता है कि उसके अतिरिक्त सारा वाद-विवाद झूठा है।"

सारमसारं गहर गभीरं गगन उछलिया नादं।
मानिक पाया फेरि लुकाया झूठा वादविवादं।।[7]

इसी कारण ये प्राणायाम की साधना को पूरा महत्व देते हैं और कहते हैं कि उन्मनी योग इस प्रकार श्वासोच्छ्वास के इस 'भक्षण' द्वारा ही सिद्ध होता है। वे यह भी कहते हैं कि उक्त युक्तियों के द्वारा शब्द को प्राप्त कर लेने पर परमात्मा आत्मा में वैसे दिखने लगता है, जैसे जल में चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है और शरीर की शुद्धि होकर अमरत्व भी मिल जाता है। इन्होंने अजपा-जप द्वारा चंचल मन को स्थिर कर ब्रह्मरन्ध्र महारस या योगामृत उपलब्ध करने की विधि दिया है और इस प्रकार अपनी श्वास क्रिया की धौंकनी के सहारे ही रस जमाकर उक्त कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।[8] गोरखनाथ की साधना की विशेषता उनके उक्त अजपा-जप तथा उसके साथ ब्रह्मज्ञान को भी महत्व देने में हैं। वे कहते हैं कि "इस प्रकार मन लगाकर जाप जपो की 'सोहं-सोहं' का उपयोग वाणी के बिना भी होने लगे। दृढ़ आसन पर बैठकर ध्यान करो और रात-दिन ब्रह्मज्ञान का चिंतन करो।"[9]

इनके उपदेशों का सार यही प्रतीत होता है कि "दशम द्वार या ब्रह्मरंध्र में सदा ध्यान केन्द्रित रखो, निराकार पद का सेवन करो, अजपा-जप जपो और आत्मतत्व पर विचार करो। इससे सभी

 ISSN 0976-0849

व्याधियां दूर हो जायेंगी तथा पुण्य या पाप किसी से संसर्ग नहीं रह जायेगा। निरन्तर एक समान व सच्चे हृदय के साथ 'राम' में रमना ही केवल एकमात्र उद्देश्य है और इसी के द्वारा मुझे भी परमनिधान या ब्रह्मपद उपलब्ध हुआ है।"[10]

हठयोग की साधना में ईश्वरवाद व्याप्त था। गोरखनाथ ने लिखा है कि धीर वह है, जिसका चित्त विकार- साधन होने पर भी विकृत नहीं होता:

नौ लख पातरि आगे नाचौं, पिछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।[11]

गोरखनाथ के नाथ योग में आसन, प्राणायाम, ध्यान, षट्कर्म, मुद्रा बन्ध-मंत्र जप आदि का विशेष महत्व है। षट्कर्म शरीर एंव मन शोधन का सुव्यवस्थित अभ्यास है। इस मूल उद्देश्य की पूर्ति हेतु योगियों द्वारा 6 वैज्ञानिक व यौगिक क्रियाओं का अभ्यास किया जाता है जो षट्कर्म के अंग हैं–

1. नेति- नासिका-प्रदेश के शुद्धिकरण की विधि है।
2. धौति- मुँह से गुदा तक की सम्पूर्ण अन्न-नालिका के शुद्धिकरण के प्रकिया की श्रृंखला है। इसमें नेत्र, कर्ण, दांत, जिह्वा, खोपड़ी की सरल सफाई की विधियां भी सम्मिलित हैं।
3. नौलि- उदरस्थ अंगों की मालिश तथा उन्हें बल प्रदान करने की शक्तिशाली विधि है।
4. बस्ति- बड़ी आंत की सफाई करने एवं उसमें सुचारूता लाने के लिए है।
5. कपालभाति- मस्तिष्क की अग्र प्रदेश की शुद्धता के लिए तीन क्रियाओं की सरल श्रृंखला है।
6. त्रटक- किसी वस्तु पर गहन एकाग्रता की क्रिया है। इससे एकाग्रता में वृद्धि होती है, सुषुप्त आत्मिक शक्तियों का विकास होता है तथा नेत्रों को शक्ति मिलती है।

निषकर्षत: देखा जाए तो गोरखनाथ जी के साहित्य में यदि उत्तर भारत की सांस्कृतिक विविधता का चित्र मिलता है तो बोली बानी की सुगंध भी है। जहां उन्होंने गुरु को महत्व दिया, वहीं उन्होंने शरीर एवं मन की शुद्धता एवं सात्विकता को केवल योगी के लिए नहीं अपितु सर्म्पूण मनुष्य जाति के लिए आवश्यक माना। नैतिक एवं सात्विक भक्ति की ज्योति प्रज्वलित करके भक्ति आंदोलन के लिए समृद्ध पृष्ठभूमि का निर्माण किया। इसीलिए भारत का भक्ति आंदोलन एवं भक्ति साहित्य गोरखनाथ जी की चेतना से सम्पन्न है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. गोरखबानी, सबदी पद-1, संपा. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, इलाहाबाद, वि. सं. 1999, पृ. 07

2. गोरखबानी, सबदी पद-26, तत्रैव
3. वामकेश्वर तन्त्र, संपा.- पवार, नलिनीकान्त, बाम्बे ओरिएटल प्रेस, बम्बई, 1976 ई., पृ. 56
4. योगबीज, गोरखविरचित, योगप्रचारिणी सभा, गोरक्षटिल्ला, काशी, वि.स. 2008, पृ. 27
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ सम्प्रदा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1970 ई., पृ. 135
6. गोरखबानी, तत्रैव, पृ. 5
8. गोरखबानी, तत्रैव, पृ. 91
9. गोरखबानी, तत्रैव, पृ. 124
10. गोरखबानी, तत्रैव, पृ. 127
11. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, तत्रैव, पृ. 135

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 30-39
ISSN 0976-0849

नाथ दर्शन में मोक्ष की अवधारणाः भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. सुनील कुमार*

सारांशः भारतीय दर्शन में दुःख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति को मोक्ष या मुक्ति कहा गया है। विभिन्न शास्त्रों ने मुक्ति के स्वरूप को अलग-अलग रूपों में प्रकट किया है। भारतीय दर्शन में मोक्ष की अवधारणा की मान्यता चार्वाक को छोड़कर प्रायः सभी दर्शनों में स्वीकार किया गया है। नाथ सिद्ध साहित्य में मुक्ति को मोक्ष, परमपद, निर्वाण, मिलन, सिद्धि, कैवल्य आदि पदों से वर्णित किया है। नाथ मत में, जब सहज समाधि में मन से मन को देखा जाता है, तब जो अवस्था होती है, वही मोक्ष है। यह वह अवस्था है, जहाँ चित्त पूर्ण विश्राम करता है। सांख्ययोग के अनुसार चैतन्य एक शुद्ध, नित्य, कूटस्थ और गति की अत्यन्त उपशम अवस्था है, किन्तु नाथयोग का परमतत्त्व संवित, शुद्ध और शान्त तो है किन्तु प्रशान्त सागर के समान उसमें निष्क्रियता नहीं है। नाथयोगियों की मुक्तावस्था परासंवित् आनन्द की तरंगों से तरंगायित अवस्था है। मुक्ति का लक्ष्य दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति के साथ नित्यानन्द की प्राप्ति भी है। अतः नाथयोग की मुक्तावस्था विशुद्ध आनन्द की अवस्था है। उस अवस्था में राग नहीं होता अपितु वह तो आत्मा का स्वरूपानन्द है जो केवल आत्मा के द्वारा ही प्राप्तव्य है। इसीलिए नाथयोग की मुक्ति योगियों को अधिक प्रिय होती है। इस पत्र में विभिन्न भारतीय दर्शनों से तुलना करते हुए नाथ दर्शन में मुक्ति की अवधारणा को स्पष्ट किया जाएगा।

बीजशब्दः मोक्ष, कैवल्य, मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग, स्वरूपावस्थान, पुरुषार्थ, भारतीय दर्शन में मोक्ष की अवधारणा, नाथ दर्शन में मोक्ष

भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ स्वीकार किये गये हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष को साध्य तथा धर्म, अर्थ और काम को साधन माना गया है। मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग, कैवल्य, निःश्रेयस, स्वरूपावस्थान, अर्हत आदि अनेकानेक शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। मोक्ष को सभी

*रिसर्च एसोसिएट, महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

दु:खों का आत्यांतिक अभाव या निवृत्ति और आनद की अवस्था तथा जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति माना गया है। यह भारतीय दर्शन का केंद्र बिन्दु है। इस कारण विभिन्न भारतीय दर्शन विचार-प्रणाली ही नहीं अपितु जीवन-प्रणाली भी है। विभिन्न शास्त्रों में मुक्ति के स्वरूप को अलग-अलग रूपों में प्रकट किया गया है।

चार्वाक दर्शन में मोक्ष

चार्वाकों के अनुसार मृत्यु के उपरांत मोक्ष की अवधारणा निराधार है। ये पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु– इन चारों को ही जगत् का तत्त्व मानते हैं। इन्हीं तत्त्वों से शरीर बनता है। शरीर के अतिरिक्त आत्मा कोई अलग तत्त्व नहीं है। जीवित शरीर ही आत्मा है। यह शरीर का भोगायतन है। शरीर के नष्ट होने पर दु:खों की आत्यान्तिक निवृत्ति हो जाती है। अत: मृत्यु ही मोक्ष है।[1]

बौद्ध दर्शन में मोक्ष

बौद्ध दार्शनिक चार आर्य सत्य स्वीकार करते हैं– दु:खम्, दु:ख समुदय:, दु:ख निरोध: और दु:ख निरोध गामिनी-प्रतिपद्। अर्थात् दु:ख है। दु:खों का कारण है– द्वादश निदान। अविद्या आदि द्वादश कारणों का विद्या के द्वारा निरोध हो सकता है और शील, समाधि और प्रज्ञा निर्वाण के साधन हैं। अत: स्पष्टत: बौद्ध दार्शनिकों के मत में दु:खों से आत्यान्तिक निवृति को ही निर्वाण कहा गया है जो प्रहाण, प्राप्ति, उच्छेद, निषेध ओर उत्पत्ति से रहित माना गया है।

मानव बुद्धि द्वारा प्रदत्त विभिन्न दृष्टियों और कल्पनाओं की स्वतो-व्याघातकता बतलाते हुए बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन कहते हैं कि इनमें लिप्त होना ही सर्वोच्च अविद्या है तथा इन विभिन्न दृष्टियों और कल्पनाओं का समाप्त हो जाना ही निर्वाण है। नागार्जुन निर्वाण के सम्बन्ध में 'सत्' 'असत्', 'सत् और असत् दोनों' तथा 'न सत् और न असत्'– मानव बुद्धि की चार कोटियों की परीक्षा करते है और यह स्थापित करते हैं कि वस्तुत: चारों कोटियों से उपर उठ जाना ही निर्वाण है।[2]

विज्ञानवाद के अनुसार निर्वाण की प्राप्ति पुद्गल नैरात्म्य और धर्म नैरात्म्य के ज्ञान से होती है। पुद्गल नैरात्म्य के ज्ञान से क्लेशावरण की समाप्ति हो जाती है और धर्म नैरात्म्य के ज्ञान से ज्ञेयावरण का भी नाश हो जाता है। क्लेशावरण और ज्ञेयावरण के नाश से योगी यह ज्ञान प्राप्त कर लेता है कि केवल विशुद्ध चैतन्य ही एकमात्र परमतत्व है और अविद्या के कारण ही यह विशुद्ध चैतन्य हमें दृश्य जगत् के रूप में भासित हो रहा था ।

बौद्ध दर्शन में निर्वाण कि अवधारणा दो रूपों में है– अर्हत और बोधिसत्व की अवधारणा। अर्हत कि अवधारणा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना निर्वाण स्वयं प्राप्त करना है। बोधिसत्व केवल

 ISSN 0976-0849

अपने निर्वाण से संतुष्ट नहीं होता, वह प्राणिमात्र के दुःख निरोध से ही संतुष्ट होता है।

जैन दर्शन में मोक्ष

जैन दार्शनिकों की मान्यता है कि जीव स्वभाव से मुक्त है, वह शुद्ध तथा अनंत चतुष्टय (अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य) का स्वामी है। किन्तु वासनाओं एवं अशुभ विचार मात्र के कारण कर्मों का आवरण उस पर पड़ा है। कर्म ही भोगायतन शरीर से जीवन का सम्पर्क कराते हैं। उस सम्बन्ध के कारण ही जीव का बन्धन होता है। कर्मों से छूट जाना ही मोक्ष है। अतः आगे आने वाले कर्मों के मार्ग को बंद करने (संवर) तथा सम्पादित कर्मों को निर्वीर्य बनाकर जीर्ण करने (निर्जरा) से मोक्ष की स्थिति कही गई है।[3] इसी को आर्हत् दशा या अर्हत् पद की प्राप्ति कहा गया है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात अनंत चतुष्टय का साक्षात्कार कर लेती है। वह त्रिरत्न– सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान, और सम्यक चरित्र का मूर्तिमान रूप हो जाती है।

न्याय दर्शन में मोक्ष

नैयायिकों की मान्यता है कि प्रमाण और प्रमेय आदि सोलह पदार्थों के ज्ञान से जीव को मोक्ष की प्राप्ति (दुःख निवृत्ति) होती है। बंधन का मुख्य कारण अविद्या है। दुःखों का प्रधान कारण जन्म है। सकाम कामों में प्रवृत्ति होने से जन्म होता है। प्रवृत्ति दोषवशात् होती है। दोषों का कारण है मिथ्याज्ञान। प्रमाणादि षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होने से मोक्ष का अधिगम होता है।[4] यह दुःखों के अत्यन्ताभाव की स्थिति है। इसी को निःश्रेयस या अपवर्ग कहा गया है। न्याय दर्शन ज्ञान मार्ग द्वारा मोक्ष का विधान करता है। चूंकि इसकी दृष्टि में मिथ्या ज्ञान बंधन का कारण है। अतः यह तत्त्व ज्ञान को ही मोक्ष का साधन मानता है।

वैशेषिक दर्शन में मोक्ष

न्याय की भाँति वैशेषिक दर्शन भी निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए निष्काम कर्म पर बल देता है। निष्काम कर्म से सत्त्वशुद्धि तथा सत्त्वशुद्धि से तत्त्वज्ञान का उदय होता है। मिथ्याज्ञान की निवृत्ति तत्त्वज्ञान से होती है जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। कर्मचक्र की समाप्ति पर जन्म-मरण की परम्परा बन्द हो जाने से सब दुःखों का नाश हो जाता है, यही मुक्ति है।[5] मोक्ष में आत्मा शरीर, इंद्रिय, और मन से सर्वथा वियुक्त हो जाता है। मोक्ष में दुःख की आत्यान्तिक निवृत्ति के साथ ही ज्ञान और सुख की भी निवृत्ति हो जाती है।

सांख्य दर्शन में मोक्ष

सांख्य दार्शनिकों की मान्यता है कि पुरुष और प्रकृति का संयोग ही बन्धन का कारण है।

विवेक ज्ञान द्वारा इस संयोग की समाप्ति ही मोक्ष है। अर्थात जब पुरुष यह भेद ज्ञान प्राप्त कर लेता है कि वह नित्य चैतन्य पुरुष है, न प्रकृति और न उसका अन्य कोई विकार, तो वह मोक्ष या कैवल्य प्राप्त कर लेता है। बन्धन और मोक्ष प्रकृति के होते हैं, पुरुष के नहीं। क्योंकि पुरुष न तो बन्धन का अनुभव करता है, न मोक्ष का। प्रतिबिम्बरूप मिथ्या दु:ख का वियोगमात्र ही पुरुष का अपवर्ग है।[6] पुरुष कैवल्य की स्थिति में प्रकृति एवं उसके विकारों से अलग होकर आत्यांतिक दु:खनिवृत्ति की अवस्था में आ जाता है। इसमें सुख या आनंद का तत्त्व नहीं होता। यह ज्ञान शून्य अवस्था है। सांख्य दर्शन जीवन-मुक्ति तथा विदेह मुक्ति दोनों को स्वीकार करता है

मीमांसा दर्शन में मोक्ष

मीमांसा दर्शन में मोक्ष की कल्पना दु:ख के आत्यान्तिक अभाव के रूप में की गई है। मोक्ष वह अवस्था है जिसमें आत्मा सुख और दु:ख से परे अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। मीमांसकों ने जगत् के साथ आत्मा के सम्बन्ध के (प्रपञ्च) विनाश को मोक्ष कहा है। प्रपञ्च तीन प्रकार का बताया गया है– भोगायतन शरीर, भोगसाधन इन्द्रियां और भोग्य विषय। सुख-दु:ख रूप अपरोक्षानुभूति भोग है, जिसका कर्ता पुरुष है। इस त्रिविध प्रपञ्च का सदा के लिए नष्ट हो जाना ही मोक्ष है।[7] इस प्रकार मीमांसा के अनुसार मोक्ष एक अभावात्मक अवस्था है। परंतु परवर्ती मीमांसकों ने मोक्ष को एक भावात्मक अवस्था स्वीकार किया है।

अद्वैत वेदान्त दर्शन में मोक्ष

अद्वैत वेदान्त की मान्यता है कि अविद्या निवृत्ति मात्र मोक्ष है (अविद्यानिवृत्तिरेव मोक्ष:)। जीव ब्रह्मस्वरूप ही है, इसीलिए नित्यमुक्त है। अत: मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। जीव को माया के प्रभाव से यह भ्रम हो गया है कि वह बद्ध है। गुरु या अन्य उपदेष्टा द्वारा जब साधक को तत्त्वज्ञान हो जाता है कि 'तत्त्वमसि' अर्थात् तू ही वह ब्रह्म है, तो वह अनुभव करने लगता है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं। उसी ब्रह्मभाव को जानकर वह ब्रह्मरूप हो जाता है, यही मुक्ति है। मोक्ष जीव द्वारा अपनी ही आत्मा का साक्षात्कार है। मोक्ष की स्थिति में जीव अपने यथार्थ स्वरूप को धरण करता है। मोक्ष नित्य-प्राप्त की ही प्राप्ति है (नित्यप्राप्तस्य प्राप्ति: मोक्ष:)। इसमें मुक्ति कोई प्राप्ति की वस्तु नहीं अपितु तत्त्वज्ञान से होने वाली अनुभूति है, जिसे पाकर वह आनन्दस्वरूप हो जाता है। अज्ञानावरण के हटने से ब्रह्म की अनुभूति पाकर वह कृतकृत्य हो जाता है। अत: बंधन और मोक्ष भी केवल व्यावहारिक दृष्टिकोण से ही सत्य है। पारमार्थिक सत्य तो यह है कि जीव न कभी बंधन में पड़ता है और न कभी मोक्ष को प्राप्त करता है। इसके लिए श्रवण, मनन व निदिध्यासन साधन रूप में कहें गये हैं।[8] मुक्ति के दो भेद हैं– जीवन्मुक्त व विदेहमुक्त। जीव प्रारब्ध कर्मों का फल भोगते हुए भी ज्ञान की स्थिति में रहकर ब्रह्मभाव का अनुभव करता है, यह अवस्था

 ISSN 0976-0849

जीवन्मुक्ति है। जब स्थूल व सूक्ष्म दोनों शरीरों का नाश हो जाता है तो वह अवस्था विदेहमुक्ति कहलाती है।

विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन में मोक्ष

विशिष्टाद्वैत वेदान्त के अनुसार आत्मा (जीव) का प्राकृतिक शरीर से युक्त होना उसका बंधन है। इस बंधन से छुटकारा पाने का नाम मोक्ष है। मोक्ष कर्म एवं तज्जन्य कर्म-फलों के आत्यांतिक उच्छेद की अवस्था है। मोक्ष अप्राप्त की प्राप्ति है। मोक्ष जीव द्वारा अपने पारमार्थिक स्वरूप का ज्ञान मात्र नहीं है, अपितु ब्रह्म की प्राप्ति भी है जो ब्रह्मज्ञान से होती है। रामानुज की मान्यता है कि मोक्ष प्राप्त होने पर मुक्तात्मा ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त करता है, यद्यपि वह उसकी तद्रूपता को नहीं प्राप्त करता।[9] विशिष्टाद्वैत वेदान्त में मुक्ति का एक ही रूप विदेह मुक्ति माना जाता है। क्रम मुक्ति की भी मान्यता है। जीव ईश्वरोपासना से क्रमशः मुक्त होता है। मोक्ष की अवस्था में जीव परम आनंद का उपभोग करता है। इस प्रकार मोक्ष एक भावात्मक अवस्था है। इस मत में भक्ति एवं प्रपत्ति (ईश्वर के प्रति समर्पण एवं शरणागति) को मोक्ष का साधन मानते है। भगवान् की शरण में दीन होकर जाना जीव के दुःखों को नष्ट कर देता है। मुक्ति के उदय होने में मुख्य कारण भक्ति को ही मानते हैं। प्रपत्ति या शरणागति से ही भगवान् का साक्षात्कार होता है। यह दासत्व प्राप्त होना ही मोक्ष है। जीव वैकुण्ठ में भगवान् के श्रीचरणों में निवास करता है। वह ब्रह्म के साथ एकाकार नहीं होता। उसमें सर्वज्ञत्व, सत्य-संकल्पत्व आदि गुण आ जाते हैं किन्तु जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय करने में सामर्थ्य नहीं होता। आचार्य रामानुज की दृष्टि में मुक्ति जीवित रहते सम्भव नहीं है। विदेह मुक्ति ही सम्भव है जिसका उपाय है-ध्रुवानुस्मृति।

द्वैत वेदान्त दर्शन में मोक्ष

माध्वाचार्य की मान्यता है कि बंधन से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। मोक्ष में जीव अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। मोक्ष ईश्वर का साक्षात दर्शन है जो ईश्वर की कृपा से मिलता है। ईश्वर की कृपा के बिना मोक्ष संभव नहीं है।[10] ईश्वर की कृपा उसकी भक्ति से उत्पन्न होती है। भक्ति ईश्वर के प्रति असीम प्रेम है जिसे पराभक्ति कहते है। आचार्य मध्व का मत है कि ब्रह्म की प्रसन्नता से वैकुण्ठ की प्राप्ति ही मोक्ष है। विष्णु ही मुक्त पुरुषों के आश्रय हैं। मोक्ष के चार प्रकार हैं– सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य व सायुज्य।

तांत्रिक शैव दर्शन में मोक्ष

अपूर्ण ज्ञान अथवा आत्मा के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञता बन्धन है तथा पूर्ण ज्ञान अथवा आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानना ही शैव दर्शन के अनुसार मोक्ष है। मोक्ष पूर्णता की स्थिति

है। मोक्ष में आत्मा पूर्ण आनन्द स्वरूप स्वयं शिव हो जाता है। इस स्थिति में भेद ज्ञान अथवा द्वैत ज्ञान अद्वैत ज्ञान अथवा अभेद ज्ञान में परिणत हो जाता है। आत्मा यह जानने लगती है कि सारा विश्व उसकी ही अभिव्यक्ति है। मुक्तावस्था शिवावस्था है। शिवावस्था में आत्मा स्वयं शिव हो जाती है। शैव दार्शनिक मोक्ष की स्थिति में आत्मा और शिव का तात्त्विक ऐक्य मानते है। उनके अनुसार शिव ही अपनी लीलावश आत्मा रूप ग्रहण करता है तथा मोक्ष की अवस्था में पुन: शिव रूप ग्रहण कर लेता है। उनके अनुसार शिव स्वेच्छा से पशुभाव ग्रहण करता है, किन्तु मलों के प्रभाव के कारण वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। जब पुन: इसे अपने वास्तविक स्वरूप (शिव रूप) की प्रत्यभिज्ञा (ज्ञान या पहचान) होती है तो वह मुक्त हो जाता है।[11] शैव दर्शन में भी जीवन्मुक्ति की अवधारणा को माना गया है।

पातञ्जल योग दर्शन में मोक्ष

पातञ्जल योग में चित्त और पुरुष दोनों ही अलग तत्त्व हैं किन्तु अविद्या के कारण दोनों में अनादिकाल से सम्बन्ध बना हुआ है जिसके कारण पुरुष बार-बार शरीर धारण कर बन्धन में पड़ा हुआ है। यही बार-बार जन्म-मरण रूप आवागमन दु:ख है। वासनाओं के कारण ही जन्मादि होते हैं। इन वासनाओं का आश्रय चित्त और कारण अविद्या है। इस त्रिगुणात्मक चित्त में जब तक वासनाएं रहेंगी, तब तक जन्मादि होते रहेंगे। अविद्या का नाश होने पर आत्मा और चित्त का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। विवेक ज्ञान से आत्मा और चित्त की समान रूप से शुद्धि हो जाती है। जिससे चित्त अपने मूलकारण प्रकृति में लीन हो जाता है तथा आत्मा निज स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। यही कैवल्य है।

वास्तव में पुरुष नित्यमुक्त है। अविवेक (अविद्या) के कारण ही बन्धन की प्रतीति होती है। संसरण, बन्धन व मोक्ष पुरुष का नहीं, अपितु प्रकृति का होता है। पुरुष में तो उसका आरोप होता है। बुद्धि के साथ तादात्म्य होने से वह प्रकृति के बन्धन और मोक्ष को अपना बन्धन और मोक्ष समझने लगता है। चित्त की शुद्धि होने पर चंचलता नष्ट होने से तमस् का आवरण सूक्ष्म हो जाता है और पुरुष उसमें स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होने लगता है जिससे भेद ज्ञान उत्पन्न होता है। दोनों को अलग-अलग जान लेने पर वह चित्त के परिणामों से सर्वथा अलग हो जाता है, यही कैवल्य है।[12] धर्ममेघ समाधि द्वारा सभी क्लेश, कर्म व कर्माशयों का नाश होने पर सर्ववृत्तिनिरोध की स्थिति होने पर वह जीवन्मुक्तावस्था प्राप्त कर लेता है। प्रकृति के गुणों का प्रयोजन (भोग और मोक्ष) समाप्त होने पर जब शरीर का अन्त हो जाता है तो वह अवस्था विदेह मुक्तावस्था कहलाती है। यह अवस्था पुरुष को पूर्णतया कर्म, वासना व संस्कार के चक्र से अलग कर स्वरूप प्रतिष्ठा प्रदान कर देती है।

 ISSN 0976-0849

नाथ दर्शन में मोक्ष

नाथ सिद्ध साहित्य में स्वरूपावस्थान को परमपद, मोक्ष, सिद्धि, निर्वाण, कैवल्य आदि पदों की संज्ञा दी गयी है। शुद्ध निरञ्जन सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा ही 'जीव' कहा जाता है और काम क्रोध, भय, चिन्ता आदि जीव के दोष बताये गये हैं। जब जीव देहादि को जो अनात्मरूप है, आत्मरूप मान लेता है, यही अभिमान है और यह अभिमान ही आत्मा का बन्धन है। अतः अभिमान से निवृत्त हो जाना ही मोक्ष हैं। इससे स्वरूपस्थिति सिद्ध हो जाती है।[13] नाथ मत में जब सहज समाधि में मन से मन को देखा जाता है तब जो अवस्था होती है, वही मोक्ष है।

गोरक्षनाथ का कहना है कि जो शरीरस्थ छः चक्र, षोडश आधार, तीन लक्ष्य और पांच व्योम को नहीं जानता, वह योगसिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। जो एक खम्भे वाले, नौ दरवाजों वाले और पाँच मालिकों के द्वारा अधिकृत इस शरीर रूपी घर को नहीं जानता, उससे योग सिद्धि की आशा कैसे की जा सकती है?[14] अतः शरीर से अपरिचित मनुष्य मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। मुमुक्षु साधक को इनका ज्ञान होना आवश्यक है जिसकी निरन्तर साधना से मुक्ति पद प्राप्त हो सकता है।

नाथ-स्वरूप में अवस्थान ही मुक्ति है। नाथ या सिद्धामृत मार्ग ही कैवल्य पद को देने वाला है, न कि शास्त्र, पुराण, वेद आदि। नाथ मार्ग से ही प्राणी पाशमुक्त हो जाता है। आत्मा का स्वरूप ही मोक्ष का स्वरूप है। मुक्ति का स्वरूप तो संवित् का प्रस्थन ही है। आत्मा का स्वरूप संवित् है, उस संवित् से भिन्न तुच्छ या पारमार्थिक कोई भी तत्त्व नहीं है।[15] यदि तुच्छ है तो वह बन्धन ही है और यदि अतुच्छ है तो वह आत्मा ही है। बन्धन भी आत्मा से पृथक् कहाँ है? संवित् का संकोच ही तो बन्धन है और संवित् संकोच से भिन्न नहीं होता।

गोरक्षनाथ के अनुसार कायाकल्प से सिद्धि प्राप्त कर संयमपूर्वक जीवनयापन पर विशेष बल देते हुए आत्मचिन्तन से मोक्ष प्राप्ति सम्भव होती है। यही निर्वाणपद भी है, जहाँ अवस्थित होकर साधक भवजाल से मुक्त हो जाता है। नाथों ने इसी को सिद्धि भी कहा है।[16] नाथ सम्प्रदाय में इसी काया को दिव्य, अमर या चैतन्य करके अमर या स्थिर कर देते हैं, यही इनकी कायासिद्धि है। जब इस देह से साधना सफल हो जाती है तो इस देह के प्रति हेयता स्वतः नष्ट हो जाती है।

जो कुछ हमारे पिण्ड में है, वही सब कुछ इस ब्रह्माण्ड में है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड का मूलाधार ब्रह्म है। जो दोनों में व्याप्त है। अतः जो ब्रह्म, अलख निरञ्जन व निराकार परमपिता परमात्मा इस पिण्ड में है। उनके रहस्य का ज्ञान हो जाना ही स्वरूपावस्थान है और यह ज्ञान बिना योग साधना के सम्भव नहीं है क्योंकि योग साधना के माध्यम से ही इस पिण्ड के मूलाधार में स्थित शक्ति को उर्ध्वगति प्रदान कर ब्रह्मरन्ध्र में विराजित शिव के साथ मेल हो सकता है। वह मिलन की अवस्था ही स्वरूपावस्थान कहलाती है। क्योंकि नाथ के साक्षात्कार से ही स्वरूपावस्थान की स्थिति प्राप्त हो

सकती है। शिव और शक्ति, इन दोनों के मिलन से ही आत्मा अपने निजस्वरूप में स्थित हो जाती है। यही नाथमत का लक्ष्य है। जिसको स्वरूपावस्थान कहा जाता है। शिव संहिता में कहा है कि साधक का मन जब वृत्ति रहित हो जाता है तब वह पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर आत्म स्वरूप में स्थित हो जाता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक नाथ संप्रदाय में लिखते हैं कि मुक्ति वस्तुत: नाथस्वरूप में अवस्थान है। इसीलिये 'गोरक्ष-उपनिषद्' में कहा गया है– अद्वैत के ऊपर सदानन्द देवता है अर्थात् अद्वैतभाव ही चरम नहीं है, सदानन्द वाली अवस्था उसके ऊपर है। वह बाह्यचार के पालन से नहीं मिल सकती। इस मत के अनुसार शक्ति सृष्टि करती है, शिव पालन करते हैं, काल संहार करते हैं और नाथ मुक्ति देते हैं। नाथ ही एकमात्र शुद्ध आत्मा हैं, बाकी सभी बुद्ध जीव है-शिव भी, विष्णु भी और ब्रह्मा भी। न तो ये लोग द्वैत-वादियों के क्रिया ब्रह्म में विश्वास रखते हैं न अद्वैतवादियों के निष्क्रिय ब्रह्म में। द्वैत-वादियों के स्थान हैं, कैलास और बैकुंठ आदि, अद्वैतवादियों का माया-सबल ब्रह्मस्थान और योगियों का निर्गुण स्थान है पर बंधमुक्ति रहित परमसिद्धान्तवादी अवधूत लोग निर्गुण और सगुण से परे उभयातीत स्थान को ही मानते हैं क्योंकि नाथ, सगुण और निर्गुण दोनों से अतीत परात्पर हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, शिव, वेद, यज्ञ, सूर्य, चंद्र, विधिनिषेध, जल, स्थल, अग्नि, वायु, दिक् और काल– सबसे पर स्वयं ज्योति स्वरूप एकमात्र सच्चिदानंद मूति हैं।[17]

'गोरख-सिद्धांत-संग्रह' में मोक्ष या मुक्ति की परिभाषा इस प्रकार की गई है– 'नाथस्वरूपेण अवस्थिति' अर्थात् नाथ-भाव की पूर्ण-सिद्धि, जिसका अंतिम तात्पर्य शिवत्व की प्राप्ति है। इसे अवभूत दशा की प्राप्ति भी कहा गया है। जो योगी आत्मानुभूति की उच्चतम् स्थिति तक पहुँच जाता है, सामान्यत: अवधूत कहलाता है। अवधूत से तात्पर्य उस व्यक्ति से है, जो प्रकृति के सभी विकारों का अतिक्रमण कर जाता है, जो प्रकृति की शक्तियों और नियमों से परे है, जिसका व्यक्तित्त्व मलिनताओं, सीमाओं, परिवर्तनों तथा इस भौतिक जगत् के दु:खों और बन्धनों के स्पर्श से परे हो जाता है। वह जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय और राष्ट्र के भेदों से ऊपर उठ जाता है। वह किसी भी प्रकार के भय, चाह या बन्धन के बिना पूर्ण आनन्द और स्वच्छन्दता की स्थिति में विचरण करता है।[18] नाथों की आस्था है कि अलख निरञ्जन शिव के साक्षात्कार से ही मुक्ति हो सकती है और यह मुक्तिमार्ग अवधूत गुरु ही दिखा सकते हैं।

नाथयोग और पातञ्जलयोग में मोक्ष के स्वरूप में भेद

नाथयोग और पातञ्जलयोग में मुक्ति का स्वरूप भिन्न-भिन्न वर्णित किया गया है। पातञ्जलयोग और नाथयोग के परमतत्त्व के स्वरूप के साथ ही मुक्ति का स्वरूप भी बंधा हुआ है। जहां पातञ्जलयोग में मुक्ति में कार्य-व्यापार नहीं है, वहाँ नाथयोग में मुक्तावस्था में लोककल्याणार्थ

 ISSN 0976-0849

कार्यरत भी रह सकते हैं। साथ ही दिव्य और अक्षय स्वरूपानन्द की अनुभूति भी करते हैं। आनन्द कभी तरंगहीन नहीं हो सकता। नाथ के स्वरूप में अवस्थिति को नाथयोगी मुक्ति कहते हैं। उनका स्वरूपावस्थान पातञ्जल योग की भाँति निष्क्रियता की स्थिति नहीं है। वे पिण्ड में ब्रह्माण्ड की स्थिति मानकर मूलाधार स्थित कुण्डलिनी शक्ति का ब्रह्मरन्ध्रस्थित सहस्रार चक्र में शिव से मेल कराकर आनन्द की अनुभूति को ही मोक्ष कहते हैं। पातञ्जलयोग में मोक्ष की अवस्था वियोग की स्थिति है क्योंकि यहां प्रकृति और पुरुष का पार्थक्य ही योग का लक्ष्य है। किन्तु नाथयोग में स्वरूपावस्थान वियोग का नहीं अपितु शिव-शक्ति के मिलन का नाम है। यह स्वरूपावस्था नाथगुरु की कृपा से ही सम्भव है। पातञ्जलयोग में शरीर के साथ-साथ गुणों व उसके परिणामों को मूलकारण (प्रकृति) में लीन होने के पश्चात् ही मोक्ष की स्थिति सम्भव है। यह दोनों में मूलतः भेद है।

निष्कर्ष

किसी भी दार्शनिक संप्रदाय के अनुसार मोक्ष का स्वरूप उसे प्राप्त करने के साधन तथा उस संप्रदाय के अनुसार सम्पूर्ण नैतिक जीवन की अवधारणा उस संप्रदाय की ततत्वमीमांसा पर निर्भर करती है। भारतीय दर्शन के सभी संप्रदायों के अनुसार मोक्ष के दो पहलू है– निषेधात्मक और भावात्मक। निषेधात्मक रूप से वह जीवन मरण के चक्र का समाप्त हो जाना तथा भावात्मक रूप से परम तत्व का ज्ञान तथा जीव के स्वयं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है। सभी संप्रदायों के अनुसार जीव का बंधन अनादि है परंतु सांत है, जबकि मोक्ष सादि होते हुए भी अनंत है।

वस्तुतः समस्त जागतिक प्रपञ्च अविद्या के कारण ही है। विद्या द्वारा जब पुरुष (आत्मा) और प्रकृति का भेदज्ञान हो जाता है तो पुरुष स्वयं को प्रकृति से पृथक् जान लेता है। वह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदि तत्त्वों से पृथक् एक चेतन सत्ता है– यह ज्ञान ही उसे इनसे अलग कर देता है और वह निज स्वरूप (चेतन) को जानकर उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है। तत्त्ववेत्ता चिन्तक इसी को कैवल्य की स्थिति कहते हैं। यह मत सांख्य एवं योग को स्वीकार है। इस मत की छाया प्रायः सभी मतों पर दिखायी देती है।

सांख्ययोग के अनुसार चैतन्य एक शुद्ध, नित्य, कूटस्थ और गति की अत्यन्त उपशम अवस्था है किन्तु नाथयोग का परमतत्त्व संवित्, शुद्ध और शान्त तो है किन्तु प्रशान्त सागर के समान उसमें निष्क्रियता नहीं है। पतञ्जलि का आत्मा निस्तरंग महोदधि की अवस्था वाला है किन्तु संवित् का स्वरूप अगति में गति है। सांख्ययोग के मोक्ष में आनन्द की कोई तरंग नहीं होती। किन्तु नाथयोगियों की मुक्तावस्था परासंवित् आनन्द की तरंगों से तरंगायित अवस्था है। मुक्ति का लक्ष्य दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं है अपितु नित्यानन्द की प्राप्ति भी है। अतः नाथयोग की मुक्तावस्था विशुद्ध

आनन्द की अवस्था है। उस अवस्था में राग नहीं होता अपितु वह तो आत्मा का स्वरूपानन्द है जो केवल आत्मा के द्वारा ही लभ्य है। इसीलिए नाथयोग की मुक्ति योगियों को अधिक प्रिय है। दु:ख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति दो भिन्न अवस्थाएँ हैं। पतञ्जलि का मोक्ष यदि अभावरूप है तो नाथ दर्शन का मोक्ष भावरूप है।

शैव दर्शन में जो जीवन्मुक्ति की अवधारणा है वह अद्वैत वेदान्त आदि कुछ अन्य दर्शनों में जीवन्मुक्ति की अवधारणा से मूलत: भिन्न है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार जीवन्मुक्त पुरुष में क्रिया संभव नहीं, क्योंकि वहाँ आत्मा का वास्तविक स्वरूप निष्क्रिय माना गया है, जीवन्मुक्त का शरीर तो केवल बचे हुए कर्मों को समाप्त करने मात्र के लिए होता है। किन्तु तांत्रिक शैव दर्शन के अनुसार जीवन्मुक्त में पूर्ण क्रिया संभव है क्योंकि आत्मा का स्वरूप ही ज्ञान-क्रिया रूप है। जीवन्मुक्त आवश्यकतानुसार सामाजिक, राजनीतिक तथा अन्य कार्यों में सुखपर्वक भाग लेगा। विशिष्टाद्वैत वेदान्त एवं द्वैत वेदान्त का मोक्ष जहां भक्तिपरक हो गया है, वहीं अद्वैत दर्शन अत्यधिक ज्ञानपरक है। नाथ दर्शन का मोक्ष अद्वैत भाव को अक्षुण्ण रखते हुए शैव तांत्रिक दर्शन के नजदीक है।

संदर्भ

1. माध्वाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1978, पृष्ठ 9
2. माध्यमिका वृत्ति (चन्द्रकीर्ति)
3. तत्त्वार्थ सूत्र 10/5-3
4. न्यायसूत्र 1/1/1
5. माध्वाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1978, पृष्ठ 447
6. सांख्य प्रवचन भाष्य-172
7. मीमांसा दर्शन (शास्त्रदीपिका), पृष्ठ 358
8. बृहदारण्यक उपनिषद, 4/5/6
9. श्री भाष्य, 1/1/1
10. अणु व्याख्यान, पृष्ठ 10
11. देवराज, नन्द किशोर, भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1999, पृष्ठ 680-81
12. योगसूत्र, 2/25
13. गोरक्ष सिद्धांत संग्रह, पृष्ठ 24
14. गोरक्ष शतक, 13-14
15. तन्त्रालोक 1/31
16. सिंह, अनुज प्रताप, गोरक्षनाथ और नाथसिद्ध, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, पृष्ठ 339
17. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ संप्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1950, पृष्ठ 135-36
18. बनर्जी, अक्षय कुमार, नाथ योग, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, 1971, पृष्ठ 9

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 40-47

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

भारतीय संत परम्परा एवं नाथपंथ

डॉ. कुशलनाथ मिश्रा* एवं डॉ. हर्षवर्धन सिंह**

सारांशः नाथ दो शब्दों के योग से बना है ना + थ, 'ना' का अर्थ है अनादि रूप और 'थ' का अर्थ है स्थापित होना, इस प्रकार नाथ मत का अर्थ है वह अनादि धर्म जो भुवन त्रय की स्थिति का कारण है। श्री गोरक्षनाथ को इसी कारण नाथ कहा जाता है। यहां 'ना' शब्द का अर्थ नाथ ब्रह्म है, जो मोक्ष दान में दक्ष है, उनका ज्ञान कराना है और 'थ' का अर्थ है, स्थगित करने वाला, क्योंकि नाथ के आश्रय से नाथ ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञान का नाश होता है। अथर्ववेद और तैत्तरीय ब्राह्मण में नाथ शब्द का प्रयोग रक्षक अथवा शरणदाता के अर्थ में मिलता है। महाभारत में नाथ आचार्य स्वामी अथवा पति के अर्थ में और बोधी चर्या अवतार में बुद्धि के अर्थ में नाथ का उल्लेख मिलता है। गोरखनाथ और इनके द्वारा प्रवर्तित नाथ पंथ का अवदान न केवल भारतीय धर्म साधना, साहित्य साधना में महत्वपूर्ण है, बल्कि विश्व साहित्य में उनकी भूमिका और उनका महत्व अविस्मरणीय है। नाथ संप्रदाय तथा उसकी शाखा प्रशाखा देश-विदेश में दूर-दूर तक फैली हुई हैं। वैसे तो नाथ संप्रदाय के धर्माचार्यों-सिद्धों में गोरखनाथ सबसे प्रभावशाली और प्रख्यात हैं, परंतु वह इस संप्रदाय के संस्थापक नहीं थे। वह पहले से चली आती हुई, इस धारा के संगठनकर्ता और नायक हैं, किंतु नाथ संप्रदाय में ही नहीं, संपूर्ण नाथ सिद्ध साहित्य में गोरखनाथ का महत्व संस्थापक का ही है, क्योंकि उन्होंने इसे संगठित एवं व्यवस्थित रूप देने के साथ ही साथ इसे जन-जन तक पहुंचाया। गोरखनाथ एवं भारतीय संतों के साहित्य में उत्तर भारत की सांस्कृतिक विविधता का चित्र मिलता है। गोरखनाथ, नाथ पंथ और भारतीय संत कवियों ने एक ओर जहां गुरु को महत्व दिया, वहीं उन्होंने मन की शुद्धता एवं सात्विकता को केवल योगी के लिए नहीं, संपूर्ण मनुष्य जाति के लिए आवश्यक माना। रूढ़ियों एवं आडंबरों को निरर्थक कहा तथा विशुद्ध ब्रम्हचर्य जीवन को रेखांकित किया। गोरखनाथ प्रवर्तित नाथ पंथ ने ब्रह्मचर्य, वाक् संयम, शारीरिक शुचिता, मानसिक शुद्धता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, आंतरिक शुद्धि द्वारा भारत के सांस्कृतिक धार्मिक पर्यावरण को स्वच्छ एवं उदात्त बनाया।

बीजशब्दः शाबर तंत्र, उलटवाँसि, कायासिद्धि, हठयोग, गोरख छंदों, चैतन्य पथ।

*उप-निदेशक, **वरिष्ठ शोध अध्येता, महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

महायोगी गोरखनाथ ने नाथ संप्रदाय को सांगठनिक एवं वैचारिक दृष्टि से न केवल व्यवस्थित किया बल्कि एक सुदृढ़ दार्शनिक आधार भी दिया। मान्यता है कि शिवजी के 18 संप्रदाय और गोरखनाथ के 12 संप्रदाय के मध्य, जो विभेद की स्थिति थी, उसे गोरखनाथ जी ने परस्पर एक करते हुए 12 पंथों में नाथ संप्रदाय को व्यवस्थित किया, इसीलिए नाथपंथी योगियों को 12 पंथी भी कहते हैं। नाथ परंपरा में सिद्ध गुरुओं की भी भूमिका महत्वपूर्ण है। इनमें मच्छिंद्रनाथ, जालंधरनाथ, गोरखनाथ तथा कनीफा को सर्वमान्य आचार्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस कड़ी मे नौ नाथों में, जालंधरनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, कनीफा, चौरंगीनाथ, भर्तृहरि, रेवण, चौरंगीनाथ, गोपीचंद कान्हिपा, गहनीनाथ का उल्लेख है। गोरखनाथ साक्षात् शिव रूप हैं, शंकराचार्य की तरह ही वे लोकनायक हैं। भारतवर्ष के सभी प्रांतों एवं समीपवर्ती देशों के सभी वर्गों के व्यक्तियों की विचारधारा को उन्होंने गहरे स्तरों पर प्रभावित किया है। शंकराचार्य ने कहा कि ब्रह्म सत्य है तो गोरखनाथ ने शरीर को ही सत्य मानकर उसे ही साधना का आधार बनाया। नाथ पंथ के इतिहास पर दृष्टि डालें तो गोरखनाथ के बाद नौ नाथों की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसी कड़ी में दत्तात्रेय, देवनाथ, नागार्जुन, पृथ्वीनाथ, भरथरी, धर्मपाल, विरुपाक्ष, संतोषनाथ, गणिनाथ, रतननाथ, ज्ञाननाथ, मल्लिकानाथ, जसनाथ, नामदेव की भूमिका के साथ गोरखनाथ पीठ की पीठाधीश्वर परंपरा का विशेष योगदान है। इस परंपरा में योगीराज बाबा गंभीरनाथ, महंत दिग्विजयनाथ, महंत अवेद्यनाथ के साथ-साथ वर्तमान पीठाधीश्वर महंत श्री योगी आदित्यनाथ की भूमिका का विशेष महत्व है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नाथ पंथ के जोगियों के परम्परागत साहित्य में नागर, ब्रज, सधुक्कड़ी एवं राजस्थानी भाषा का आधिक्य बताया है। नाथ सम्प्रदाय का उल्लेख विभिन्न क्षेत्र के ग्रंथों में जैसे– योग (हठयोग), तंत्र (अवधूत मत या सिद्ध मत), आयुर्वेद (रसायन चिकित्सा), बौद्ध अध्ययन (सहजयान तिब्बती परम्परा 84 सिद्धों में), हिन्दी (आदिकाल के कवियों के रूप) में चर्चा मिलती हैं। यौगिक ग्रंथों में नाथ सिद्ध हठयोग प्रदीपिका के लेखक स्वात्माराम और इस ग्रंथ के प्रथम टीकाकार ब्रह्मानंद ने हठप्रदीपिका ज्योत्सना के प्रथम उपदेश में 5 से 9 श्लोक में 33 सिद्ध नाथ योगियों की चर्चा की है। ये नाथसिद्ध कालजयी होकर ब्रह्माण्ड मे विचरण करते हैं।[1]

इन नाथ योगियों में प्रथम नाथ आदिनाथ को माना गया है, जो स्वयं शिव हैं, जिन्होंने हठयोग की विद्या प्रदान की जो राजयोग की प्राप्ति में सीढ़ी के समान है। आयुर्वेद ग्रंथों में नाथ सिद्धों की चर्चा, नाथों का विवरण, रसायन चिकित्सा के उत्पत्तिकर्ता के रूप में प्राप्त होता है। नाथों ने इस शरीर रूपी साधन को, जो मोक्ष का माध्यम है, रसायन चिकित्सा पारद और अभ्रक आदि रसायनों की उपयोगिता से सिद्ध किया। इन्होंने पारदादि धातु घटित चिकित्सा का विशेष प्रवर्तन किया था तथा विभिन्न रसायन ग्रंथों की रचना की। तंत्र ग्रंथों में नाथ सम्प्रदाय के आदिनाथ शिव है, मूलतः समग्र नाथ सम्प्रदाय शैव है। शाबर तंत्र में कापालिकों के 12 आचार्यों की चर्चा है– आदिनाथ, अनादि,

 ISSN 0976-0849

काल, वीरनाथ, महाकाल आदि जो नाथ मार्ग के प्रधान आचार्य माने जाते है। नाथों ने ही तंत्र ग्रंथों की रचना की है। षोड्श नित्यातंत्र में शिव ने कहा है कि नवनाथों: मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, सत्यनाथ, चर्पटनाथ, जालंधरनाथ नागार्जुन आदि ने ही तंत्रों का प्रचार किया है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल के कवियों में नाथ सिद्धों की चर्चा मिलती है। अपभ्रंश, अवहट्ट भाषाओं की रचनाऐं मिलती हैं, जो हिन्दी की प्रारंभिक काल की हैं।[2] इनकी रचनाओं में पाखंडों, आडंबरों आदि का विरोध है तथा चित्त, मन, आत्मा, योग, धैर्य, मोक्ष आदि का समावेश मिलता है, जो साहित्य के जागृतिकाल की महत्वपूर्ण रचनाऐं मानी जाती हैं। कवियों ने इन रचनाओं को, जनमानस को, योग की शिक्षा, जनकल्याण तथा जागरूकता प्रदान करने के लिए था। संस्कृत साहित्य में जितनी भी विधाएं प्राप्त हैं, उनमें गीतिकाव्य अथवा खण्ड काव्य एक अत्यन्त सरस तथा मंजुल विधा है। संस्कृत में नीतिकाव्यों की भी लम्बी परम्परा रही। विभिन्न ग्रन्थों में नीति सुभाषित पर्याप्त रूप में प्राप्त है। महाभारत के उद्योग पर्व में आठ अध्यायों में विदुर के द्वारा धृतराष्ट्र को दिया गया उपदेश 'विदुरनीति' नाम से सुविख्यात है। बौद्ध और जैन साहित्य में भी अनेक नीतिकाव्य उपलब्ध है। चाणक्य नीति, नीतिद्विषष्टिका, नीतिमन्जरी, नीतिवाक्यामृत, नीतिरत्नाकर, नीतिसार, आदि दिग्दर्शन मात्र है। नाथ सिद्धों की जो रचनाएँ या साहित्य प्राप्त होता है, उनमें से अधिकांश चौदहवीं शताब्दी (ईस्वी) के पूर्ववर्ती हैं। कुछ चौदहवीं शताब्दी के हैं और कुछ उसके बाद के। भाषा की दृष्टि से, इन पदों का महत्त्व स्पष्ट है। यद्यपि इन रचनाओं के रूप बहुत विकृत हो गए हैं, परंतु भाषा का कुछ न कुछ पुराना रूप उनमें रह गया है। खड़ी बोली का तो इन पदों में बहुत अच्छा प्रयोग हुआ है। खड़ी बोली के धारा प्रवाहिक प्रयोग का नया स्रोत इन पदों में पाया जाता है। नाथ सिद्धों की हिन्दी रचनाओं के अनेक संग्रह कई हस्तलिखित प्रतियों में संकलित हुए हैं।[3] नाथ-साधु हठयोग पर विशेष बल देते थे। वे योग मार्गी थे। वे निर्गुण निराकार ईश्वर को मानते थे। तथाकथित नीची जातियों के लोगों में से कई पहुंचे हुए सिद्ध एवं नाथ हुए हैं।

नाथपंथियों ने भारतीय संत परम्परा को गहरे रूप से प्रभावित किया है। गोरखनाथ के परवर्ती संतो व् संप्रदायों का संबंध नाथपंथ से किसी न किसी रूप में अवश्य रहा है। इसी नाथ परंपरा से एक विकास निर्गुण धारा के रूप में हुआ है। इस निर्गुण धारा का अध्ययन नाथ परंपरा और सिद्धांतों के समुचित मनन के बिना नहीं हो सकता, क्योंकि संत काव्य में जो ज्ञान निष्ठा, शारीरिक और मानसिक पवित्रता, ब्रह्मचर्य, बाह्याचारों का खंडन, वाक् संयम आदि दिखाई देता है उसका मूल स्रोत नाथ संप्रदाय का साहित्य और उसकी परंपरा ही हैं। वास्तव में संत साहित्य को नाथ साहित्य के रूप में एक भूमि प्राप्त हो गयी थी। संत साहित्य का निर्माण करनेवाले संतों के छोटे-बड़े लगभग पच्चीस संप्रदाय थे। इनमें से सर्वाधिक प्रतिभा संपन्न और व्यवस्थित कबीर, नानक, दादू संप्रदाय थे। इन संप्रदायों के कुछ संत ऐसे हैं, जिन्होंने दीक्षा नाथमतेश्वर गुरुओं से ली थी, परंतु उनकी रचनाओं पर

गोरखनाथ आदि नाथ संप्रदाय के कवियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनमें से नामदेव, हरिदास निरंजनी, दीन दरवेश, जंभनाथ, जसनाथ आदि तो दीक्षित भी नाथ संप्रदाय में थे। कबीर, नानक, जायसी, दादू, श्रीचंद, रज्जब आदि को नाथ संप्रदाय और साहित्य रचनाओं पर गोरखनाथ का प्रभाव स्पष्ट ही देखा जा सकता है। निर्गुण संत कवियों की वाणियों में जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है, वह सब भी इन्हें नाथ संप्रदाय के कवियों की ही देन है।

कबीर पंथ

कबीर गोरखनाथ से बहुत अधिक प्रभावित थे। कई स्थानों पर कबीर ने गुरु गोरखनाथ के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्हें वास्तविक रहस्य का ज्ञाता स्वीकार किया है। वस्तुत: जिस अवधू की चर्चा कबीरदास ने अपनी रचनाओं में की है, वह नाथ संप्रदाय के योगी का ही स्वरूप है तथा उसके लक्षण गोरखपंथी कनफटे योगियों के अनुरूप ही हैं। कबीर के निर्गुण 'राम' नाथ-योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षणसमतत्त्व ही हैं। उलटवाँसियों में कबीर ने नाथपंथी कवियों का अनुकरण किया है।[4] गोरखनाथ की उलटवासियों में व्यक्त भाव उन्हीं शब्दों में कुछ विपर्य के साथ कबीर वाणी में मिलते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि कबीर पर गोरखनाथ का बहुत प्रभाव था। नाम स्मरण तथा सुरति शब्द योग से संबंधित कबीर की रचनाओं में कुंडलिनी योग अथवा लय योग की चर्चा भी मिलती है। कबीरदास और उनके द्वारा प्रवर्तित कबीर पंथ पर नाथ संप्रदाय की साधना पद्धति का बहुत प्रभाव था। इनके अनेक पदों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, षट्चक्र, नाद, शून्य आदि का उल्लेख मिलता है। कबीर द्वारा आडंबरों का खंडन, स्वयं को हिंदू, मुसलमान, सगुण मार्ग से तटस्थ बताना भी नाथ पंथ के प्रभाव का संकेत करता है।

बिश्नोई संप्रदाय अथवा विश्नोई पंथ

बीस और नौ उनतीस नियमों से युक्त विश्नोई संप्रदाय के संस्थापक संत कवि जंभनाथ थे। एक अनुश्रुति के अनुसार किसी बाबा गोरखनाथ से इन्होंने नाथपंथ की दीक्षा ली थी तथा कतरियार में जाकर अपने गुरुभाई जसनाथ से भी मिले थे। अपने आदर्शों के प्रचारार्थ इन्होंने विश्नोई संप्रदाय की स्थापना की थी। हावली पावजी, लोहापागल, दत्तनाथ तथा भालदेव इनके चार प्रमुख शिष्य थे।[5] इनके अनुयायी राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश के बिजनोर, बरेली एवं मुरादाबाद जिलों में वर्तमान हैं। जंभनाथ की रचनाओं में, ओंकार जप, निरंजन की उपासना, अजपाजप, गगनमंडल, पंचपुरुष, सतगुरुमहिमा, सोहंजप, अमृतपान से जरामरण मुक्ति, योगाभ्यास, काया सिद्धि जैसे विषयों का वर्णन अधिक मिलता है, जो इन पर नाथ संप्रदाय के विशेष प्रभाव का प्रतीक है, क्योंकि नाथ संप्रदाय के साहित्य में भी अजपाजाप, शब्द महिमा गगन मंडल, गुरु महिमा, अमृत पान, सोहं योगाभ्यास, कायासिद्धि पर ही अधिक बल दिया गया है।

 ISSN 0976-0849

उदासी नानक पंथ की विचारधारा

गुरुनानक के पुत्र श्रीचंद महाराज पंजाब में प्रचलित नाथों की योगसाधना से अत्याधिक प्रभावित थे, इसी कारण वे नानक गद्दी पर आसीन न हुए तथा इन्होंने उदासी नानक पंथ का प्रवर्तन किया तथा नाथ संतों की तरह ईश्वर को, इन्होंने अपना गुरु माना तथा ईश्वर से प्रेरित स्वसंवेद्य ज्ञान ही को ग्राह्य माना। उदासी पंथ की साधना एवं उपासना पद्धति पर भी नाथपंथी साधुओं का बहुत प्रभाव दिखाई देता है, क्योंकि मन की एकाग्रता, रहनी समन्वय, साधना आदि उदासी पंथ में नाथ पंथी साधुओं के अनुसार ही हैं। अतः उदासी पंथ पर नाथपंथ का बहुत अधिक प्रभाव था, जिसका मुख्य कारण इस पंथ के प्रवर्तक श्रीचंद का योगधारा से प्रभावित होना ही है।

सूफी संप्रदाय

सूफी संप्रदाय पर भारतीय योग साधना का प्रभाव स्पष्ट पड़ा है। भारत प्रवेश के पश्चात सूफियों पर भारतीय योग साधना का विशेष रूप से नाथ संप्रदाय में प्रचलित हठयोग का, निश्चित प्रभाव पड़ा। इसका प्रमुख प्रमाण यही है कि प्रायः सभी सूफी कवियों के नायक अपने अभिमत को प्राप्ति के लिए योगी बनकर निकल पड़ते हैं। अनेक योगिक क्रियाओं तथा स्थितियों से निकलने के पश्चात् ही उन्हें लक्ष्य की प्राप्ति होती है। नव नाथ की परंपरा में, गोरखनाथ अत्यंत सबल तथा समर्थ व्यक्तित्व के स्वामी थे। इन्हीं के प्रभाव के परिणामस्वरूप, अनेक भारतीय एवं अभारतीय संप्रदाय नाथ मत में अंतर्भुक्त हो गए अथवा प्रभावित हुए। अनेक मुसलमान भी गोरखनाथ के अनुयायी हो गए थे। राव, दरियापंथी, जाफरपोर इन्हीं से प्रभावित मुसलमान संप्रदाय हैं। सूफी काव्य पर नाथ संप्रदाय की साधना पद्धति के प्रभाव का मुख्य कारण नाथों की रहस्यमय वाणी, साधना में यौगिक क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान तथा जनता पर उसका बहुत प्रभाव होना था। सूफियों ने भी ईश्वर प्राप्ति के लिए योग एवं प्राणायाम का महत्त्व स्वीकार किया है। जायसी ने मछिंद्रनाथ, गोपीचंद्र, जालंधरनाथ, भर्तृहरि आदि को भी अत्यंत श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है।

निरंजनी संप्रदाय

निरंजनी संप्रदाय का मूल स्रोत नाथपंथ समझा जाता है। संत हरिदास निरंजनी इस संप्रदाय के महत्त्वपूर्ण संत है। इनकी रचनाओं में गोरखनाथ के प्रति बहुत निष्ठा है। इन्होने भरथरी व गोपीचंद के त्याग की प्रशंसा करते हुए अन्य नाथ योगियों के नाम भी कई बार स्मरण किए हैं। गोरखनाथ को तो इन्होंने मुनि की संज्ञा दी है और कहा है कि उनकी गति मति को सुर-नर-मुनि भी नहीं जान सकते।

दादू पंथ

दादूजी की रचनाओं के अध्ययन से इन पर नाथपंथ की यौगिक क्रियाओं हठयोग आदि का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने परम ब्रह्म को शून्य, सर्वव्यापी, अलख, अगोचर, निर्गुणसगुणातीत, सर्वत्र उसी का प्रसार, अवर्णनातीत माना है। दादू संप्रदाय की साधनापद्धति भी अन्य समकालिक संत कवियों के समान नाथ संप्रदाय से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होती है, किंतु दादूजी की रचनाओं में योग की किसी पद्धति विशेष का निरूपण नहीं हुआ वरन् उनकी वाणियों में केवल यत्र तत्र उल्लेख हुआ है। दादूजी ने षट्चक्र, कुंडलिनी, उत्थापन, खेचरीमुद्रा, उन्मनी अवस्था, बिंदु, शब्द, अनहदनाद आदि का भी सामान्य रूप से वर्णन किया है। नाथयोगियों के अजपाजाप शब्द का प्रयोग दादू ने सहज जप के रूप में किया है। दादूजी के अनुसार सहज जप एक प्रकार का अंतर्जप है, जो बिना उच्चारण के पवन निरोध के साथ ही ध्वनि रूप में मन में उठता है।[6] इस जप को इन्होंने मन की माला द्वारा संपन्न होता हुआ बताया है। इसी सहज धुन द्वारा ही दादू, पाप और पुण्य का निराकरण मानते हैं। इन्होंने सुरति का वर्णन भी अनेक स्थलों पर किया है, जिसके अनुसार सुरति प्रियतम को प्राप्त करा सकती है। सहज साधना में शून्य मार्ग से आना जाना तथा सुरति रूपी चैतन्य पथ पर चलना पड़ता है, जो स्वयं को लय में लगाए रहती है और लय लगते ही मन थक जाता है, वाणी मूक हो जाती है तथा उसका अनुभव सदा अपार तथा इंद्रियातीत होता है।

जसनाथी पंथ

संत जसनाथ इस पंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि इन्हें बारह वर्ष की अवस्था में ऊँटनियों को चराते हुए गोरखनाथ का साक्षात्कार हुआ था, उनसे दीक्षा प्राप्त कर इन्होंने साधना प्रारंभ की। इस पंथ के अन्य संत हाँसीजी, रुस्तमजी, आदि हैं। राजस्थान, कच्छ-भुज, हरियाणा, पंजाब तथा मालवा में इस पंथ का अधिक प्रचार है। इनके अनुष्ठान का मुख्य अंग रात्रि जागरण और अग्नि में गेरुवी पगड़ी बाँधकर ओंकार की ध्वनि करते हुए कूद-कूद कर नाचना है। ये भगवा रंग की पगड़ी तथा काली ऊन की तीन गाँठवाली लड़ी धारण करते हैं। धार्मिक तथा मांगलिक अवसरों पर गोरख छंदों का पाठ करते हैं। मुक्ति का साधन नाम जप को बताया गया है। उस परम् ब्रह्म को जसनाथी भी अलख, अगोचर कहकर ही पुकारते हैं, जो इन पर नाथयोगियों के प्रभाव को स्पष्ट करता है। जसनाथ ने अपनी सबदी में संसार की असारता, यमराज का भय, नाम महिमा जीव के एकांकीपन एवं असहायावस्था का चित्रण भी किया है, जिससे इन पर नाथपंथ का प्रभाव स्पष्ट ही दिखाई देता है।

मीराबाई पर नाथ पंथ का प्रभाव

मीरा ने अपने अधिकांश राजस्थानी पदों में जिस आराध्य के रूप का वर्णन किया है, वह

 ISSN 0976-0849

वृंदावन वासिनी गोपियों के कृष्ण अथवा द्वारकावासी न होकर, नाथ परम्परानुसार किसी जोगी विशेष का रूप ही है। कृष्ण का रूप सदा ही मोर मुकुट पीतांबर धारी तथा गल बैजंती माल रूप जोगी की वेश भूषा का ही है। कृष्ण की मुरली का स्थान नाद ने और मोर मुकुट पीतांबर गल बैजंती माल का स्थान सैली, बटवो और भभूति ने ले लिया है। मीरा पर नाथ संप्रदाय के प्रभाव के द्योतक पदों की अभिव्यंजना, विशेष रूप से मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत है। इनमें खीज, मनावन, उपालंभ तथा वेदना के साथ साथ अनन्य समर्पण की भावना भी है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि मीरा स्वयं भी अपने आराध्य के अनुकूल भगवान् भेष धारण कर जोगन बनने को आकुल-व्याकुल है, जो अविनासी है और अटल रहेगा। मीरा ने जिस परमपद को अपने जीव का लक्ष्य बनाया, वह गोरखनाथ के अगम, अगोचर, गगन शिखर, ब्रह्मरंध्र में रहनेवाले बालक से भिन्न नहीं है। मीरा लोकलाज, कुल की मर्यादा, वैभव, ऐश्वर्य आदि सभी को त्याग कर सरल जीवनयापन करती है। शरीर और मन से योगिन बनती है। सतगुरु से ज्ञान की गुटकी प्राप्त करती है। अपने मन से विषय वासनाओं को हटाकर उसी के ध्यान में लगाती है।

गुजरात के संत काव्य पर नाथ संप्रदाय का प्रभाव

नाथ संप्रदाय का सीधा प्रभाव कच्छ तथा गिरनार की ओर विशेष रूप से लक्षित होता है। ऐसी मान्यता है कि मत्स्येंद्रनाथ के प्रसिद्ध शिष्यों में से एक गोरखनाथ अथवा चौरंगीनाथ, आठवीं शताब्दी में उत्तर प्रदेश से सौराष्ट्र होते हुए कच्छ आए थे और उन्होंने माँडवी बंदरगाह के निकट रियाणपटण में धूनी रमाई थी। गुजरात के अन्य नाथ योगियों में शरणनाथ, गरीबनाथ और कंथड़नाथ का नाम लिया जाता है। गुजरात में इन्हें पीर भी कहा जाता है।[7]

प्रणामी संप्रदाय के प्रवर्तक संत प्राणनाथ

प्रणामी संप्रदाय के प्रवर्तक संत प्राणनाथ भी नाथ संप्रदाय से पूर्णरूप से प्रभावित होते हैं। इन्होंने नाथयोग के पारिभाषिक शब्दों सोहं, षट्चक्र, त्रिकुटी, त्रिवेणी, अनहद, अजपा, आसन, उन्मनी का प्रयोग करके यह प्रकट किया है कि नाथयोग की अनेक साधना पद्धतियों से उनका गहन परिचय था। इन्हीं के समकालीन कवि मुकुंद गुगली ने अपने भक्तमाल में गोरक्षचरित लिखकर गोरखनाथ के प्रति अपनी अपार श्रद्धा व्यक्त की है। एक अन्य कवि आनंदघन हुए हैं, जिनकी साधना प्रेमपरक है, परंतु इनके पदों में भी इडा, पिंगला, सुषुम्ना, ब्रह्मरंध्र, अनहदनाद, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, अजपाजाप आदि का जो सुंदर निरूपण हुआ है, उससे इन पर नाथ संप्रदाय का प्रभाव स्पष्ट ही लक्षित होता है।

संदर्भ सूची

1. चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, भारती भंडार प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972 ई., पृ. 72
2. राकेश, विष्णुदत्त, उत्तर भारत के निर्गुण पंथ साहित्य का इतिहास, साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद, 1975 ई., पृ. 39
3. पाण्डेय, दिवाकर, गोरक्षनाथ एवम् उनकी परंपरा का साहित्य, गोरखनाथ शोध संस्थान, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, 1981 ई., पृ. 47-51
4. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976 ई., पृ. 36
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद, 1970 ई., पृ. 12
6. त्रिपाठी, राममूर्ति, तंत्र और संत, साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद, 1975 ई., पृ. 82
7. श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति, अनु. रामलाल श्रीवास्तव, श्री गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, वि.सं. 2038, पृ. 50

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 48-54

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

नाथपन्थ में शिव तत्त्व

डॉ. नरसिंह चरण पण्डा*

सारांशः नाथ पन्थ अति प्राचीन है। ऋग्वेद के दशम् मंडल के 103वें सूक्त में नाथ शब्द– सृष्टिकर्ता, ज्ञाता तथा सृष्टि के विभिन्न रूपों में है। अथर्ववेद में भी नाथित एवं नाथ शब्द हमें मिलता है। मुनिदत्त ने नाथ शब्द को सदगुरु कहा है। नाथ शब्द सर्वप्रथम प्रभु एवं स्वामी जैसे अर्थों का द्योतक था पर कालान्तर में यह ऐसे महापुरुषों (सिद्धों) का बोधक मान लिया जो समाज में अति मानवत्त्व एवं देवत्व का प्रतीक मान लिए गए थे। इन सिद्ध महापुरुषों ने तत्कालीन मानव समाज में बिखरी हुयी कुप्रथाओं, कुसंस्कारों एवं विकृत मान्यताओं को नष्ट करने का बीड़ा उठाया जिनमें उन्हें सफलता भी मिली।

भारत में सन्तों की एक दीर्घ परम्परा है जिनमें नाथ पन्थ सबसे प्राचीन है। भगवान शिव स्वयं आदिनाथ हैं जिनके दो शिष्य– जालन्धरनाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ माने जाते हैं। इन दोनों गुरुओं के एक-एक शिष्य क्रमशः कृष्णपाद एवं गोरखनाथ हुए। ये चार नाथ पन्थ के आदि प्रवर्तक महायोगी माने जाते हैं। भारतीय धर्म संस्कृति की साधना पद्धतियों में नाथ पंथ और महायोगी गुरु गोरखनाथ तथा अन्य सिद्धों का प्रमुख स्थान है। महायोगी गोरखनाथ ने योग साधना के सैद्धान्तिक पक्ष को व्यावहारिक रूप प्रदान कर जन सामान्य तक पहुँचाया। समग्र भारत ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशों को अपनी योग विभूति से तथा चरित्र चिन्तन एवं व्यवहार से बड़ी गहराई तक प्रभावित करने वाले अग्रणी महायोगी गोरखनाथ जी ही थे जिन्हें साक्षात् शिव स्वरूप ही स्वीकार कर लिया गया है।

बीजशब्दः आत्मा, ईश्वर, साधना, धर्माधर्म, प्रवृत्ति-निवृत्ति, विद्या-अविद्या, शुचिता-अशुचिता, वेदवचन, ज्ञानाज्ञान, संस्कार, संशय।

भारत सन्तों की पुण्य भूमि है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारत में अनेक साधुसंत, महापुरुष समय-समय पर अवतरित होकर साधारण मनुष्यों का पथ प्रदर्शन करने में सहायक हुए हैं।

*प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डीन, स्कूल ऑफ लैंग्वेजेस, उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सोनाबेड़ा, कोरापुट, उड़ीसा-763004; पूर्व संस्कृत विजिटिंग प्रोफेसर, संस्कृत शिक्षण संस्थान एवं संपादक, इन्डोलोजिकल रिसर्च जर्नल, शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकॉक, थाईलैण्ड, ई-मेलः ncpanda@gmail.com

पुण्य भूमि इस भारतवर्ष में महात्मा बुद्ध, पार्श्वनाथ, जैन, महावीर, शंकराचार्य, तुलसीदास, गुरुनानक, संत कबीर, गुरु गोरखनाथ, संत मत्स्येन्द्रनाथ आदि अनेक सिद्ध महात्माओं ने जन्म लिया। अत: भारत के धार्मिक इतिहास में लगभग ई. सन् 200 से 1200 तक के हजार वर्ष तक दीर्घ समय को पौराणिक-आगमिक-तान्त्रिक युग कहा जा सकता है। कारण यह है कि इस लंबी अवधि में प्राय: सभी महाकाव्यों, मुख्य पुराणों, उपपुराणों, आगमों और तन्त्रों की रचना पूरी हो चुकी थी। जहाँ एक ओर विभिन्न वैदिक, अवैदिक मतों के बीच संघर्ष चल रहा था, वहीं दूसरी ओर उनमें समन्वय लाने का प्रयत्न भी किया जा रहा था। महापुराणों के प्रणयन के द्वारा वैदिक धर्म एवं वर्णाश्रम की व्यवस्था का पुनर्गठन सिद्ध किया जा रहा था। साथ ही साथ प्राचीन काल से चली आ रही तंत्र परंपरा से प्रभावित शैव, शाक्त और वैष्णव मतों का संघठन कार्य सम्पन्न होना आरम्भ हो गया था।

इसी धार्मिक युग में अलग-अलग योग मार्गी शैव सिद्धों ने अपना एक अलग साधनपरक संप्रदाय का संगठन किया। वही नाथ संप्रदाय नाम से भारत भर में विख्यात् हुआ। इस संप्रदाय विशेष में प्राप्त साहित्य में बहुधा इसे आदिनाथ द्वारा अवतरित बताया गया है। उसके अनुसार आदिनाथ ही शिव है। उक्त साहित्य के निर्माताओं ने शिव को ही योग मार्ग का प्रथम नाथ माना है। उससे प्रवृत्त होने से यह नाथ संप्रदाय नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आदिनाथ शिव ही है अथवा कोई महान् मानव गुरु यह एक जटिल समस्या बनी हुई है। वर्तमान स्थिति में, इस समस्या का समाधान करना कठिन लगता है। अत: नाथ साहित्य का अनुकरण करते हुए शिव को आदिनाथ मानकर चलना ही उचित प्रतीत होता है और यह सत्य मार्ग ही है। आदि का अर्थ है प्रारम्भ। भगवान शंकर को भोलेनाथ और आदिनाथ भी कहा जाता है। आदिनाथ होने के कारण उनका एक नाम आदिश भी है। इस आदिश शब्द से ही आदेश शब्द बना है। 'नाथ' साधु जब एक दूसरे से मिलते हैं तो कहते हैं– 'आदेश'।

भगवान शंकर की परंपरा को उनके शिष्यों वृहस्पति, विशालाक्ष (शिव), शुक्र, सहस्राक्ष, महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भरद्वाज, अगत्स्य मुनि, नंदी, कार्तिकेय, भैरवनाथ आदि ने आगे बढ़ाया। भगवान शंकर के बाद इस परंपरा में सबसे बड़ा नाम भगवान दत्तात्रेय का आता है। उन्होंने वैष्णव और शैव परंपरा में समन्वय स्थापित करने का कार्य किया। दत्तात्रेय को महाराष्ट्र की नाथ परंपरा का विकास करने का श्रेय जाता है। दत्तात्रेय को आदिगुरु भी माना जाता है।

भगवान दत्तात्रेय के बाद सिद्ध संत गुरु, मत्स्येन्द्रनाथ ने नाथ परंपरा को फिर से संगठित करके पुन: उसकी धारा अवाध गति से प्रवाहित करने का कार्य किया। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ चौरासी नाथों की परंपरा में सबसे प्रमुख हैं। उन्हें बंगाल, नेपाल, असम, तिब्बत और बर्मा में खासकर पूजा जाता है।

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के बाद उनके शिष्य गुरु गोरखनाथ ने शैव धर्म की सभी प्रचलित धारणाओं

 ISSN 0976-0849

को एकजुट करके नाथ परंपरा को एक नई ऊंचाई पर पहुंचाया। उनके लाखों शिष्यों में हजारों उनके जैसे ही सिद्ध होते थे। वे नाथ संप्रदाय के देवता एवं शैव और वैष्णव पंथ के गुरु माने जाते हैं। भगवान दत्तात्रेय भगवान ब्रह्मा जी के मानस पुत्र महर्षि अत्रि इनके पिता तथा सती अनुसूया उनकी माता थी। पुराणों के अनुसार इनके तीन मुख और छः हाथों वाला त्रिदेवमय स्वरूप है। चित्र में इनके पीछे एक गाय तथा इनके आगे चार कुते दिखाई देते हैं। औदुंबर वृक्ष के समीप इनका निवास बताया गया है।

दत्तात्रेयः शिव और विष्णु के अवतार-

शैव पंथ को मानने वाले लोग भगवान दत्तात्रेय को शिवजी का अवतार और वैष्णव पंथ वाले विष्णु का अवतार मानते हैं। दत्तात्रेय को नाथ परंपरा का भी अग्रज माना गया है। यह भी मान्यता है कि रसेश्वर संप्रदाय के प्रवर्तक भी दत्तात्रेय थे। भगवान दत्तात्रेय ने वेद और तंत्र मार्ग का विलय कर एक ही संप्रदाय बनाया था।

मान्यता के अनुसार दत्तात्रेय ने परशुराम जी को श्रीविद्या प्रदान की थी। यह भी मान्यता है कि शिव पुत्र कार्तिकेय को दत्तात्रेय ने विद्याएं और दीक्षा दी थी। भक्त प्रह्लाद को अनासक्ति योग का उपदेश देकर उन्हें श्रेष्ठ राजा बनाने का श्रेय दत्तात्रेय को ही जाता है। गुरु गोरखनाथ को आसन, प्राणायाम, मुद्रा और समाधि चतुरंग योग का मार्ग भगवान दत्तात्रेय की भक्ति से ही प्राप्त हुआ है।

सिद्ध गुरु मत्स्येन्द्रनाथ 8वीं या 9वीं सदी के योग सिद्ध तंत्र परंपराओं और अपरंपरागत प्रयोगों के लिए प्रसिद्ध थे। यह परम सत्य है कि आदिनाथ स्वयं शिव ही है।

देदीप्यमानस्तत्वस्य कर्ता साक्षात् स्वयं शिवः।
संरक्षन्तो विश्वमेव धीराः सिद्धमताश्रयाः।।[1]

मूलतः समग्र नाथ संप्रदाय शैव है और सबके मूल उपास्य देवता शिव हैं। यह नाथ संप्रदाय कापालिक मत को ही स्वीकार करता है, क्योंकि कापालिक मत को श्री 'नाथ' ने ही प्रकट किया था। शांवरतन्त्र में कापालिकों के 12 आचार्यों[2] में प्रथम नाम आदिनाथ का ही है और 12 शिष्यों में से कई नाथ मार्ग के प्रधान आचार्य हैं। फिर शाक्तमार्ग जो तन्त्रानुसारी है, उसके उपदेष्टा भी नाथ ही हैं। नाथ ने ही तन्त्रों की रचना की है, क्योंकि षोड़श नित्यातन्त्र में शिव ने कहा है कि मेरे कहे हुए तन्त्रों को ही नवनाथों ने लोक में प्रचार किया है।

कादिसंज्ञा भवेद्रूपा सा शक्तिः सर्व सिद्धये।
तब यदुक्तं भुवने नवनाथैरकल्पयन्।।
तथा तैर्भुवने मंत्रं कल्पे-कल्पे विजृम्भते।
अवसाने तु कल्पानां सातैः सार्द्धं व्रजेच्च माम्।।[3]

शाक्त के मतानुसार चार प्रधान आचार हैं– वैदिक, वैष्णव, शैव और शाक्त। शाक्त आचार भी चार प्रकार के हैं यथा– वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। अब षट्शांभव रहस्य नामक ग्रंथ में बताया गया है कि वैदिक आचार से श्रेष्ठ वैष्णव आचार श्रेष्ठ है, उससे गाणापत्य, उससे सौर, उससे शैव और शैव आचार से भी शाक्त आचार श्रेष्ठ है। शाक्त आचारों में भी वाम, दक्षिण और कौल उत्तरोतर श्रेष्ठ है और कौल मार्ग ही अवधूत-मार्ग है। इस प्रकार तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार भी कौल या अवधूत मार्ग श्रेष्ठ है। इसलिए शाक्त तन्त्र भी नाथानुयायी ही है।[4] यह लक्ष करने की बात है कि इस वक्तव्य में शाक्त तन्त्रों को ही नाथ मत का अनुयायी कहा गया है। इस प्रकार नाथ संप्रदाय के ग्रन्थों की अपनी-अपनी गवाही से ही मालूम होता है कि तान्त्रिकों का कौल मार्ग और कापालिक मत नाथ मतानुयायी ही है। यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि कौल ज्ञान निर्णय में अनेक कौल मतों में एक योगिनी कौल मत का उल्लेख है। गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का सम्बन्ध इसी योगिनी कौल मार्ग से बताया गया है।[5] आदिनाथ (शिव) के बाद जैसे बताया गया है कि मत्स्येन्द्रनाथ ही नाथ परंपरा के मानवगुरु श्रृंखला में प्रथम एवं श्रेष्ठ आचार्य ही थे। नेपाली अनुश्रुति के अनुसार ये अवलोकितेश्वर के अवतार थे। काश्मीर शैवागमों में भी इनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। मच्छेन्द्र, मच्छिन्द्र और मच्छेन्द्र आदिनाथ के अपभ्रंश रूप हो सकते हैं। पर 'मच्छहन' शब्द मत्स्येन्द्र का प्राकृत रूप किसी प्रकार नहीं हो सकता। इसी नाम पर से हरप्रसादशास्त्री का अनुमान है कि मत्स्येन्द्रनाथ मछली मारने वाली कैवर्त जाति में उत्पन्न हुए थे। कौल ज्ञान निर्णय से भी 'मत्स्यहन' नाम का समर्थन होता है। इस ग्रंथ से पता चलता है कि मत्स्येन्द्रनाथ थे तो ब्राह्मण, परन्तु एक विशेष कारण से उनका नाम 'मत्स्यहन' पड़ गया। कार्तिकेय ने कुलागम शास्त्र को चुराकर समुद्र में फेंक दिया था। तब उस शास्त्र का उद्धार करने के लिए स्वयं भैरव अर्थात् शिव ने मत्स्येन्द्रनाथ का अवतार धारण कर समुद्र में घुसकर उस शास्त्र का भक्षण करने वाले मत्स्य का उदर विदीर्ण करके शास्त्र का उद्धार किया। इसी कारण से वे 'मत्स्यहन' कहलाये।

यह ध्यान देने की बात है कि अभिनवगुप्त ने भी 'मच्छन्द' नाम का ही प्रयोग किया है। इनके मत से आतान-वितान वृत्यात्मक जाल को छिन्न करने के कारण उनका नाम मत्स्येन्द्र पड़ा।[6] तन्त्रालोक के टीकाकार जयद्रथ ने भी इसी प्रकार का एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसके अनुसार 'मच्छ' चपल चितवृत्तियों को कहते हैं। ऐसी वृत्तिओं का छेदन करने के कारण ही वे 'मच्छन्द' कहलाये–

मच्छाः पाशाः समाख्याताश्चपलाश्चित्तवृत्तयः।
छेदितास्तु यदा तेन मच्छन्दस्तेन कीर्तितः।।

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ही मीननाथ थे, जो कि नाथ संप्रदाय के प्रमुख आचार्य एवं शिव के अवतार के रूप में पूज्य हैं। मत्स्येन्द्रनाथ और मीननाथ के एक होने का एक महत्वपूर्ण प्रमाण है कि

 ISSN 0976-0849

तन्त्रलोक की टीका में जयद्रथ ने दो पुराने श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमें शिव ने कहा कि मीननाथ नामक महासिद्ध 'मच्छन्द' ने कामरूप नामक महापीठ में मुझसे योग पाया था– तन्त्रालोक टीका में कहा गया है–

भैरव्या भैरवात् प्राप्तं योगं व्याप्य ततः प्रिये।
तत्सकाशास्तु सिद्धेन मीनाख्येन वरानने।
कामरूपे महापीठे मच्छन्देन महात्मना।[7]

निसन्देह टीकाकार जयद्रथ के मन में "कॉलज्ञान निर्णय" नामक ग्रन्थ ही रहा होगा, क्योंकि उन्होंने लिखा है कि यह मच्छन्द सकुल शास्त्रों के अवतारक रूप में प्रसिद्ध है।

(मच्छन्दः) सकल कुलशास्त्रावतारकतया प्रसिद्धः।[8]

मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा विरचित कौलज्ञान निर्णय में निम्नलिखित विषयों का विस्तार है– सृष्टि, प्रलय, मानस लिंग का मानसोपचार से पूजन, जीव स्वरस, जरामरण, चक्रध्यान, महाप्रलय के समय भैरव की आत्मरक्षा, आत्मवाद, सिद्धपूजन और कुल दीप विज्ञान, देहस्थ चक्रस्थिता देवियाँ, कपालभेद, कौलमार्ग का विस्तार, योगिनी संचार और देहस्थ सिद्धों की पूजा।

इन विषयों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि कौल ज्ञान सिद्धि परक विद्या है और यद्यपि शास्त्र में अद्वैत भाव की चर्चा है, पर मुख्यतः यह उन अधिकारियों के लिए लिखा गया है जो कुल और अकुल-शक्ति और शिव के भेद को भूल नहीं सके हैं। इसके विपरीत अकुल वीर तन्त्र का अधिकारी वह है जिसे अद्वैत ज्ञान हो गया है और जो अच्छी तरह समझ चुका है कि कुल और अकुल में कोई भेद नहीं है, शक्ति और शिव अविच्छिन्न-भाव से विराज रहे हैं। कुल (शक्ति) से अकुल (शिव) का सम्बन्ध स्थापन ही कौल मार्ग है।

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलेस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते॥[9]

इसलिए कुल और अकुल को मिलाकर समरस बनाना ही कौल साधना का लक्ष्य है और कुल और अकुल का सामरस्य समरस होना ही कौल ज्ञान है।

शिव का नाम अकुल होना उचित ही है, क्योंकि उनका कोई कुल-गोत्र नहीं है; आदि अन्त नहीं है–

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्र चन्द्रिकयोरिव॥
प्रसरं भाषयेत् शक्तिः संकोचं भासयेच्छिवः।
तयोर्योगस्य कर्ता यः स भवेत् सिद्धयोगिराट्॥[10]

शिव की सिसृक्षा अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा का नाम ही शक्ति है। शक्ति से समस्त पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, शक्ति शिव की प्रिया है। परन्तु शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं है। चन्द्रमा और चन्द्रिका का जो सम्बन्ध है वही शिव और शक्ति का सम्बन्ध है। पुनश्च शक्ति के बिना शिव शव है।[11] इकार शक्ति वाचक है– इकारः शक्तिः। और शिव का बिना शक्ति के अस्तित्व नहीं है–

न शिवः शक्ति रहितो न शक्तिः शिववर्जिता।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वहिनदाहकयोरिव॥

जैसे अग्नि और उसके अन्दर दाहकत्व में अभेद है और दोनों अलग रह नहीं सकते उसी प्रकार शिव और शक्ति में सर्वदा अभेद है, दोनों अभिन्न हैं– एक तत्त्व है। शिवतत्व पूर्ण अहंता का प्रतीक है। यह शिवावस्था में इदन्ता का या किसी भी प्रकार का भेद का आभासन नहीं होता।

योग विद्या के प्रवर्तक स्वयं आदिनाथ (शिव जी) - नाथ पन्थ के अनुसार शिव जी से ही योगशास्त्र का प्रारम्भ हुआ है अर्थात् शिव जी ही योगशास्त्र के मुख्य प्रवर्तक हैं क्योंकि शिव जी को हम आदि योगी के रूप में जानते हैं। जैसा कि गोरक्ष पद्धति में कहा गया है–

योगशास्त्रं पठे नित्यं किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
यत्स्वयं चादिनाथस्य निर्गतं वदनाम्बुजत्॥[12]

अर्थात् जो योगशास्त्र को नित्य पढ़ते हैं, उन्हें विस्तार शास्त्र से क्या करना हैं, योगशास्त्र का उक्तफल यथोक्त प्रत्यक्ष मिलता है, क्योंकि यह शास्त्र आदिनाथ (शिव जी) ने स्वयं हृदय कमल से अनुभूत होकर मुख कमल से प्रगट किया, इसके अनुभवसिद्ध होने से अति प्रामाणिक है।

योग से मुक्ति संभव है अतः शिव जी ने अपने भक्तों को मुक्ति प्रदान करने के लिए योगशास्त्र का प्रणयन किया जो आज के सन्दर्भ में अत्यन्त उपयोगी और फलप्रद भी है।

उपसंहार

नाथ पन्थ में शिव तत्व उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि शिवजी इस पन्थ के मुख्य प्रवर्तक थे। अनेकों साधु, संत, महापुरुषों ने इस विशिष्ट पन्थ में जन्म लेकर पन्थ का प्रचार और प्रसार किया और लोगों को सदमार्ग में चलने के लिए प्रेरित भी किया। अतः आदिनाथ शिवजी की अशेष कृपा से इस पन्थ का संसार में बहुत ही प्रसार हुआ और आज भी इस पन्थ के बहुत अनुयायी हैं। इस सबका मुख्य श्रेय आदिनाथ भगवान शिवजी को जाता है। आदिनाथ शिवजी जिस पन्थ के मुख्य हैं उस पन्थ का कभी भी अन्त नहीं हो सकता है और साधारण मनुष्य भगवान शिव द्वारा प्रवर्तित इस पन्थ (मार्ग) को अपनाकर अपना कल्याण करने के साथ-साथ सारे संसार का भी मंगल कर सकते हैं, इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं है।

 ISSN 0976-0849

संदर्भ:

1. सिद्धसिद्धान्तपद्धति, शक्ति संगम तन्त्र, बड़ौदा सीरीज (91) के ताराखण्ड में आदिनाथ और काशी के संवाद से ग्रंथ प्रारम्भ होता है। ये आदिनाथ स्वयं शिव हैं।
2. कापालिकों के बारह आचार्य हैं– आदिनाथ, अनादि, काल, अतिकाल, कराल, विकराल, महाकाल, कालभैरवनाथ, बटुकनाथ, वीरनाथ और श्रीकण्ठा। उनके 12 शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं– नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्ष, चर्पट, अवय, वैराग्गी, कथाथारी, जालंधर और मलयार्जुन इस सूची में से अनेक नाम नाथ योगियों के है।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ संप्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1950, पृ. 4
4. गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, पृ. 19
5. कौल ज्ञान निर्णय, संपा. बागची, प्रबोधचन्द्र, कलकत्ता संस्कृत सीरीज, कलकत्ता, 1934 ई., भूमिका, पृ. 35
6. रागारुणं सन्धिविलावकीर्णं यो जालमातान वितान वृतिः।
   क्लोभितं वामपथे चकारस्या मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः।। तन्त्रलोक 1.17, प्रथमभाग, पृ. 25
7. तन्त्रलोक टीका, जयद्रथ द्वारा प्रणीत, पृ. 24
8. वही, पृ. 24
9. सौभाग्य भास्कर, पृ. 5
10. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह, संपा. कविराज, गोपीनाथ, सरस्वती सदन, काशी, 1925 ई., पृ. 56
11. शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।
    दृष्टव्यः हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत नाथसंप्रदाय पुस्तक, पृ. 62 देवी भागवत वचन
12. गोरक्षपद्धति, अनु. शर्मा, महीधर, बम्बई, 1990 विक्रमी, मुक्तिसोपान अध्याय, उत्तरशतक, श्लोक 100

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 55–71
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

भारतीय संस्कृति के स्रोत और प्रवाह के अध्येता : वासुदेव शरण अग्रवाल

प्रो. रामदेव शुक्ल*

सारांश: 19वीं शताब्दी का भारत अपने आप को नए सिरे से पहचानने की कोशिश कर रहा था। इसमें सबसे बड़ी भूमिका उन लोगों की थी जो पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जानबूझ कर फैलाए गए भ्रम मात्र को ठोस प्रमाणों और सुतर्कों के माध्यम से तोड़ रहे थे। इस दृष्टि से डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल भारतीय इतिहास के क्षितिज पर प्राज्वल्यमान अक्षरों में सर्वाधिक दिप्तिमान हैं। उच्चादर्शों से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति को प्रकाश में लाने में डॉ. अग्रवाल ने जितना श्रम किया, वह शायद ही किसी विद्वान के किए गए कार्यों से तुलनीय हो। प्रस्तुत शोध-पत्र में भारतीय संस्कृति के अध्येता के रूप में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

बीजशब्द: अष्टाध्यायी, पाणिनी-पतंजलि, योगसूत्रवृत्ति, महाभाष्य, हिन्दू राज्यतंत्र, भारतवर्ष

भारत की स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव का यह अवसर भारतीय संस्कृति, ज्ञान-परम्परा, भक्ति-काव्य, दर्शन और योग आदि के विश्व-पटल पर आच्छादित होने का कालखण्ड है। समग्र विश्व में भारतीय संस्कृति पर गहन विमर्श आरम्भ हो चुका है। विश्व सनातन की ओर उन्मुख हो रहा है। भारत के प्राच्य मनीषियों द्वारा भारतीय श्रेष्ठता को प्रकाश में लाने का जो महनीय प्रयास 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रारम्भ किया गया, वह आज भारत को विश्व सिरमौर बना रहा है। उक्त कालखण्ड में इतिहास, पुरातत्व, भाषा-विज्ञान, राजनीतिक दर्शन और कला-चिंतन के क्षेत्र में जो कालजयी व्यक्तित्व अपने कृति सर्जन के कार्य में संलग्न थे ऐसे रामकृष्ण दास, जयशंकर प्रसाद, काशीप्रसाद जायसवाल, आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिली शरण गुप्त, महामना मदन मोहन मालवीय, अनन्त सदाशिव अल्तेकर, आचार्य किशोरी दास वाजपेयी आदि का स्मरण वर्तमान में अत्यन्त ही प्रासंगिक है। इन्हीं नामों में से एक नाम डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल जी का है, जिनके

*पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

सद्प्रयासों और ग्रन्थों के बिना भारतीय संस्कृति के विषय में जो आज हम जानते हैं, वो नहीं जान पाते।

इंगलैण्ड की ईस्टइंडिया कंपनी ने 1757 ई. में बंगाल के नवाब से सूबा बंगाल जीतने के बाद 1784 में ही भारत के धन-बल और बुद्धि-बल पर कब्जा करने के लिए अनेक संस्थाएं बनाकर प्राच्यविद्या-अभियान चला दिया। कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट स्थापित हुआ। उसके जज के रूप में विलियम जोन्स ने प्राच्यविद्या के क्षेत्र में असाधारण महत्त्व के कार्य किये। अँग्रेज अपनी संसद को विश्व संसदीय व्यवस्था की जन्मदात्री के रूप में प्रचारित कर रहे थे।[1] उनका जबाब देने के लिए काशी प्रसाद जायसवाल ने हिन्दूपालिटी नामक ग्रंथ लिख कर दुनिया को बताया कि महाभारत-काल और गौतमबुद्ध के समय में ही भारत के जनपदों में संसदीय प्रणाली कितनी उन्नत दशा में सक्रिय थी। वही ग्रंथ 'हिन्दू राजतंत्र' के नाम से प्रकाशित हुआ।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल मेरठ जिले के एक गाँव में जन्मे, लेकिन उनकी प्राय: सम्पूर्ण शिक्षा अपनी नानी की छत्रछाया में लखनऊ में हुई। वहीं से पुरातत्त्वशास्त्र में एम.ए. करने बाद पुरातत्त्वशास्त्र और समाजशास्त्र के विश्व प्रसिद्ध विद्वान आचार्य राधा कुमुद मुकर्जी के निर्देशन में शोध-विषय के रूप में उन्होंने 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष' का चयन किया। दो खण्डों में वह शोध-प्रबंध पहले अँग्रेजी में प्रकाशित हुआ। बाद में हिन्दी में स्वयं अनूदित करके लेखक ने उसे हिंदी में प्रकाशित कराया। डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल की शैली में अँग्रेज विद्वानों के भ्रम का निवारण करने के लिए डॉ. अग्रवाल ने पाणिनि के विश्वविश्रुत व्याकरण ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' को क्यों चुना? इसका जवाब उनके प्रकाशित शोध प्रबन्ध के हिंदी संस्करण की भूमिका में मिल जाता है।

'पाणिनि' के युग में संघों का बाहुल्य था।[2] लोक में संघ आदर्श का सर्वोपरि प्रचार था। यहाँ तक कि गोत्र, चरण, श्रेणि, निगम आदि सामूहिक संस्थाओं के संगठन और कार्यविधि की प्रेरणा संघआदर्श से ही प्राप्त की जाती थी, जैसी आजकल है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में पचास से अधिक संघों के नाम हैं। उनकी पहचान का प्रयत्न किया गया है। संघों का क्षेत्र वाहीक या पंचनद प्रदेश से लगाकर पर्श या ईरान तक फैला हुआ था। इन संघों के जो अनेक प्रकार थे उनके राजनैतिक संविधानों पर भी डॉ. अग्रवाल ने अपने शोधग्रन्थ में ध्यान दिया था। उन संघों का गण, आयुधजीवी संघ, पर्वताश्रयी संघ, श्रेणि, पूग, व्रात, ग्रामणीय आदि विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण उस काल के राजनैतिक जीवन का जैसा ज्वलंत चित्र उपस्थित करता है, वैसा अन्य किसी समकालीन साहित्यिक स्रोत से प्राप्त नहीं होता।

ऐतिहासिक दृष्टि से डॉ. अग्रवाल के शोध-प्रबन्ध की सबसे महत्त्वपूर्ण सामग्री जनपद संख्या पर नया प्रकाश है। भारतीय संस्कृति की विकासधारा में जनपदों का महत्त्व अभी तक ठीक प्रकार समझा नहीं जा सका है। यूनान देश के इतिहास में जो महत्त्व पुरराज्यों का था, वही भारतीय इतिहास

में जनपदों का था। सच तो यह है कि भारत में जनपद राज्यों का प्रयोग देशकाल में उससे भी कहीं अधिक व्यापक और गंभीर परिणाम वाला हुआ। एक राज्य और संघ, दो प्रकार के जनपदों में भारतीय संस्कृति की मूल प्रतिष्ठा और राष्ट्रीय एकता का विकास हुआ। हमारे जीवन के जो विविध स्तर हैं, उनमें जीवन की दृढ़ शैली जनपद युग में ही व्यवस्थित की गई। धर्म के क्षेत्र में एक ओर वैदिक तत्त्वज्ञान और यज्ञपरक कर्मकाण्ड एवं दूसरी ओर लोकधर्म के यक्ष, नाग स्कन्द, गण, भूत, पिशाच, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि देवताओं की पूजा मान्यता, इन दो धाराओं का समन्वय और पारस्परिक सन्तुलन जनपद युग में ही हुआ। भाषाओं और बोलियों के स्तर पर भी ऐसा ही समन्वय हुआ। डॉ. अग्रवाल लिखते हैं कि "एक ओर वैदिक भाषा और दूसरी ओर जनसमूह की अनेक बोलियों – इन दोनों का समन्वय होकर **पाणिनीय संस्कृत भाषा का नया सर्वमान्य विकास भी जनपद युग में ही हुआ।** इससे उस समय के व्यावहारिक जीवन की पूर्ति हुई और कालान्तर में जिसकी दृढ़ छाया के रूप में ही प्राकृत भाषाएँ और लोकभाषाएँ ऊपर उभर आईं।"

डॉ. अग्रवाल का मानना है कि आर्थिक क्षेत्र भी इससे गहरे स्तर पर प्रभावित हुआ। "जनपद युग के आर्थिक क्षेत्र में जीवन का जो व्यापक ढाँचा तैयार हुआ वही कृषि और शिल्पप्रधान ठाठ अभी तक फैला हुआ है। जनपदों का जीवन नई-नई शिल्पवृत्तियों से भर रहा था। यास्क और पाणिनि ने उन्हें 'जानपदी' शब्द से व्यवहृत किया है। जनपदों में शिल्प का जीवन कितना बहुमुखी था, यह जातकों से जाना जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में चरण नामक अनेक विद्यासंस्थाओं का तानाबाना ही जनपदों में पूर दिया गया था। एक-एक आचार्य के अन्ते वासियों ने गाँव-गाँव में फैलकर शिक्षा और ज्ञान की धारा बहा दी थी– ग्रामे ग्रामे काठकं च प्रोच्यते। फलस्वरूप उस युग में साहित्य का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। ब्राह्मणग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, व्याकरण, निरुक्त, छन्द प्रातिशाख्य महाभारत, रामायण, दर्शन आदि महान् साहित्य जनपद युग की ही देन हैं।"

आज की व्यवस्था से तुलना करते हुए डॉ. अग्रवाल बताते हैं कि– "जैसे वर्तमान समय में किसी भी प्रकार की सभा या संगठन हो, उसका आदर्श संघ शासन से लिया जाता है, कुछ वैसी ही व्यवस्था उस युग में थी। ऐसी हवा चली थी कि जनता की शासन पद्धति, अधिकार निर्णय, स्वतंत्र संगठन एवं सैनिक संस्थान आदि के विषय में संघीय आदर्श का सौरभ वाहीक-त्रिगर्त से लेकर सिन्धुनद के पश्चिमोत्तर काम्बोज-बाल्हीक तक सर्वत्र व्याप्त हो गया था। मोटे तौर पर यह विदित होता है कि देश के प्राच्य भूभाग में राज्यप्रथा और उदीच्य भाग में संघों की प्रथा अधिक प्रचलित थी। अनुश्रुति है कि जरासंध के समय में मगध में ही साम्राज्य की प्रवृत्ति आरम्भ हुई जो कि शिशुनाग और नन्द राजाओं के युग में और भी आगे बढ़ी, यहाँ तक कि मौर्य शासन में एकराज जनपद और गणाधीन संघ इन दोनों को समाप्त करके **देशव्यापी साम्राज्य कायम हो गया।** कौटिल्य ने संघों के प्रति अपनी नीति का उल्लेख किया है कि संघशासन से राष्ट्र की की दृढ़ता में बाधा

 ISSN 0976-0849

पड़ती है, अतएव साम्राज्य में उनका अन्तर्भाव हो जाना चाहिए।" डॉ. अग्रवाल इसे भी रेखांकित करते हैं कि "मौर्य शासन का ढाँचा शिथिल पड़ने के बाद फिर एक बार संघों के फेफड़े नवीन श्वास-प्रश्वास से भर गये, जिनका प्रमाण भारतीय इतिहास में 200 ई.पू. से दूसरी सदी इस्वी तक के अनेक जनपद राज्यों में पाया जाता है। संघों की यह करवट चौथी शती ईस्वी में गुप्त साम्राज्य के उदय के साथ सदा के लिए समाप्त हो गयी।"

अष्टाध्यायी में संघ शब्द के अनेक अर्थ हैं। सामान्य अर्थ समूह या जैसे– ग्राम्य पशुसंघ (1/2/23)। दूसरा अर्थ निकाय या जो उस प्रकार का संघ था जिसमें ऊँच और नीच (औत्तराधर्म) का भेद नहीं था (संघे चानौत्तराधर्य (8/2/82) तीसरा अर्थ गण है (संघोद्यौ गण प्रशंसयो; 3/3/86) यह राजनैतिक था औरगण का पर्यायवाची था, किंतु उनके अपने सिक्कों पर उन्हें 'गण' कहा गया है। पाणिनि ने जिस धार्मिक संघ को निकाय कहा है, उसका राजनैतिक संघ से पूरा मेल था। भेद केवल एक बात में था कि राजनैतिक संघों में सत्ता परिगणित कुलों में केन्द्रित होती भी। उनका अभिषेक मंगल किया जाता था।[3] इस कारण वे **अभिषिक्त वैश्य क्षत्रिय कहलाते थे**। गण में दूसरी जातियों के लोगों को शासन सत्ता का अधिकार न था। जातिपरक यह भेद धार्मिक संघ में बिल्कुल नहीं था। समानता आधार थी।

पाणिनीय सूत्रों के आधार पर उस समय के गुप्त रहस्यों तक पहुंच जाना डॉ. अग्रवाल की अप्रतिम विशेषता है। वे लिखते हैं कि अष्टाध्यायी की सामग्री से संघों के संविधान की **तरल** अवस्था का जैसा परिचय प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र नहीं। उस समय वाहीक और उत्तरपश्चिमी प्रदेश में **नाना प्रकार के** संघराज्य थे, जिनमें **शासन की अनेक कोटियाँ** थीं। कुछ तो बहुत ही उन्नत श्रेणी के संघ थे जिनमें सभा, परिषद, संघमुख्य, वर्ग, अंक, लक्षण आदि संघ शासन की प्रमुख विशेषताओं का विकास हो चुका था। कुछ संघ **अभी विकास की आरंभिक अवस्था में थे**। कुछ **उत्सवजीवी या लूटमार करके** आत्मनिर्वाह करने वाले कबीलों ने अपना एक मुखिया चुनकर किसी प्रकार का संघ शासन का शिथिल सा संगठन खड़ा कर लिया था। इनमें भी ब्रात और पूग जैसी कई कोटियाँ थीं। इस प्रकार की आयुध जीवी जातियों का राजनैतिक संगठन **श्रेणि** भी कहलाता था। सावित्री-सत्यवान के सौ पुत्रों ने सावित्री-पुत्रक नामक अपना संघ संगठित कर लिया। उनमें से प्रत्येक अपने को राजा की पदवी से विभूषित करता था। (म. वनपर्व 261/58, कर्ण पर्व 5/49, पाणिनि का दामन्यादिगण 5/3/116) ऐसे सैकड़ों शब्द और उनके साथ जीवन-व्यवहार डॉ. अग्रवाल ने गिनाए हैं।

पाणिनीय सूत्रों में आए शब्दों अर्थ के सम्बंध में डॉ. अग्रवाल की विनम्रता देखिए। "इन शब्दों के जो अर्थ दिए गए है, वे संभावित हैं। किंतु भाषा में शब्दों का अस्तित्व सूचित करता है कि उनके अर्थों के अनुरूप संस्थाओं का अस्तित्व लोक में था। संभव है भविष्य में प्राचीन

साहित्यिक सामग्री के सूक्ष्म अध्ययन से इन पर अधिक प्रकाश डाला जा सके।"

कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्रों में पाणिनि ने शासन सम्बंधी विशेष प्रयोगों या विविध प्रकारों का इस प्रकार उल्लेख किया है– गण, संघ, अवयन (4/1/61) त्रिगर्तष्ठ (5/3/116) राजन्य (6/2/24) द्वन्द्व या व्युत्क्रमण (8/1/15) जनपद, जनपदिन् अभिषिक्त वश्य क्षत्रिय, पूग, श्रेणि, ग्रामणी, व्रात, कुमारपूग (6/2/88) आयुध जीविन् (5/3/51) पर्वतीय (4/2/143) परिषद्बल राजा (5/2/112) संधिमिर राजा (6/2/154) इत्यादि। अनेक संघों में आयुध-जीवी सैनिकों का स्वतंत्र अस्तित्व या जो युद्ध के लिए सैनिक टुकड़ी के रूप में प्राप्त किए जा सकते थे। कृष्ण ने अपने वृष्णिसंघ के विषय में कहा था कि इस प्रकार के अट्ठारह सहस्र व्रात उनके संघ में थे। (अष्टादश सहस्राणि व्रातानां संति नः कुले सभापर्व म.भा. 13/55)"

डॉ. अग्रवाल यूनानी पुरराज्यों में आयुधजीवियों का उल्लेख करते हैं– "इसी प्रकार के अनेक व्रात या आयुधजीवी लड़ाके यूनानी पुरराज्यों में और थ्रेस के पहाड़ी इलाकों में थे। वे युद्ध और लाभ के लोभ से सिकंदर की सेना में भरती होकर आ गये थे।"

सभा और परिषद– प्रत्येक जनपद में चाहे वह राजाधीन था या गणाधीन उसकी एक सभा और एक परिषद होती थी। सभा राजाधीन जनपदों में राजा के नाम से प्रसिद्ध होती थी, जैसे चन्द्रगुप्त-सभा, पुष्यमित्र-सभा, जिनका उल्लेख पतंजलि ने किया है।[4] जातक कथाओं में प्रायः राजसभा के 500 सदस्यों का उल्लेख आता है। इस सभा में पौरजानपद प्रतिनिधि एवं अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति और विद्वान् सदस्य होते थे। राजाधीन जनपद में परिषद् से तात्पर्य मंत्रिपरिषद् से था। उसी के कारण 'परिषद्बलो राजा' यह साभिप्राय शब्द लोक में प्रचलित हुआ था। गणराज्यों में सभा के संगठन का आधार कहीं अधिक व्यापक था। संघ या गण में जो मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय या राजन्य होते थे वे सब सभा में बैठने के अधिकारी थे। इसका अच्छा उदाहरण दृष्णधन्धक गण की सभा वह अधिवेशन है जो सुभद्राहरण के अवसर पर सभापाल द्वारा सान्नाहिकी भेरी बजाकर बुलाया गया था। कहा है कि उस शब्द से क्षुब्ध होकर भोज, वृष्णि और अन्धक खाना-पीना छोड़कर भागते हुए सभा में आए। (आदिपर्व 212/12)

डॉ. अग्रवाल यूनानी पुरराज्यों की सभा के साथ भारतीय सभा की तुलना करते हुए लिखते हैं– "यूनान में सभा की सदस्यता प्राप्त करने के लिए नागरिक को अट्ठारह वर्ष की आयु प्राप्त करना आवश्यक था। तब उसका नाम जन की सूची में पंजीबद्ध कर लिया जाता था। उसके बाद भी उसके लिए दो वर्ष की सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। अतएव बीस वर्ष की आयु प्राप्त होने के बाद ही नागरिक या अधिवेशनों में व्यवहारतः सम्मिलित हो पाते थे। पाणिनि ने वयः प्राप्त क्षत्रिय कुमार के लिए कवचहर शब्द का उल्लेख किया है। (वयसि च 2/2/10, कवचहरः क्षत्रिय कुमारः) यह योग्यता अठारह वर्ष की आयु में प्राप्त होती थी। कवचहर की ध्वनि यही है कि वह युवा कुमार

 ISSN 0976-0849

सैनिक शिक्षा प्राप्त करने लगता था। उसकी समाप्ति के बाद वह युवा सभेय अर्थात् सभा में भाग लेने योग्य होता था। सभेय वैदिक शब्द था (सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्) पाणिनि-युग में उसके लिए यह नया शब्द प्रयुक्त होने लगा था। (सभायां साधुः सभ्यः, सभाया यः 4/4/105) सभ्य पदवी उसी के लिए प्रयुक्त होती थी जो सभा में सम्मिलित होने की साधुता या योग्यता प्राप्त कर चुका हो।"

गण या संघ बनते कैसे थे? किस आधार पर उनका स्वरूप बनता था? डॉ. अग्रवाल एथेन्स और भारत दोनों देशों के उदाहरण सामने रखते हैं। "गण या संघ में प्रतिनिधित्व का आधार कुलों का संगठन था। प्रत्येक कुल एक इकाई माना जाता था। एक कुल का एक प्रतिनिधि शासन में भाग लेने का अधिकारी होता था जो राजा कहलाता था। (गृहे गृहे हि राजानः, सभापर्व, 14/2) लिच्छवि गण में 1101 कुल थे। उतने ही राजा (राजानो) थे। चेदि जनपद में साठ सहस्त्र क्षेत्रियों की गणना की जाती थी और उन सबकी उपाधि राजा (राजानो) थी। (जातक- 6, 511) किसी को आश्चर्य हो सकता है कि इतने लोगों को सभा के अधिवेशन में भाग लेने का अधिकार कैसे मिलता था। डॉ. अग्रवाल यूनानी पुरराज्यों की व्यवस्था से तुलना करते हुए बताते हैं कि वहाँ भी "समस्त नागरिकों के लिए राजनीति में भाग लेना आवश्यक था, क्योंकि उनके यहाँ प्रतिनिधि चुनने की प्रथा न थी। उदाहरण के लिए 421 ई.पूर्व में गणना के अनुसार एथेन्स के पुरराज्य में 42000 नागरिक थे। सिद्धान्ततः सबको सभा में भाग लेने का अधिकार था पर उपस्थित जनों की संख्या दो से तीन सहस्र से अधिक न होती थी। कुछ प्रस्ताव ऐसे थे कि जिनके लिए 'समग्रजन' की उपस्थिति विधानतः आवश्यक थी । 6000 की संख्या गणपूरक मान ली गयी थी। उतनी उपस्थिति होने पर समग्रगण की ओर से सम्मत मान लिया जाता था।"

भारतवर्ष में क्या था? अथर्ववेद में देवजन के लिए छह सहस्र संख्या का उल्लेख है (ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे.... षट सहस्रा, अथर्व 11/5/2) यहाँ सर्वजन एवं पृथग् देवजन की द्विविध स्थिति का उल्लेख है। वस्तुतः समस्त जन या गण की जो सभा थी उसी की आदर्श कल्पना देवजन ही सभा में चरितार्थ होती थी। मानवजन की सभा और देवजन की सभा में दोनों नियम, संगठन और आदर्श की दृष्टि से अभिन्न थी। वृष्णि संघ के जिस अधिवेशन का उल्लेख ऊपर किया गया है उसमें स्पष्ट लिखा है कि उनकी वह सभा सुधर्मा कहलाती थी जो कि देवताओं की सभा की संज्ञा प्रसिद्ध है (ते समासाद्य सहिताः सुधर्मामभितः सभाम्-आदिपर्व, 212/10) डॉ. अग्रवाल का निष्कर्ष है कि- "इस प्रकार अथर्ववेद में सर्वजन के लिए जो षटसहस्र संख्या कही गयी है उसे गणसभा की संख्या का निश्चयपूर्वक माना जा सकता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि षट्सहस्र को उपस्थिति हो जाने पर समग्रगण की गणपूरक उपस्थिति समझ ली जाती थी।"

डॉ. अग्रवाल अथर्ववेद में 'पृथग्देवाः' की व्याख्या बृहदारण्यक उपनिषद के वर्णन के आधार पर करते हुए बताते हैं कि उस वर्णन में देवों की संख्या 3000 या 300 या 33 नही गयी है (वृ. आरण्य 3/9/1) यह संख्या पृथक देवजन की नियत उपस्थिति की ओर ओर संकेत करती प्रतीत होती है। जैसे यूनानी पुरराज्यों में वैसे ही यहाँ के गणराज्यों में जिस समय जन इच्छानुसार सभा में उपस्थित होता तो प्रायः इतनी संख्या हो जाती थी। जन के उस स्वरूप को सर्वजन के मुकाबले में पृथक जन कहा जाता था। संगति परक अन्य व्याख्या के अभाव में इन दोनों संख्याओं को जनसभा की गणपूरक मानना हो युक्तियुक्त जान पड़ता है। इस पृष्ठभूमि में छांदोग्योपनिषद की सर्वदेवजन विद्या का अर्थ भी स्पष्ट समझा जा सकता है अर्थात् **जनपद और गणों के शासन से सम्बन्ध रखने वाली राजनीति विद्या।"**

डॉ. अग्रवाल लिखते हैं कि **एक राज** जनपदों के नाम पाणिनि ने सूत्रों में उल्लेख किया है– 1-कम्बोज, 2-गान्धारि, 3-मद्र, 4-साल्वेय, 5-साल्व, 6-कलकूट, 7-कुरु, 8-प्रत्यग्रय, 9-कोसल, 10-अजाद, 11-कुंति, 12-अवन्ति, 13-अश्मक, 14-काशि, 15-मगध, 16-कलिंग, 17-सूरमस, 18-सौवीर, 19-अभ्वष्ट। पतंजलि ने कुछ ऐसे के नाम दिए हैं जिनका सूत्रों में अन्तर्भाव माना है जैसे विदेह, पंचात, अङ्ग, दार्व, नीप। इनके अतिरिक्त गणाधीन संघों के भी अनेक नाम सूत्रों और गणों में आते हैं।"

गणाधीन संघ – एकराज जन पदों से भिन्न थे। कात्यापन ने इन दोनों पद्धतियों का स्पष्ट नामोल्लेख करते हुए सूचित किया है कि दोनों में मौलिक भेद था (क्षत्रियादेकराजात् संघ प्रतिषेधार्थम् 4/1/168 वा-1) एकराज जनपद राजनैतिक परिभाषा के अनुसार एकाधीन और संघशासन वाले जनपद् गणाधीन कहलाते थे।[5] एक में ऐश्वर्य या प्रभुसत्ता एक व्यक्ति में केन्द्रित रहती थी और दूसरे मैं वह सम्पूर्ण गण में निष्कित होती थी। संघराज्यों का महत्त्व अधिक था।

इस व्यवस्था पर डॉ. अग्रवाल की टिप्पणी यह है– "भारतीय राज्य पद्धति में जनजीवन के मंथन से समुद्भूत ऐसा महत्त्वपूर्ण और व्यापक प्रयोग उससे पहले और बाद में भी फिर कभी देखने में नहीं आया। उस समय साहित्य के क्षेत्र में अद्भुत प्रकाश फैल गया था। यूनान के पुरराज्यों में भी ज्ञान का कुछ ऐसा ही विस्फोट हुआ था। इसी युग में प्रज्ञा, मेधा, श्रद्धा, तप, अध्ययन, दीक्षा, सत्य, धर्म, आचार आदि के आदर्श लोक के धरातल पर अवतरित हुए, जैसा अश्वपति कैकेय के एक वाक्य से सुविदित है 'न में स्तेनो जनपदेन न कदर्यो न मद्यपः। नानाहिताविनर्ना विद्वान् न स्वैरी स्वैरिवी कुताः।।'

जनपदों की भौगोलिक सीमाएँ निश्चित हुईं। उनके शासनकर्त्ता 'जनपदिन्' क्षत्रियों के संगठन सुव्यवस्थित हुए। परिवारों के या 'गोत्र' प्रधान संगठित जीवन का क्रम सूत्रबद्ध हुआ। स्त्री-पुरुषों के नामों में जनपदीय नामों की छाप पड़ गयी। जातियों के संगठन उभर आए। सामूहिक जीवन की

 ISSN 0976-0849

अपनी इकाइयों को प्रश्रय मिला। गोत्र, चरण, संघ, शिल्पियों की श्रेणियाँ, ये सब अपने-अपने विकास की धारणा पर आगे बढ़ीं और जातियों के रूप में इस प्रकार दृढ़ता से संगठित हो गयीं कि वे संगठन अधिकांश में आज भी प्रवर्तमान हैं। एकीकृताः श्रेणीकृताः, पूगकृताः, क्षत्रियकृताः, ब्रह्मणकृताः आदि पाणिनि के प्रयोग सामाजिक जीवन के बिखरे हुए सूत्रों के एकीकरण की सूचना दे रहे हैं। दूसरी ओर वे यह भी सूचित करते हैं कि प्रत्येक समूह जाति के रूप में संगठित होकर देश की राष्ट्रजननी पद्धति के साथ संयुक्त हो रहा था। इसका ऐसा ढंग बना कि प्रत्येक का अपना स्वरूप बना रहा और संघ आदर्श के अनुसार निजी जातीय संगठन भी चलता रहा, तथा दूसरी ओर प्राणवंत प्रभावों के आदान-प्रदान के लिए समाज की बड़ी इकाई के साथ भी जीवन के सूत्र मिलकर एक हो गये। सामाजिक क्षेत्र में यह चमत्कार पूर्ण प्रयोग जनपद युग में ही सम्पन्न हुआ था।

भारत वर्ष के जनपद राष्ट्र को मानवीय जीवन की सक्रिय प्रयोगशालाएँ कहते हुए डॉ. अग्रवाल बताते हैं कि संघों से लोगों को संगठन की प्रेरणा मिली। जनता के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का दृढ़ संस्थान जनपद-युग (1000 ई. से 500 ई. पूर्व तक) में सदा के लिए स्थिरता को प्राप्त हुआ। कालान्तर में उसका संस्कार तो होता रहा, आमूलचूल परिवर्तन या विघटन कभी नहीं हुआ।

पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' में सम्पूर्ण जीवन-प्रवृत्तियों के विषय में ऐसी सच्ची और बारीक जानकारी कैसे मिलती है? एक वैयाकरण को इतनी जानकारी कैसे हुई और क्यों हुई?– "लोक ही व्याकरण का सबसे महान् आवपन या थैला है जो शब्दों के अपरिमित भण्डार से भरा रहता है। उस लोक के प्रति पाणिनि की बढ़ी हुई निष्ठा और श्रद्धा थी। लोक प्रमाण (जिसे संज्ञा प्रमाण कहा गया है) के आधार पर ही आचार्य ने अपने महान् शास्त्र की रचना की। लोक के विषय में पाणिनि की गाढ़ी श्रद्धा ही अष्टाध्यायी को बहुमुखी सांस्कृतिक सामग्री का हेतु है। इस दृष्टि को लेकर आचार्य के नेत्रों में अभूतपूर्व तेज भर गया था। गुप्त-प्रकट जो शब्द-सामग्री जहाँ थी वह सब उन्हें ऐसे प्रतिभासित हो गयी जैसे पुराकाल के अन्य किसी आचार्य को नहीं हुई थी। शब्दों की खोज में लोक तिलतिल परिचय जिसे आख्याताओं ने सूक्ष्मेक्षिका कहा है, पाणिनीय कार्य शैली की विशेषता थी जिससे ऐसे सर्वांगपूर्ण शास्त्र का जन्म हुआ है। महाभारत में वैयाकरण के लिए लिखा है–

सर्वर्थानां व्याकरणाद् वैयाकरण उच्यते।
प्रत्यक्षदर्शा लोकानां सर्वदर्शो भवेन्नरः।। (उद्योगपर्व 43/36)

सब अर्थों का व्याकरण, विवेचन, निर्वचन, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक स्पष्टीकरण, इसका प्रयत्न करना ही वैयाकरण का कार्य है। 'सर्वार्थ' शब्द की व्यंजना दूर तक है; इसमें जो जितनी सामग्री भर सके वही उसकी सफलता है। पाणिनि ने लोक की भाषा में प्रचलित अनेक अर्थों के व्याकरण का समन्तात् प्रयत्न किया, वह अष्टाध्यायी के सूत्रों में शाश्वत काल के लिए निहित है।

भगवान पाणिनि द्वारा उपज्ञात यह महत् और सुविहित शास्त्र पर्वतघटित कैलाश मंदिर के समान विश्व का आश्चर्य है। पाणिनि के सूत्रों की शोभना कृति और अर्थगौरव उसी स्वयम्भू शिवधाम के समान अनंत कृति है। शताब्दियों के विस्तृत अंतराल ने उसकी महिमा का संवर्धन ही किया है। जब तक व्योम में चंद्र और सूर्य प्रकाशित हैं तब तक पाणिनि का यह शब्दशास्त्र लोक में प्रवर्धमान रहेगा।

डॉ. अग्रवाल के शोध-ग्रन्थ 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' के प्रथम अध्याय में पाणिनि के जन्म-स्थान शलातुर ग्राम का भौगोलिक परिचय चीनी यात्री श्यूआन च्युआङ् (ह्वेन सांग) के साक्ष्य पर दिया गया है।[6] चीनी यात्री ने लिखा है कि 'शलातुर के लोग, जो पाविनि शास्त्र के अध्येता हैं, उनके उदात्त गुणों की प्रशंसा करते हैं और एकमूर्ति जो उनकी स्मृति में बनाई गयी है, अभी तक विद्यमान है।' उसी को गांधार देश भी कहा जाता था।

पाणिनि के समकालीन आचार्य कात्यायन ने पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक रचा। आगे महर्षि पतंजलि ने 'अष्टाध्यायी' का महाभाष्य रचा। पाणिनि को पतंजलि ने ही 'सूत्रकार' कहा। उसके दो हजार वर्षों तक व्याकरण-ग्रंथ सूत्रों में ही लिखे जाते रहे। कात्यायन और पतंजलि दोनों ने पाणिनि के लिए भगवान विशेष का प्रयोग नहीं किया गया – भगवत: पणिनेराचार्यस्य सिद्धम् (भा. 8/4/68) पतंजलि के समय तक पणिनि का व्याकरण लोक में इतना प्रसिद्ध हो गया था कि 'इत्यपाणिनि उत्पाणिनि' अर्थात् यहाँ भी पाणिनि वहां भी पाणिनि– सब जगह पाणिनि की ही चर्चा चलने लगी। 'आकुमार' यश:पाणिने:' बच्चों तक पाणिनि का यश फैल गया था। सर्वसम्मति से पाणिनि 'प्रभावभूत आचार्य' माने गये।

डॉ. अग्रवाल ने नवीं शती के राजशेखर कृत 'काव्यमीमांसा' के आधार पर पाटलिपुत्र में 'शास्त्रकार परीक्षा' का उल्लेख किया है। राजशेखर ने उस परीक्षा में वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, पिंगल और व्याडि के उत्तीर्ण होकर यश प्राप्त करने का उल्लेख किया है।

"पाणिनि ने अपना ग्रंथ समाप्त करके उसे सम्राट के पास भेजा जिसने उसको बहुत सम्मान दिया।" चीनी यात्री श्यूआन चुवाङ् का उपर्युक्त कथन 'मंजुश्रीमूलकल्प' राजशेखर, सोमदेव और तारानाथ के कथनों से भी प्रमाणित होता है। नन्द और मौर्य-युग में पाटलिपुत्र देश का विद्या-केन्द्र भी था। सिंहली महावंश की 'अत्थपकासनी' टीका में चाणक्य का आरंभिक जीवन बताते हुए लिखा गया है कि वे भी शास्त्रपरीक्षा के उद्देश्य से ही पाटलिपुत्र गये। डॉ. अग्रवाल ने इस सूचना के लिए अपने अध्यापक श्री चरणदासजी चौटर्जी का ऋण स्वीकार किया है। पाटलिपुत्र की इस सभा में चाणक्य की उपस्थिति का कारण इस उद्धरण से ज्ञात होता है। उदाहरण देने के लिए मौर्यकालीन सभाराजामनुष्यपूर्वा-(पाणिनि-2/4/23) और मौर्यकालीन चंद्रगुप्त सभा तथा शुंगकालीन पुष्यमित्र-सभा (भा. 1/1/68 वा. 7) का उल्लेख पतंजलि ने किया है। दियोदार ने लिखा है कि विद्वान् अपनी सेवाओं के लिए बहुमूल्य पुरस्कार और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। मेगस्थने का उल्लेख और भी निश्चित

 ISSN 0976-0849

है– "जो इन सभाओं में किसी ठोस सत्य का प्रतिपादन करता है उसे पुरस्कृत करने के लिए सब प्रकार के करों से मुक्त कर दिया जाता है।"

डॉ. अग्रवाल इसी सन्दर्भ में पतंजलि के एकसूत्र का स्मरण करते हैं– सभासन्नयने भवः साभा सन्नयनः (भा. 1/1/13) पाणिनि के अनुसार सन्नयन का अर्थ है सम्मानन अर्थात् सम्मान करना। सभा में शास्त्र के सफल प्रतिपादन करने वाले विद्वान् का सम्मान भी था।" अष्टाध्यायी शास्त्र में सांगोयांग व्युत्पन होने वाले विद्वानों को एक सहस्त्र सुवर्षमुद्रा दिए जाने की आज्ञा राजा की ओर से हुई थी। इस प्रकार आचार-नियत द्रव्य के लिए पाणिनि में 'धर्म्य' शब्द का प्रयोग क्रिया है और जो इस प्रकार के आचार-नियत (धर्म्य) देय को स्वीकार करते थे व 'हारी' (सम्मान या पुरस्कार द्रव्य ले जाने वाले कहलाते थे (सप्तमी हारिणौ धर्म्येऽहरणेः 6/2/65) इस सूत्र के मूर्धाभिषिक्त उदाहरणों में भाष्यकार ने एक स्थान पर 'वैयाकरण हस्ती' शब्द का उल्लेख किया है, जिससे ज्ञात होता है कि वैयाकरणों को इस प्रकार के रिवाज या आचार से नियत देय के द्रव्य रूप में हाथी मिलता था।

पाणिनि के अवदान पर डॉ. अग्रवाल की टिप्पणी स्मरणीय और मननीय है– "यह पाणिनीय शास्त्र उत्तरोत्तर पुष्यित, फलित और प्रतिमंडित होता हुआ लोक में भरा हुआ है। भारतवर्ष की यह ब्रह्मराशि है। जो इसे यथावत् जानता है वह शब्द विद्या में पारगामी बन जाता है।"

"भारत सावित्री" वासुदेव शरण अग्रवाल की अद्‌भुत पुस्तक है। उसकी भूमिका में वे लिखते हैं, "'भारत सावित्री' यह नाम महाभारत के अंत में आया है। महाभारत के सारांश के लिए स्वयं वेद व्यास की लेखिनी से यह शब्द निकला है। मैंने वहीं से इसे लिया है, जैसे सावित्री वेदों का सार है और वह सरस्वती का पर्याय है, वैसे ही यहाँ भी वाणी के अर्थ में सावित्री शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'भारत सावित्री' के रूप में महाभारत का ही सार लिया गया है। यह सर्वथा वेद व्यास की ही वाणी है।"

महाभारत और रामायण का सारांश चक्रवर्ती राजगोपालाचारी द्वारा अँग्रेजी में इतनी सर्जनात्मक पूर्णता के साथ किया गया है कि मूल लेखन का आनंद मिलता है। ठीक उसी तरह का हिंदी में उन दोनों का प्रस्तुतिकरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा किया गया है। डॉ. अग्रवाल की विनम्रता है कि वे अपने प्रस्तुतीकरण को 'सर्वथा वेदव्यास की ही वाणी' कहते हैं। उनकी वाणी में सर्जनात्मकता का जादू कैसा है, उनके कुछ वाक्यों से अनुमान किया जा सकता है। "क्रमशः घटनाओं ने ऐसा मोड़ लिया कि दोनों पक्ष युद्ध-बिन्दु तक पहुँच हो गये। उस भँवर में कूद पड़ने तक दोनों ओर के नेताओं की मनोवृत्ति का जो विकास हुआ, उसकी स्पष्ट झाँकी हमें विराट पर्व एवं विशेषतः उद्योग पर्व में मिलती है। घटनाओं के इस वेग से बढ़ते हुए विकास में राजा धृतराष्ट्र का व्यक्तित्व सबसे अधिक उभरा हुआ है। वे नियतिवादी दर्शन के अनुयायी थे। एक ओर भाग्य के लेख में उनका

अटल विश्वास था और दूसरी ओर वे अपने पुत्र दुर्योधन के लिए उनके मन में इतना मोह था कि उसके सामने आते ही वे अपनी न्याय बुद्धि खो बैठते थे।"

डॉ. अग्रवाल ने कृष्ण के उदात्त चरित्र और महान् व्यक्तित्व को इन शब्दों में रेखांकित किया है, "भारत-युद्ध की घटनाओं में न्याय और सत्य का आश्रय लेकर उन्होंने जिस प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन किया और कौरवों की सभा में स्वयं जाकर शांति का प्रस्ताव रखा, वह अत्यंत प्रभावशाली प्रकरण है।" इसका प्रभाव यह हुआ कि जो कुरुक्षेत्र अति पवित्र था, वह आर्यों के लिए वर्जित समझा जाने लगा। तीर्थयात्रा के निमित केवल मुँह छूने भरके लिए लोग कुरुक्षेत्र में जाते थे किन्तु मन में विश्वास था कि **'आरहा नाम बाह्लीका न तेष्वार्यो द्वपहं वसेत'** (म.भारत, कर्ण-पर्व: 30/43)[7] अर्थात् आरह देश में वाह्लीक के यवन भरे पड़े है, आर्य को वहाँ एक से दो दिन रहना ठीक नहीं। यही बात वर्तमान तीर्थ यात्रा-पर्व में कुरुक्षेत्र की उल्लूखलमेखला यक्षी के मुख से तीर्थयात्रियों के लिए कहलाई गई है, "कुरुक्षेत्र में एक दिन रहकर दूसरी रात मत बसो। यदि रहोगे तो दिन में जो देखा है, रात्रि में ठीक इससे उलटा आचार पाओगे।" (आरण्यक 129/10)

डॉ. अग्रवाल विश्व इतिहास और संस्कृति के गहन अध्येता थे, अत: उन्होंने ग्रीक-इतिहास के साथ रखकर इसे देखा। "यहाँ स्पष्ट रूप से उन रात्रिकालीन मधु-गोष्ठियों (ग्रीक ड्रिंकिंग रेवेल्री) की ओर संकेत किया गया है, जो उस युग के यूनानी जीवन की विशेषता थीं और जिनमें कुछ रहस्य-पूजाओं और नृत्यों के साथ-साथ मधु-पान करते हुए लोग पशुवत् व्यवहार करने लगते थे। दिन में भलेमानसों जैसा जो प्रकाट आचार था, वह रात में बिल्कुल बदल जाता था।"

कुरुक्षेत्र में यमुना के तट पर प्लसावरण तीर्थ और सरस्वती, ओघवती, विनशन, चमसोद्भेद, विष्णुपद और विपाशा जैसे भौगोलिक नाम आते है। लोमश ऋषि के वर्णन के अनुसार सरस्वती उत्तरी राजस्थान की महाभूमि में खो जाती है किंतु ऋषि की दृष्टि समुद्र के साथ सिन्धु के संगम तक और सौराष्ट्र के प्रभास-पट्टन तक चली जाती है। कुरुक्षेत्र के उत्तरपूर्व में विष्णुपद तीर्थ, काँगड़ा प्रदेश में आने वाला विपाशा या व्यास का क्षेत्र और उसके आगे कश्मीर मंडल का वर्णन है। यमुना के पूर्व मानसरोवर की ओर जाने वाले द्वार का उल्लेख है, जिसे 'मेघदूत' में 'क्रौचरन्ध्र' कहा गया है। काली-कर्नाली से अल्मोड़ा होकर लीपूलेख दर्रे से कैलाश की ओर जाने वाला मार्ग यही हो सकता है। हिमालय की तराई से नीचे उतर कर एक पुराना मार्ग सरयू के उत्तर प्राचीन श्रावस्ती होता हुआ उत्तरी विदेह जाता था, उसे नातिक षंड कहा गया है। इतिहास, पुरातत्त्व, धर्म, मिथक, प्राचीन और आधुनिक भूगोल के साथ विश्व की भाषाओं और संस्कृतियों का अगाध ज्ञान डॉ. अग्रवाल के लेखन में बार-बार झलकता है। एक उदाहरण लेते हैं।

"प्राचीन भौगोलिक मान्यता के अनुसार करुक्षेत्र के चार द्वारपाल थे : अरन्तुक, तरन्तुक, मचक्रुक और रामह्रद। पहले तीन को महाभारत में पुलस्त्य-तीर्थयात्रा पर्व में यसेन्द्र कहा गया है। चौथे

 ISSN 0976-0849

रामह्रद के समीप एक अति प्राचीन यक्षी का स्थान बताया गया है। उस यक्षी को पिशाची कहा गया है जो सूचित करता है कि यह कोई आदिम जाति की मांस-भक्षिका देवी थी। उलूखल आभरणों से अलंकृत इस देवी का बौद्ध-ग्रंथ 'महामायूरी' की बृहत् यक्षसूची में 'उलूखलमेखला' नाम है।"

एक ओर तो कुरुक्षेत्र की इतनी महिमा थी कि उसे प्रजापति की उत्तर वेदी और सरस्वती और दृष्द्वती नामक नदियों को देवनदी कहा जाता था तथा इनके बीच के प्रदेश के देवनिर्मित देश ब्रह्मावर्त कहलाते थे और इस देश के आचार को सदाचार समझा जाता था। (मनु. 2/17/18)

जिस क्षेत्र को गीता में 'धर्मक्षेत्र' कहा गया उसकी क्या दुर्गति हुई? "कुरुक्षेत्र उस वाहीक देश का एक भाग था, जहाँ मद्र और शाकल के केन्द्र में वाह्लीक के यवन शासक छा गये थे और आर्यदृष्टि से जो पारम्पर्य क्रमागत सदाचार था, वह सब अस्तव्यस्त हो गया था। यूनानियों के कारण वाहीक को जो अहपट हालत हुई उसी का मानो आँखोंदेखा वर्णन कर्ण-पर्व में कर्ण और शल्य की 'तू-तू-मैं-मैं' के प्रसंग में देखा जाता है। अत्यधिक मधु-पान से सुध-बुध खोकर यवन आक्रान्ता गोष्ठियों में अनाचार करते थे, उसी का नग्नचित्रण कर्ण-पर्व के वर्णन की पृष्ठभूमि में है।"

वास्तु और शिल्प कला के पारखी डॉ. अग्रवाल उस क्षेत्र का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, "गान्धार कला में तक्षशिला आदि स्थानों से सलेट या सेलखड़ी की बनी सैकड़ों गोल तस्तरियाँ ऐसी मिली हैं, जिनपर मुखामेल मधुपान के दृश्य अंकित हैं। चरित्र के आर्य-मानदण्ड के अनुसार यह वर्णाश्रम का एकांत लोप था। अतएव द्वितीय शती ई.पू. में पतंजलि ने आर्यावर्त की भौगोलिक परिभाषा का उल्लेख करते हुए शक-यवनों को आर्यावर्त के बाहर करा। वाहीक देश अर्थात् पंजाब में यवनों का यह उत्पात मिलिन्द या मीनाण्डर के समय में सीमा पर पहुँच गया था।"

डॉ. अग्रवाल किसी भी ग्रंथ पर लिख रहे हों, वे उस समय के शास्त्र, लोक और विरोधी विचारों पर पूरा ध्यान देकर ही अपने निष्कर्ष उपस्थित करते थे। युद्ध को अवश्यम्भावी जानकर कृष्ण शांति-प्रस्ताव का भाषण आंरभ करते हैं, "हे भारत! कौरवों और पाण्डवों में बिना योद्धाओं के नष्ट हुए शांति हो जाए, इसके लिए यत्न करने मैं आया हूँ। हे राजन! आपके हित के लिए और मुझे कुछ कहना नहीं क्योंकि आप सब जानते हैं। आपका कुल आज सब राजकुलों में उत्तम है और उनमें अनेक गुण भी हैं। कृपा, महनुता, क्षमा और सत्य कुरुवंश की विशेषता है। ऐसे महान राजकुल में आपके होते हुए किसी अनुचित बात का होना ठीक नहीं। भीतर और बाहर कहीं भी कुरुओं द्वारा मिथ्याचार हो तो आप ही रोकने वाले हैं। दुर्योधन आदि आपके पुत्र अर्थ और धर्म को पीछे फेंक कर निष्ठुर आचरण पर उतारू हैं। लोभ ने उनके चित्त को ग्रस लिया और उन्होंने अपने बंधुओं के प्रति शिष्ट मर्यादा भी छोड़ दी है। यह भारी विपत्ति कौरवों पर आई है, यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो सब पृथ्वी नष्ट हो जायेगी। आप चाहेंगे तो विपत्ति टल सकेगी। दोनों पक्षों में शांति आपके और मेरे अधीन है; आप कौरवों को रोक लें, मैं पाण्डवों को समझा दूंगा। पुत्रों को आपकी आज्ञा माननी

चाहिए। आपके शासन में रहने में ही उनका हित है। पाण्डव मेरा शासन मानते हैं और मैं उनकी ओर से शांति के लिए प्रयन्त करने आया हूँ। स्वयं कसौटी पर कस कर आप जो उचित हो करें। यदि भरतवंशी मिल कर रहेंगे तो आप ही उनके अधिपति होंगे। आप धर्म और अर्थ की मर्यादा बनाये रखें तो पाण्डव आपके रक्षक हैं। उनके जैसे कठिनाई से होते हैं। महात्मा पाण्डव आपके रक्षक हों तो देवराज भी आपको जीतने का साहस नहीं कर सकता।"[8]

आगे की कथा सर्वविदित है। किसी की बात न मानने वाले पुत्र दुर्योधन को गान्धारी समझाती हैं, "जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं, वह राज्य का भोग नहीं कर सकता। इन्द्रियजय का ही नाम राज्य है। इन्द्रियों को वश में करने से बुद्धि बढ़ती है। इसलिए सबसे पहले अपने को ही देश समझ कर जीतना चाहिए। जैसे महीन जाल में दो मछलियाँ फँसी हों, वैसे ही इस शरीर में रहकर काम-क्रोध बुद्धि को कुतरते रहते हैं।"

'पद्मावत' की संजीवनी व्याख्या

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने पाणिनि-पतंजलि, वैदिक साहित्य और रामायण-महाभारत के साथ जातक कथाओं का अवगाहन करने के बाद अवधी भाषा के अमर महाकाव्य 'पद्मावत' की व्याख्या की है। उस कृति पर अरबी, फारसी, अँग्रेजी, हिन्दी, उर्दू के प्रसिद्ध लेखकों और आलोचकों बहुत कुछ लिखा है किंतु पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. अग्रवाल का लेखन सबसे अलग है। विशद प्राक्कथन के अग्रलिखित कुछ वाक्य इस तथ्य का अनुमान करने के लिए पर्याप्त हैं।

"हिंदी भाषा के प्रबंध काव्यों में जायसीकृत पद्मावत शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। अवधी भाषा का जैसा ठेठ रूप और मर्मस्पर्शी माधुर्य यहाँ मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस कृति में श्रेष्ठतम प्रबंधकाव्यों के अनेक गुण एकत्र प्राप्त हैं। मार्मिक स्थलों की बहुलता, उदात्त ऐतिहासिक कथावस्तु, भाषा की विलक्षण शक्ति, जीवन के गंभीर सर्वांगीण अनुभव, सशक्त दार्शनिक चिंतन– ये इसकी अनेक विशेषताएं हैं। पद्मावत हिंदी साहित्य का जगमगाता हुआ हीरा है। इसके बहुविध पहल और घाटों पर ज्यों-ज्यों मनीषियों की ध्यान रश्मियाँ केन्द्रित होंगी त्यों-त्यों इस लक्षण-सम्पन्न काव्य-रत्न का स्वरूप और भी उज्ज्वल दिखाई देगा। अवधी भाषा के इस उत्तम काव्य में मानव-जीवन के चिरंतन सत्य प्रेमतत्त्व की उत्कृष्ट कल्पना है। पदमावत की प्रेमात्मक निर्मल ज्योति कितनी भास्वर है, उसमें कितना आकर्षण है, इसे शब्दों से प्रकट करना कठिन है। महाकवि ने एक ओर अनुत्तम रूप-ज्योति का निर्माण किया और दूसरी ओर उस ज्योति को मानव के भाग्य में लिखी हुई अनिवार्य करुणा की सौभाग्य-विलोपी छाया के सम्मुख ला रखा। किंतु इस निर्मम कसौटी पर कसे जाने से वह आभा और भी अधिक प्रकाशित हो उठी। कवि के शब्दों में इस प्रेम-कथा का मर्म है– "गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई (652/2) रत्नसेन और पदमावती दोनों के जीवन

 ISSN 0976-0849

को अंतर्यामी सूत्र हैं– प्रेम में जीवन का पूर्ण विकास और नेत्र-जल में उसकी समाप्ति।" ——— "जायसी अत्यंत संवेदनशील कवि थे। संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट की भाँति वे शब्दों में चित्र लिखने के धनी हैं–चित्र भी ऐसे जिनके पीछे अर्थों का अक्षय रस-स्रोत बहता है। अलंकार रस, भाव आदि की काव्य समृद्धि का तो यहाँ कोई अंत ही नहीं मिलता। किंतु कवि की सहज प्रतिभा बाहरी वर्णनों में परिसमाप्त नहीं हो जाती। वह अलंकार-विधान के माध्यम से रस तक पहुँचने में सफल होती है।

जायसी के चित्र-विधान की तुलना डॉ. अग्रवाल राबर्ट ब्राउनिंग का स्मरण करते हुए लिखते हैं, "वह भी कल्पना-जनितचित्र की पूरी रेखाओं को मानस में प्रत्यक्ष करते हुए उतना ही अंश शब्द-परिगृहीत करता था जो उसकी दृष्टि में चित्र की व्यंजना के लिए न्यूनतम आवश्यक होता।"

अवधी भाषा की अद्भुत शक्ति के साथ डॉ. अग्रवाल अपभ्रंश के विकास की परंपरा का पूरा स्वरूप जायसी में दिखाते हैं। "उत्तर भारत की प्रधान साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का विकास चौदहवीं शती में हो चुका था जैसा कि मौलाना दाऊदकृत उसके प्रथम प्रेमकाव्य 'चंदायन' या 'लोर चंदा' (1390 ई.) से ज्ञात होता है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के चहुमुखी उत्तराधिकार को अवधी भाषा ने प्राप्त किया था। उसका संस्कृतनिष्ट रूप पद्मावत से पैंतीस वर्ष बाद लिखे गए 'रामचरित मानस' में उसी प्रकार पूर्णतः प्रकट है जिस प्रकार अपभ्रंश की बहुमुखी अभिव्यक्ति से विकसित हुआ देश्य बोली का रूप जायसी के पद्मावत में।"

जायसी के शब्दों की तुलनात्मक अध्ययन, जायसी की भाषा का व्याकरण मध्यकालीन सांस्कृतिक इतिहास के स्रोत के रूप में जायसी का अध्ययन आदि शोध-विषय सुझाने के साथ डॉ. अग्रवाल प्रबंध काव्यों के इतिहास की दृष्टि से पद्मावत का मूल्यांकन करते हैं, "संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के प्रबंध-काव्यों का जो क्रम-प्राप्त आदर्श रूप विकसित हुआ था उसी के अनुसार जायसी ने पद्मावत का रूप विकसित किया। साथ ही फारसी के प्रेम काव्य या मसनवी कथाओं का और भारतीय प्रेम कथाओं का तो पद्मावत के वास्तु-विधान और रूप-विधान पर बहुत कुछ साक्षात् प्रभाव पड़ा ही। इसके अतिरिक्त सहज यानी सिद्धों की साधना चर्या, नाथ गुरुओं की योग और निर्गुण परम्परा एवं मुसलमानी संतों की सूफी-परम्परा का प्रभाव भी पूरी मात्रा में जायसी पर पड़ा था। उन सब के सारभूत ग्राह्य अंश को स्वीकार करते हुए जायसी ने अपने विशिष्ट आध्यात्मिक दृष्टिकोण का निर्माण किया जिसे उन्होंने स्वयं प्रेम-मार्ग का उदात्त नाम दिया। प्रेम की विभूति से मनुष्य स्वर्गीय बन जाता है- मानुषपेम भएउ वैकुंठी।

प्रेम के प्रभाव से मानव का सीमा-भाव हट जाता है और वह ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है या विश्वात्मक ज्योति से तन्मय हो जाता है। प्रेम-मार्ग में सिद्धि के लिए स्त्री की सत्ता अनिवार्य है। वस्तुतः वही परम ज्योति का रूप है। वही उस महापद्म का मधु है जिसके लिए साधक

का मनरूपी भ्रमर रस-लोभी बनकर पहले सर्वस्व त्याग देता है और फिर सब कुछ प्राप्त करता है। प्रेम की साधना द्वारा दो पृथक तत्त्व एक दूसरे से मिलकर अद्वय स्थिति प्राप्त करते हैं। इसी सम्मिलन को प्राचीन सिद्धों की परिभाषा में युगनद्धभाव, समरस या महासुख कहा गया। प्रेमी-प्रेमिका की नई परिभाषा में प्राचीन शिव-शक्ति, या सूर्य-चन्द्र के वर्णनों को नया रूप प्राप्त हुआ। पुरुष सूर्य और स्त्री चन्द्रमा है। दोनों एक अद्वय तत्त्व के दो रूप हैं। सिद्ध आचार्यों ने सूर्य-चंद्र या सोना-रूपा इन परिभाषाओं का बहुधा उल्लेख किया। बौद्ध आचार्य विनय श्री के एक गीत में आया है– "चंदा आदिज समरस जोए।" गोरखबानी में आया है[9]– **जिहि घर चंदसूर नहिं ऊगे, सिहि घर होसि उजियारा।**

सहज-यान, नाथमत, योग, तांत्रिक या कापालिक मत और निर्गुण संत मठ में भी पिंड और ब्रह्मांड की एकता (यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे) सर्वमान्य थी। डॉ. अग्रवाल वैदिक, प्रतीकवाद या निदान विद्या में उसका मूल मानते हुए कहते हैं कि जायसी को यह परंपरा अपने पूर्ववर्ती साधना-मार्गों से जिस रूप में प्राप्त हुई थी उसे उसी रूप में स्वीकार करके उन्होंने उसके द्वारा अपने काव्य वर्णनों की व्यंजना को बहुत आगे बढ़ाया। फिर भी तंत्र, कुंडलिनी योग, सहजयान, शिव शक्ति अथवा रसायनवाद के समस्त उपकरण, जिन्हें जायसी ने उन्मुक्त भाव से स्वीकार किया था, **उनके निजी साधना-मार्ग में केवल गौण स्थान रखते हैं।** प्रेम-मार्गीय साधना तो मुख्यत: मन की साधना है। काया-साधना उसके साथ आनुषंगिक है। जायसी ने स्पष्टता से बलपूर्वक इस तथ्य का प्रतिपादन किया है। प्रेम के जगत में मन ही चंद्रकांत मणि है। जिस क्षण प्रेमिका रूपी चंद्र की रश्मियों का संयोग उस मणि से हो जाता है, वह सर्वात्मना द्रवित हो उठती है। यही द्रव-भावरत्नसेन की अध्याम-आकुलता है।

दर्शन शास्त्र की दृष्टि से पद्मावत का आकलन करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का निर्णय है कि "दार्शनिक क्षेत्र में जायसी प्रतिबिम्बवाद के अनुयायी हैं। कोई चिदात्मक ज्योति ही यहाँ परमसत्य है। सारे विश्व में वही प्रतिबिम्बित है। वही एक रूप विश्व का प्रत्येक रूप बन गया है। पदमावती उसी चिदात्मक ज्योति का प्रतीक है।" दर्शन के शुष्क मतवाद से जायसी की अरुचि को रेखांकित करते हुए डॉ. अग्रवाल कहते हैं कि 'उनका मन तो वहाँ रमता है जहाँ काव्यमयी सरसता के साथ हृदय उस ज्योति तत्त्व का स्वयं साक्षात्कार करने या उससे तन्मय होने के लिए उमँगता है।"

लोकजीवन के साथ जायसी की तन्मयता को रेखांकित करते हुए डॉ. अग्रवाल लिखते हैं कि "कवि ने भारत-भूमि की मिट्टी के साथ अपने को मिला दिया था। जायसी सच्चे पृथ्वी-पुत्र थे। वे भारतीय जनमानस के कितने सन्निकट थे, इसकी पूरी कल्पना करना कठिन है। गाँव में रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षितिज है, उसी सीमा के भीतर हर्षित स्वर से कवि ने अपने गान का स्वर ऊँचा किया है। जनता

 ISSN 0976-0849

की उक्तियाँ, भावनाएँ और मान्यताएँ मानो स्वयं छंद में बँधकर उनके काव्य में गुंथ गई हैं। डॉ. अग्रवाल यह भी बताते हैं कि तुलसीदास का रामचरित मानस का रचनाकाल बहुलवाद का है। जायसी ने जनता के स्तर से ही रामकथा का संग्रह करके लगभग सौ बार पदमावत में उसका उल्लेख किया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 1925 में 'पद्मावत' पर हुए व्याख्यान से प्रभावित बी.ए. के छात्र वासुदेवशरण अग्रवाल ने उसपर काम शुरु किया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रेरणा से 1951 में पद्मावत की संजीवनी व्याख्या करते समय डॉ. अग्रवाल उसका अर्थगाम्भीर्य समझ सके। "आरम्भ में मुझे अनुमान न था कि पदमावत वस्तुतः कितना क्लिष्ट काव्य है। उसकी ऊपरी सरलता दिखावा मात्र है, उसके भीतर भाव और भाषा की वज्रमयी क्लिष्टता छिपी है। जैसे-जैसे ग्रंथ की प्रगति होती गई जायसी की कवित्व-शक्ति और भाषा-सामर्थ्य के प्रति मेरी आस्था बढ़ती गयी और मुझे शीघ्र विदित हो गया कि इस कवि के वर्णनों में उच्चतम साहित्य की अभिव्यक्ति हुई है। उसके शब्द नाप-तोल कर रखे गए हैं। भरती के लिए कही कुछ कह डालने की प्रवृत्ति का इस काव्य में नितांत अभाव है। कवि की शैली अल्पाक्षर विशिष्ट है। जहाँ चार शब्द करने की संभावना हो वहाँ एक ही शब्द से वह अपना काम चलाना चाहता है। अपने समय के लोकजीवन, साहित्य और संस्कृति के उदार अंतराल में भरे हुए शब्दों तक कवि की अव्याहत गति थी। समकालीन संस्कृति के नाम और रूपों का उसे सूक्ष्मतम परिचय था, श्रेष्ठ प्रबंधकाव्य के सब विधान उसे हस्तामलक थे, अलंकार और काव्य-गुणों पर उसका असामान्य अधिकार था, एवं छंद की लय और स्वर में उसकी पूर्ण निष्ठा थी। इस प्रकार के बहुश्रुत महिमाशाली महाकवि के समक्ष अपने को पाकर मेरा मन एकबार ही उत्साह और आनंद से भर गया। मैंने कवि के प्रति उन्मुक्त कृतज्ञता प्रकट की जिसकी कृपा से हमारी भाषा असामान्य समृद्ध रूप का ऐसा सम्पन्न कोश पद्मावत के रूप में सुरक्षित रह गया है।

ढाई सौ ग्रंथों के यशस्वी रचयिता डॉ. अग्रवाल की शब्द-निष्ठा उनके प्रत्येक प्रकार के लेखन में झलकती है। महाकवियों के काव्य की व्याख्या करते समय उनका दृष्टिकोण क्या रहता है? "हर्षचरित– एक सांस्कृतिक अध्ययन" लिखते समय मेरा जो सांस्कृतिक दृष्टिकोण बना था वही इस टीका में लिखने में भी रहा है। हिंदी के प्रत्येक शब्द की परंपरा अपने अतीत काल से जुड़ी है। कौन शब्द कहाँ से आया है, किस परंपरा के द्वारा कब हिंदी में उसका प्रवेश हुआ है, कहाँ-कहाँ उसका प्रयोग हुआ है, उसके मूल अर्थ का किस प्रकार विकास हुआ है, उसका निश्चित अर्थ क्या है, इत्यादि प्रश्नों की छानबीन के प्रति हिंदी पाठकों का जागरूक होना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण को एक बार अपना लेने से बहुत लाभ होना संभव है। हिंदी के समस्त साहित्य की ऐसी निश्चित जाँच-पड़ताल होनी चाहिए।

डॉ. अग्रवाल की इस अपेक्षा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अतिरिक्त आचार्य हजारी प्रसाद

द्विवेदी ने सबसे अच्छी तरह पूरा किया है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में आचार्य किशोरीदास बाजपेयी और डॉ. रामविलास शर्मा ने पूरा किया। निबंध के क्षेत्र में आचार्य विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय ने किया। हिंदी भाषा साहित्य प्रायः सभी विधाओं में सम्पन्न हो रही है किंतु पाठ-निर्धारण, व्याख्या, भाष्य, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए प्रकाशस्तम्भ के रूप में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल सदैव स्मरणीय रहेंगे।

संदर्भ सूची:

1. अल्टेकर, ए.एस., प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2002 ई.
2. जायसवाल, के.पी., हिन्दू राजतंत्र, भाग-1 एवं 2, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, पंचम संस्करण, 1998 ई.
3. पाणिनी की अष्टाध्यायी, संपादक- डॉ. नरेश झा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2014 ई.
4. पतंजलि महाभाष्य, संपादक- महामहोपाध्याय पं. काशीनाथ वासुदेव अभ्यंकर, डेक्कन एजुकेशनल सोसाइटी, पुणे, 1963 ई.
5. कौटिलीय अर्थशास्त्र, संपादक- वाचस्पति गैरोल, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2002 ई.
6. अग्रवाल, वी.एस., पाणिनी कालीन भारतवर्ष, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1969 ई.
7. महाभारत, संपादक- रामकुमार वर्मा, गीताप्रेस, गोरखपुर, इक्कीसवाँ संस्करण, 2017 ई.
8. मालविकाग्निमित्रम्, संपादक- गिरिजा शंकर शरण, ग्लोबल विजन पब्लिशिंग हाउस, इंदौर, 2004 ई.
9. गोरखबानी, संपादक- रामलाल श्रीवास्तव, गुरु गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, 1994 ई.

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 72–77

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

अज्ञेय की व्यैक्तिक स्वातंत्र्य का अनुशीलनः पाश्चात्य विचारकों के विशेष सन्दर्भ में

अभिषेक कुमार शर्मा*

सारांशः अज्ञेय के विस्तृत और वैविध्यपूर्ण जीवन का अनुभव उनकी रचनाओं में यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। उसकी सभी रचनाओं में समयगत संवेदना के साथ ही रचनाकालीन जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति मिलती है। अज्ञेय ने प्रगतिवाद से असंतुष्ट होकर व्यक्ति स्वतंत्र सिद्धान्त की स्थापना का अभियान 'प्रयोगवाद' के रूप में चलाया। प्रयोगवाद का प्रारम्भ 'तारसप्तक' के प्रकाशन वर्ष 1943 से विभिन्न विचारधारा से होता है। तारसम्पक में विभिन्न विचारधाराओं से संपृक्त सात कवियों को एक साथ रखने का सफल प्रयास किया गया और उन्हें "राहों के अन्वेषी" नाम दिया गया। 'तारसप्तक' के प्रकाशन से हिंदी साहित्य में आधुनिक संवेदना का सूत्रपात माना गया। यहाँ संकलित सात कवि हैं– गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, अज्ञेय। वैचारिक मतभेद के बाद भी इन कवियों को एक साथ लाने का मुख्य उद्देश्य 'प्रयोग' पर आग्रह था। आगे चलकर दूसरा सप्तक (1951), तीसरा सप्तक (1959) और चौथा सप्तक (1979) आया। अज्ञेय के साहित्य में शहरी मध्यवर्गीय समाज के जीवन की व्याप्त जटिलता, अतिशय बौद्धिकता, जड़ता, निराशा, कुंठा, अनास्था आदि को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में अज्ञेय की रचनाओं में प्रतिबिम्बित व्यैक्तिक स्वातंत्र्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

बीजशब्दः अस्तित्व, अस्तित्ववाद, तारसप्तक, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, साहित्यिक स्वतंत्रता

उन्नीसवीं शताब्दी के औद्योगिकीकरण और बीसवीं शताब्दी के आधुनिकीकरण ने 'व्यक्ति-स्वातंत्र्य' के विकास में विशिष्ट महत्व दिया। आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में शाब्दिक स्वतंत्रता ही नहीं, व्यवस्था मूलक 'मुक्ति' की भावना भी मुखरित हुई। सभ्यता के विकास से व्यक्ति के अन्दर अपने अस्तित्व के पहचान की छटपटाहट मुखरित होती गयी, जिसने मानव जाति के पहचान से

*शोधार्थी-हिन्दी विभाग, महाराजा सूरजमल ब्रज विश्वविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान

व्यक्ति के पहचान तक, मानवीय सत्ता से व्यक्ति सत्ता तक, मानवीय अस्तित्व से व्यक्ति अस्तित्व तक जैसे प्रश्नों से जूझते हुए 'स्व' अस्तित्व तक की यात्रा तय की। 'अस्तित्व' इस शब्द से दुनिया का परिचय कीर्केगार्द ने हीगेल के उस दार्शनिक सिद्धान्त के खण्डन से किया जिसमें हीगेल ने मानव जाति के महत्व की यात्रा करते हुए उसे एक गतिशील, विकासमान क्रम के रूप में प्रस्तुत किया। हीगेल ने कहा था कि "प्रत्येक कार्य का पक्ष एवं प्रतिपक्ष होता है और आगे चल कर इन दोनों का समन्वय होता है, जिसके आधार पर सभ्यता का विकास होता है।"[1] कीर्केगार्द ने हीगेल के इस सिद्धान्त की आलोचना की और मानव जाति के स्वत: गतिशील व विकासमान क्रम के स्थल पर व्यक्ति अस्तित्व की स्थापना की– "मानव इतिहास और मानव चिंतन उस विकास क्रम से सम्बद्ध नहीं जिसकी व्याख्या हीगेल ने की थी, वरन् वे सम्बद्ध हैं मनुष्य के व्यक्तिगत निर्णयों से। केवल व्यक्ति सत्य है, उसकी उलझने तथ्यों की छानबीन से या तथ्यों के बारे में हमारे सोंचने विचारने के जो नियम हैं, उनसे दूर नहीं होती। मनुष्य के मन में जो संघर्ष और द्वन्द्व फूटते हैं, जो वेदना वह सहता है, उसी से वह निर्णयों तक पहुंचता है। भय और त्रास से हमें बोध होता है कि अस्तित्व क्या है और मृत्यु क्या हो सकती है? अपराध और पश्चाताप की भावनाओं से हमें ज्ञान होता है कि नैतिक आधार क्या है और हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं।"[2]

अस्तित्ववाद के दोनों रूपों: एक आस्तिकवाद, दूसरा नास्तिक अस्तित्ववाद में, 'व्यक्ति-स्वातंत्र्य' का जो स्वरूप मिलता है, अज्ञेय के यहाँ उसकी एकदम भिन्न दृष्टि मिलती है। अज्ञेय कहते भी हैं– "हिन्दी के जो परिश्रम विरोधी सहजवादी आलोचक मुझको ही अस्तित्ववादी और सात्र का अनुयायी कह देते हैं, उनसे तो यह निवेदन करना भी निष्प्रयोजन है कि सात्र का साहित्यिक अस्तित्ववाद मेरे लिये विशेष आकर्षक कभी नहीं रहा है, यद्यपि मैंने पढ़ना और समझना उसे भी चाहा, जैसा कि अन्य साहित्यिक सिद्धान्तों को समझना चाहता रहा हूँ, क्योंकि मैं समझता था और अब भी मानता हूँ कि यूरोप की वर्तमान मन:स्थिति और संकट को समझने के लिए प्रकृतियों का अध्ययन आवश्यक है।"[3] अस्तित्ववादी चिंतन परम्परा में अनिवार्यतया जिस व्यक्ति स्वातंत्र्य की या अस्तित्व की चर्चा की गयी है अज्ञेय के यहाँ उस स्वातंत्र्य की काफी विस्तृत सीमा देखने को मिलती है– "स्वाधीनता के योद्धा को सबसे पहले एक करूणा सम्पन्न स्वाधीन कर्मी होना होगा, जो दूसरे की स्वाधीनता के लिए अपनी स्वाधीनता का बलिदान करने को सदैव प्रस्तुत है। स्वाधीनता की सच्ची कसौटी 'मैं' नहीं 'ममेतर' है। ममेतर के दर्पण में ही मुझे मेरी अपनी स्मिता का सच्चा प्रतिबिम्ब दिख सकता।"[4]

अस्तित्ववाद में जिस स्वतंत्रता को अनिवार्य माना गया है, व्यक्ति के लिए वह निरा एकांगी व सीमित अर्थ लिये है, किन्तु अज्ञेय जिस स्वतंत्रता के पक्षधर है, वह व्यष्टि से समष्टि की ओर जाने में ही उसकी सार्थकता है; स्वयं की स्वतंत्रता को समाज की स्वतंत्रता के लिए तिरोहित करना। अस्तित्ववाद में अस्तित्व को जानने-पहचानने के लिए मृत्युबोध को आवश्यक माना गया है। मृत्यु

 ISSN 0976-0849

के साथ उसके लगाव के मूल में यह है कि मृत्यु साक्षात्कार के क्षण में ही जीवन की चरम तथा तीव्रतम अनुभूति होती है, जीवन का चरम आग्रह उसी क्षण में प्राप्त होता है। अस्तित्ववाद जहाँ मृत्यु के कारण जीवन को अग्रहीन मानता है, जिससे अस्तित्ववाद की अवधारणा एकांगी व सीमित अर्थ लिये है वहीं नश्वरता को मानवीय सृजनात्मकता के लिए एक प्रेरक सत्य मानते हैं, जिसकी पुष्टि उनके उपन्यास 'अपने-अपने अजनवी' में भी हो जाती है। योके, सेल्मा की मृत्यु पर सोचती है– "वरण की स्वतंत्रता कहीं नहीं है, हम कुछ भी स्वेच्छा से नहीं चुनते हैं। ईश्वर भी शायद स्वेच्छाचारी नहीं है– उसे भी सृष्टि करनी ही है, क्योंकि उन्माद से बचने के लिए सृजन अनिवार्य है। वह सृष्टि नहीं करेगा तो पागल हो जायेगा।"[5] मार्क्सवादी विचार धारा से अज्ञेय का 'व्यक्ति – स्वातंत्र्य' इस अर्थ में भिन्न है कि यद्यपि मार्क्सवाद शोषण मुक्ति की स्थापना का विचार रखता है किन्तु वह विचारधारा के क्षेत्र में स्वायत्तता नहीं स्वीकार करता। कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में– "निन्दा का कारण यह है कि मार्क्सवाद विचारधारा की स्वायत्तता का स्वीकार नहीं करता। वह विचाधारा को हथकड़ी की तरह पहनाकर गुलाम बनाता है।"[6] जबकि अज्ञेय जिस व्यक्ति-स्वातंत्र्य की बात करते हैं वह एक विचार रखता हुआ दूसरे को दूसरा विचार रखने की स्वतंत्रता देता है।

आधुनिक युग में कि जिस तरह अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद का प्रभाव साहित्य, राजनीति, कला, समाज पर पड़ा उसी प्रकार व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज के ही क्रम में मनोविश्लेषण का। मानव-मन की समस्त क्रिया-कलाप, जो यथार्थ या काल्पनिक रूप में प्रतिविम्बित होते हैं सभी मानव-मन:स्थितियों के चित्रण का ही परिणाम होती हैं। मनोविश्लेषणवादी यह मानते हैं कि मानव के भीतर काम एवं अहं की प्रवृत्ति बड़ी व्यापक एवं गहरी होती है। सिगमण्ड फ्रायड ने मनुष्य के सभी क्रिया-कलापों के मूल में काम को माना है। मानव की कुण्ठित और दमित असामाजिक इच्छायें व प्रवृत्तियाँ उदात्त व परिष्कृत होकर कलाओं व संस्कृतियों का निर्माण करती हैं। अज्ञेय ने भी तारसप्तम के कविगत वक्तव्य में कहा– "आधुनिक युग का साधारण व्यष्टि यौन वर्जनाओं का पुंज है। उसके जीवन का एक पक्ष है उसकी सामाजिक छवि की लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ विकसित नहीं हुई और दूसरा पक्ष है स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति जिसके साथ रूढ़ि का विकास असम्भव है। इस विपर्यान का परिणाम है कि आज का मानव का यौन परिकल्नाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं सब दमित और कुण्ठित है।"[7] फ्रायड की ही तरह एडलर भी कहते हैं– "जीवन का एक निश्चित लक्ष्य होता है और अपने को स्थापित करने की प्रवृत्ति होती है। प्राय: प्रत्येक मनुष्य में अपने को स्थापित करने की प्रवृत्ति होती है। प्राय: प्रत्येक मनुष्य में किसी प्रकार की आंगिक, क्रियात्मक या मानसिक कमी पायी जाती है जिसको वह अनुभव करता है और उसमें हीनता ग्रंथि का निर्माण होता है। उसकी पूर्ति का प्रयास मनुष्य विविध प्रकार से करता है।हीन भावना के कारण जब मनुष्य विशेष रूप से इस कमी को पूरा करने की कोशिश करता है तब उसमें श्रेष्ठता की भावना का उदय होता है।[8]

टी.एस. इलियट के निर्वैयक्तिकता के सिद्धान्त को अज्ञेय स्वीकार करते हैं। एक सर्जक रूप में यह उनका आदर्श भी रहा है। इलियट कहते हैं–

The more perfect the artist, the more completely separate in him will be the man who suffers and the mind which creates (कलाकार जितना ही सम्पूर्ण होगा, उतना ही उसके भीतर भोगने वाले प्राणी और रचने वाली मनीषा का पृथकत्व स्पष्ट होगा।)[10] अर्थात् कलाकार से रूढ़ियों और परम्परा का ज्ञान होना चाहिए, जिसका अर्थ परम्परा की गुलामी या परम्परा को ढोना नहीं बल्कि रचनाकार परम्परा से सार ग्रहण कर उसकी सजीव प्रवाहमानता ग्रहण करे। अज्ञेय भी इलियट के इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कहते हैं– "निरी गतानुमतिकता से कला की परम्परा की रक्षा कदापि नहीं होती, क्योंकि जो केवल आवृत्ति है, वह नूतन नहीं है और नूतनता के चमत्कार के बिना वह कला नहीं है।

वाल्मीकि के लिये वेदों, कालिदास के लिए वाल्मीकि को, तुलसीदास के लिए कालिदास को या मैथलीशरण गुप्त के लिए तुलसीदास को वह छोड़ नहीं देता वह इन सबको अपनी प्रवाहमानता के लम्बे सूत्र में पिरोता चलता है।

इसी बात को दूसरी तरह कहें तो कह सकते हैं कि रूढ़ि के परम्परा के विरुद्ध हमारा कोई विद्रोह हो सकता है तो यही कि हम अपने को परम्परा के आगे जोड़ दें। और यह योग किस प्रकार होता है? साहित्यकार के आत्मदान द्वारा"[11]

इलियट का दूसरा सिद्धान्त है– Poetry is not a turring loose of emotion, but an escape from emotion, it is not the expression of personality but an escape from personality (कविता भावों का उन्मोचन नहीं है, बल्कि भावों से मुक्ति है: वह व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं बल्कि व्यक्तित्व से मोक्ष है।)[12] अर्थात् कलाकार जितना बड़ा होगा उतना ही जीवन और रचनाशील मन का अलगाव भी आव्यंतिक होगा। भावना रचनाकार को मुक्त ही करते हैं, न कि बांधते हैं। जिसके लिये अज्ञेय विज्ञान के माध्यम से बात स्पष्ट करते हैं कि प्लेटिनम की उपस्थिति में सल्फर हुई ऑक्साइड और आक्सीजन दोनों सल्फ्यूरिक एसिड में बदल जाते हैं, किन्तु प्लेटिनम पर कोई असर नहीं होता। ठीक यही हाल कवि या रचनाकार की भी होती है। अज्ञेय कहते हैं– "कविता निजी अनुभूति की-अभिव्यक्ति नहीं, वह अनुभूति से मुक्ति है, व्यक्तित्व का प्रकाशन नहीं, व्यक्तित्व से मुक्ति-छुटकारा है।"[13]

अज्ञेय की रचनाओं पर टैनिसन, ब्राउनिंग, लारेंस आदि रचनाकारों का भी प्रभाव है। रमेश चन्द्रशाह लिखते हैं कि "आधुनिक भारतीय साहित्यकार की समस्या का रूप अपने पश्चिमी समान धर्मों की समस्या से काफी कुछ भिन्न था। आत्म-प्रत्यभिज्ञा और सांस्कृतिक अस्मिता के बीच यहाँ उस तरह के मौलिक असामंजस्य और विग्रह की गुंजाइश कम थी: जहाँ समस्या थी उस स्वतंत्र्य

 ISSN 0976-0849

के मूल्य को ही व्यक्ति-चेतना के स्तर पर समाज के वास्तविक आत्म केन्द्रों के भीतर से-पुनःजीवित करने की, उस मूल्य को प्रकाशित और वहन करने वाली सांस्कृतिक अस्मिता को ही उसकी ऐतिहासिक टूट-फूट और स्मृतिभ्रंश से उबारे जो स्वाधीन कर्तव्य के उर्जा-स्रोत सर्जक व्यक्तित्वों के माध्यम से ही सम्भव था। यहाँ आवश्यकता थी पश्चिम की छन्दात्मक चुनौती को आगे बढ़ कर झेलने और अंगीकार करने की, आत्मविश्वास पूर्वक आधुनिक जगत में अपनी भूमिका को पहचानने की। स्पष्ट है सृजन, चिंतन और आत्मालोचन के दुहरे-तिहरे मोर्चे पर सजग अध्यवसाय आवश्यक था। भारतीय साहित्य में अज्ञेय निश्चय ही ऐसे ही अध्यवसायी सांस्कृतिक व्यक्तित्वों में से एक थे।"[14] अज्ञेय सच्चे अर्थों में आधुनिक रचनाकार हैं। उनकी आधुनिकता का सीधा सम्बन्ध समकालीन साहित्यिक परिवेश व इतिहास बोध में है। द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी में 'अस्तित्ववाद' की एक खास तरह की प्रासंगिकता को रेखांकित किया। तेजी से बढ़ रहे औद्योगिकीकरण और प्रौद्योगिकी प्रधान विश्व के भीतर मनुष्य के लघुमानव में तब्दील होने का खतरा उत्पन्न हो गया। इसी में सामाजिक मूल्य, राजनैतिक दबाव, वैचारिक आग्रह और औद्योगिक तंत्र की भयावहता-सब मिले जुले थे। इस परिवेश का दबाव इतने गहन रूप में पड़ा कि धीरे-धीरे वह सामाजिक से वैयक्तिक होता गया। यह वैयक्तिकता इस हद तक बढ़ी कि वह 'व्यक्तिवाद' में रूपांतरित हो गयी। इसी व्यक्तिवाद का गहरा सम्बन्ध व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अवधारणा से है। 'अज्ञेय का साहित्य' इसी 'व्यक्तिक स्वातंत्र्य' की निरन्तर खोज है। अज्ञेय, स्वाधीनता के पक्षधर हैं, तथा उन विरल भारतीय रचनाकारों में से है जो बीसवीं सदी की भारतीय संस्कृति, परम्परा आधुनिकता और आत्मबोध की बुनियादी समस्याओं पर एकाग्र भाव से अपने सृजन और चिंतन को संबोधित करते हैं।

संदर्भः

1. मिश्र, डॉ. भगीरथ, 'पाश्चात्य काव्य शास्त्र', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं.-2006. पृ. 41
2. शर्मा, राम विलास 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.-1997, पृ. 102-108
3. अज्ञेय, 'एक यूरोपीय चिंतक से भेंट' (एक बूँद सहसा उछली): सं.-पालीवाल, कृष्णदत्त, अज्ञेयः रचनावली, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, सं.-2012, पृ. 80-203
4. अज्ञेय, 'मेरी स्वाधीनता, सबकी स्वाधीनता', सं.-निश्चल, ओम, अज्ञेयःआलोचना, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.-2012, पृ. 185-190
5. अज्ञेय, अपने-अपने अजनबीः भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली स. 2006, पृ. 79
6. पालीवाल, कृष्णदत्त, अज्ञेय के सृजन का वैचारिक आधार प्रतिमा प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली, सं.- 2010, पृ. 28
7. अज्ञेय, तारसप्तम भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, सं.-2009, पृ. 223
8. मिश्र, डॉ. भगीरथ, 'पाश्चात्य काव्य शास्त्र', इतिहास सिद्धान्त और वाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं.- 2005, पृ. 101

9. अज्ञेय से साक्षात्कार, सं.- पालीवाल, आर्य प्रकाशन मण्डल, गांधी नगर, नयी दिल्ली, सं.- 2010, पृ. 203
10. अज्ञेय, 'रूढ़ि और मौलिकता' (त्रिशंकु), सं.- पालीवाल, कृष्णदत्त, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.-2012, पृ. 59
11. अज्ञेय, 'रूढ़ि और मौलिकता' (त्रिशंक), सं.-पालीवाल, कृष्णदत्त, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.-2012, पृ. 62-65
12. अज्ञेय, 'रूढ़ि और मौलिकत' (त्रिशंकु), सं.- पालीवाल, कृष्णदत्त, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.-2012, पृ. 65
13. अज्ञेय, रूढ़ि और मौलिकता (त्रिशंकु), सं.- पालीवाल, कृष्णदत्त, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.-2012, पृ. 62-69
14. शाह, रमेश चन्द्र 'अज्ञेय', 'बागार्थ का वैभव', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.-2012, पृ. 119-120

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 78-81

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

अंगकोर वाट: विश्व का विशालतम विष्णु मंदिर

डॉ. मनीषा शरण*

सारांश- अंगकोर वाट कम्बोडिया का एक विशाल विष्णु मन्दिर है जहाँ रामायण, महाभारत एवं पुराणों की घटनाओं के सैकड़ों दृश्य शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। इसका निर्माण सूर्यवर्मन द्वितीय (1113 ई.-1152 ई.) द्वारा किया गया था पर अपने शासन काल में राजा इस भव्य मन्दिर को पूर्ण नहीं करा सका। अंगकोर वाट जावा के बोरोबुदूर से भी ऊँचा है और मध्यकालीन स्थापत्य एवं मूर्ति कला की एक उत्कृष्ट कृति है। इस मन्दिर में रामायण की कथानकों को अत्यन्त मनोरंजक रूप में अंकित किया गया है तथा यह विश्व के आश्चर्यों में गिना जाता है। यह अंगकोर वाट हिन्दू स्थापत्य की दृष्टि से विश्व में सबसे बड़ा है और विश्व के पर्यटक इसे देखने के लिए वर्ष भर यहाँ आते रहते हैं।

अंगकोर वाट मूल रूप में एक वैष्णव मन्दिर था पर बाद में बौद्ध धर्म के अनुयायी राजा जयवर्मन सप्तम (1181 ई. से 1245 ई.) द्वारा इसे बौद्ध धर्म के लिए परिवर्तित करा दिया गया जिसका प्रमाण वहाँ मुख्य देवालय से प्राप्त बुद्ध की लेटी हुयी, बैठी हुयी और खड़ी प्रतिमाओं से मिलता है। मूलतः मुख्य देवालय में विष्णु की मूर्ति विद्यमान थी । प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान जॉर्ज सोदेस ने इसे विष्णु मन्दिर ही कहा है।

बीजशब्दः सूर्यवर्मन द्वितीय, अंगकोर थॉम, अक्षरधाम, जार्ज सोदस, सियमरीप, दिवाकर पंडित

प्राचीन काल की सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप (आधुनिक काल में मयान्मार, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, थाईलैण्ड, मलेशिया, इण्डोनेशिया आदि देश) की संस्कृति हमारी भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित रही है जिसे बृहत्तर भारत कहा जाता था। हमारे पूर्वज अपने साथ भारतीय दर्शन, साहित्य, स्थापत्य आदि शास्त्र वहाँ ले गये। कम्बोडिया (प्राचीन नाम काम्बुज) में भारत, भारतीयता और हिन्दू धर्म का प्रचार ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध भाग से ही भारतीय ब्राह्मण कोण्डिन्य के आगमन से हमें देखने को मिलता है जिसने सर्वप्रथम फूनान राज्य की स्थापना

* 'गुलमोहर', परमेश्वर दयाल पथ, बरमसिया, देवघर-814112 (झारखण्ड), मो. 9934835442

कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रसार प्रारंभ किया और उसके वंश के अन्य शासकों ने इसे उत्तरोत्तर फैलाया जिस कारण यह क्षेत्र एक प्रकार से भारतीय सांस्कृतिक उपनिवेश बन गया।

हम यह जानते है कि भारतीय संस्कृति के विश्वव्यापी प्रचार का कारण भारत का विदेशों से व्यापार तथा प्रतिभाशाली राजाओं एवं ऋषियों की प्रचार वृत्ति ही था। इनमें महर्षि अगस्त्य अग्रगण्य थे। व्यापार के द्वारा धन कमाना एवं देशान्तरों एवं द्वीपान्तरों में भ्रमण करने की लालसा भारत के कुछ उत्साही पुत्रों को वहाँ खींच लाई और वे वहाँ के ही हो गये। ये महान उत्साही व्यक्ति भारतीय थे, कलाओं में दक्ष थे, धर्म पर श्रद्धा रखने वाले थे, देवताओं की पूजा एवं यज्ञ, हवन आदि नित्य कर्मों को करने वाले, धर्म पथ पर चलने वाले और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने वाले थे। इन्होंने अपनी शिक्षा, सभ्यता तथा आदर्श के द्वारा अपनी भारतीय संस्कृति का अमिट छाप वहाँ के निवासियों को दिया। उनका आदर्श था **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग्भवेत्।।** हम बड़े ही गर्व के साथ कह सकते हैं कि जहाँ कहीं भी भारतवासी गये उन्होंने वहाँ के लोगों को आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में प्रगतिशील बनाने का सतत् प्रयत्न किया। विश्व को भारत की देन है– धर्म, दर्शन, ज्ञान और आध्यात्मिकता। भारत को धर्म और संस्कृति के प्रचार के लिए यह आवश्यकता नहीं हुई कि सेना आगे मार्ग निष्कंटक करती चले। भारत ने ज्ञान और दर्शन के प्रचार प्रसार के लिए कभी रक्तपात नहीं किया और यही कारण है कि विश्व समुदाय भारत को बड़े ही गौरव की दृष्टि से देखता है और भविष्य में देखता भी रहेगा।

आज भी कम्बोडिया के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भारत की महान् संस्कृति की झलक हमें देखने को मिलती है।[1] यहाँ के बारहवीं शताब्दी के विशाल अंगकोर वाट मन्दिर को हमारे महान पूर्वजों ने अपनी वैदिक संस्कृति के 50,000 शिल्पकारों की सहायता से रूप दिया था।[2] इस मन्दिर की विशालता और भव्यता को देखकर कोई भी दर्शक संदिग्ध और विस्मित होकर सोचने लगता है कि यह कदाचित् मनुष्य द्वारा नहीं देवता द्वारा बनाया गया है। 400 वर्ग किलोमीटर में फैला यह विश्व का सबसे बड़ा हिन्दू मन्दिर तथा विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक स्मारक है। दिल्ली के अक्षरधाम मन्दिर से यह मन्दिर चार गुणा बड़ा है। मेकौंग नदी के किनारे सियमरीप नगर में यह मन्दिर इतना बड़ा है कि इसके परिसर का चक्कर लगाने और एक-एक भाग में जाने में कम-से-कम छह घंटे लग जाते हैं। इस सम्पूर्ण मन्दिर में कहीं भी चूने के पलस्तर का प्रयोग नहीं हुआ है। ऐसी मान्यता है कि मन्दिर के निर्माण में 100 किलोमीटर की दूरी से लगभग 1 टन से अधिक वजन के पत्थर हाथियों की सहायता से यहाँ लाये गये थे।

अंगकोरवाट की दीवारें जयवर्मन द्वितीय (802-854)[3] ने नौवीं शताब्दी में अपनी राजधानी बनाने के लिए बनवानी प्रारंभ की थी पर अपने जीवन काल में इसे पूर्ण न करा सका। पर काल

 ISSN 0976-0849

क्रमेण आध्यात्मिक चेतना के कारण यह स्थल विशाल मन्दिर में परिवर्तित होता चला गया। इस विशाल विष्णु मन्दिर को सूर्यवर्मन द्वितीय (1113-1150) ने अपने शासन-काल में पूर्ण कराया। फ्रांसीसियों के अधीन कम्बोडिया के आ जाने के कारण फ्रांसीसी यात्री हेनरी मोहट ने सन् 1861 ई. में सियमरीप नगर के जंगलों में घूमते समय उसे एक विशाल चबूतरों की श्रृंखला को देखा था और उसने सरकार की आर्थिक सहायता से उस स्थान का उत्खनन कार्य प्रारंभ किया। समय के परिवर्तन के साथ एक के बाद एक मन्दिर जंगलों से निकलते गये।

शिलाओं पर उत्कीर्ण हिन्दू संस्कृति

अंगकोर वाट मुख्यत: एक विष्णु मन्दिर है और रामायण, महाभारत एवं पुराणों की घटनाओं के सैकड़ों दृश्य यहाँ शिलाओं पर उत्तीर्ण हैं। इनमें अप्सराओं की लगभग 2,000 सुन्दर आकृतियाँ हैं। ऐसा रूप भारत के शायद ही किसी मन्दिर में देखने को मिले। भित्तियों पर फूल-पत्तियों, अप्सराओं तथा देवी-देवताओं का अंकन बड़ी बारीकी से हुआ है। मन्दिर के उत्तरी भाग पर भगवान कृष्ण की लीलाओं का दर्शन है जिनमें माखनचोरी, गोपियों के साथ बाँसुरी-वादन आदि देखने को मिलता है। एक-एक शिला चित्र अपने में कलापूर्ण है और भारतीय सभ्यता की जीती जागती कहानी है। मन्दिर के पूर्वी भाग पर समुद्र मंथन की कथा दिखाई देती है। वायु के वेग में पर्वत का हिलना और देवताओं व असुरों का शेषनाग द्वारा मंथन का दृश्य हृदयस्पर्शी है। यह बड़े ही अचरज की बात है कि एक-एक चित्र को उस काल के कलाकारों ने कितनी सूझ-बूझ से बनाया था।[4]

भगवान शिव द्वारा विषपान का दृश्य दर्शकों को कुछ पल के लिए अध्यात्म की ओर ले जाता है। मन्दिर के दक्षिणी भाग पर कामदेव-प्रेम के देवता की अनेक चित्रावलियाँ हैं। भगवान शिव द्वारा कामदेव को भस्म होते एक स्थान पर दिखलाया गया है। आगे बढ़ने पर भस्मासुर और स्कन्दपुराण की कथाओं का चित्रण है। बहुत से शिला चित्र टूट भी चुके हैं। चित्रों का रूप कलात्मक और बारीकी को लिए हुए है जिसे देखने में दर्शकों को काफी समय लगता है।

पत्थरों को खोदकर जो चित्रावलियाँ बनाई गयी हैं उनमें केवल देवी-देवताओं के ही चित्र नहीं है, बल्कि राजा-रानी और राजकुमार के चित्र भी उत्कीर्ण हैं। पश्चिमी भाग पर राजा सूर्यवर्मन के अन्तिम शरीर के भगवान विष्णु में विलय के चित्र को काफी सावधानी से देखा जा सकता है। इसी दीवार पर सेना के साथ हाथी पर राजा सूर्यवर्मन के चित्रों से उस काल के युद्ध की स्मृति है। कुछ चित्र राजदरबार के भी वहाँ उत्कीर्ण कराये गये हैं जिनमें न्याय करते हुए राजा को दिखलाया गया है। अंगरक्षकों के चित्र में भाले और धनुष-बाण लिये हुए उनके चित्र हैं। उनके समक्ष कुण्डल पहने ब्राह्मण बड़े गर्व के साथ विराजमान हैं।

इस विशाल मन्दिर में भगवान शिव के महान रूपों को भी कई स्थानों पर हम देख सकते

हैं। भारतीय मन्दिरों के समान अंगकोर वाट में एक विशाल बरामदा और पूजा स्थल है जहाँ लोग एकत्रित होकर उपासना करते थे। आज इस बरामदे में विशेष अवसरों पर शासन द्वारा कम्बोज-नृत्य का आयोजन होता है। मन्दिर के पास गोपुरम् भी है जहाँ उस काल में गायें रखी जाती थीं।[5]

ख्मेर शास्त्रीय शैली से प्रभावित यह मन्दिर मिस्र एवं मेक्सिको के स्टेप पिरामिडों की तरह यह सीढ़ी पर उठता गया है। इसका मूल शिखर लगभग 64 मीटर ऊँचा है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी आठों शिखर 54 मीटर ऊँचे हैं। मन्दिर साढ़े तीन किलोमीटर लम्बी पत्थर की दीवार से घिरा हुआ है। उसके बाहर 30 मीटर खुली भूमि और फिर बाहर 190 मीटर चौड़ी खाई है। दूर से यह खाई झील के समान दृष्टिगोचर होती है। मन्दिर के पश्चिम की ओर इस खाई को पार करने के लिए 36 फीट चौड़ा एक पुल बना हुआ है। पुल के पार मन्दिर में प्रवेश के लिए एक विशाल द्वार निर्मित है जो लगभग 1,000फीट चौड़ा है।

विद्वानों के मतानुसार यह चोल वंश के मन्दिरों से मिलता जुलता है। दक्षिण पश्चिम में स्थित ग्रन्थालय के साथ ही इस मन्दिर में तीन वीथियाँ है जिसमें अन्दर वाली अधिक ऊँचाई पर है। निर्माण के कुछ ही वर्ष पश्चात् चम्पा राज्य ने इस नगर को लूटा। उसके उपरान्त राजा जयवर्मन सप्तम (1181-1215) ने नगर को कुछ किलोमीटर उत्तर में पुनर्स्थापित किया। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में थेरवादी बौद्धों ने इसे अपने नियन्त्रण में ले लिया था इसीलिए बुद्ध मूर्तियाँ भी यहाँ बड़ी संख्या में हैं।

अंगकोर वाट में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो पुरातात्विक खुदाइयाँ हुई हैं उनमें ख्मेरों के धार्मिक विश्वासों, कलाकृतियों और भारतीय परम्पराओं की प्रवासगत परिस्थितियों पर बहुत प्रकाश पड़ा है। कला की दृष्टि से अंगकोर वाट मन्दिर संसार के पर्यटकों के लिए स्वर्ग के समान बन गया है। लाखों पर्यटक प्रतिवर्ष इस भव्य मन्दिर को देखने आते हैं। कम्बोडिया के लिए यह मन्दिर इतना महत्वपूर्ण है कि सन् 1983 ई. में कम्बेडिया के राष्ट्रध्वज पर भी इस मदिर को स्थान दिया गया है। यूनेस्को ने इस मंदिर को विश्वधरोहर माना है।

सन्दर्भ

1. शरण, महेश कुमार, कम्बुज देश का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1995, पृ. 110
2. हमारे महान पूर्वजों का तात्पर्य यहाँ यह है कि कौण्डिन्य के उत्तराधिकारियों ने प्रथम शताब्दी से पाँचवीं शताब्दी तक राजा के पद को सुशोभित किया और इसी प्रकार इस देश के शासक उसके वंशजों के उत्तराधिकारी होते गये। वहाँ के राजाओं के नाम जयवर्मन, सूर्यवर्मन सब भारतीय सन्तान कहे जा सकते हैं।
3. Walker, G. B., Angkor Empire, Imperial Publication, Calcutta, 1955, p. 58
4. Briggs, L.P., The Syncretism of Religions in South East Asia especially in Khmer Empire, Journal American Oriental Society, Vol. 71, 1951, p. 230
5. Macdonald, M, Angkor, Oriental Publication, London, 1958, p. 77

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 82-87

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

वैदिक युग में नारी : ऐतिहासिक विवेचन

डॉ. पद्मजा सिंह*

सार संक्षेप: विश्व की प्राचीनतम सभ्यता एवं संस्कृतियों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अपनी सामाजिक जीवन एवं सांस्कृतिक मूल्यों की विशिष्टता के आधार पर अपना विशिष्ट स्थान रखती है। विश्व समाज के दो प्रमुख इकाई– पुरुष और स्त्री के रूप में वर्गीकरण प्राकृतिक एवं नैसर्गिक है। मानव का पुरुष और स्त्री के रूप ने नैसर्गिक वर्गीकरण कोई विभाजन नहीं है अपितु सृष्टि की रचना और विकास लिए एक शाश्वत सत्य है। यह वर्गीकरण सृष्टि का सौन्दर्य भी है और समाज रचना का मौलिक आधार। प्रकृति ने ही पुरुष और स्त्री को मौलिक विशेषताओं के साथ अलग-अलग बनाया है। तन, मन और भाव के स्तर पर भी पुरुष और नारी का प्राकृतिक वर्गीकरण समझा और देखा जा सकता है। किन्तु मौलिक अन्तर के साथ सृजित नारी और पुरुष का एकात्म और एकीकरण सृष्टि के विकास, समाज और संस्कृति की रचना का अनिवार्य शर्त है।

विश्व सभ्यता के इतिहास में नारी और पुरुष के बीच समन्वय, सामंजस्य, विभेद इत्यादि के साथ कर्त्तव्य और अधिकार की समानता और असमानता पर प्रत्येक समाज में एक चुनौती बनी रही। भौगोलिक इकाइयों के रूप में संगठित समाजों में कहीं पुरुष प्रधान समाज तो कहीं स्त्री प्रधान समाज तो कहीं दोनों का समन्वयपूर्ण समाज बनता और बिगड़ता रहा। भारतीय समाज भी इससे अछूता नहीं रहा। भारतीय समाज में नारियों की स्थिति में उतार-चढ़ाव आता रहा, वैदिक युग से लेकर पूर्वमध्य युग तक भारत के सामाजिक इतिहास में नारियों की स्थिति में अनवरत हो रहे परिवर्तन के साक्ष्य भारत के साहित्यिक स्त्रोतों में भरे पड़े हैं। प्रस्तुत शोधपत्र वैदिक युग में नारियों की स्थिति का ऐतिहासिक गवेषणा की विधि से शोधपूर्ण अध्ययन है।

बीजशब्द: वैदिक युग, दाय, सद्योवधु, हिन्दू, ऋग्वैदिक जन, कुलपा, रत्न हविर्धी, काशकृत्स्नी, स्नुषा, वावाता, ब्रह्मवादिनी, जामि, उत्तर वैदिक युग

भारत वैश्विक क्षितिज पर प्राचीनतम देश एवं जाग्रत राष्ट्र है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का सामाजिक इतिहास का प्राचीनतम स्त्रोत वेद है। वैदिक ग्रन्थों के अनुशीलन एवं उससे सम्बन्धित

*सहायक आचार्य – प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

भारत का विपुल साहित्य के आधार पर प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का मौलिक एवं शोधपूर्ण विवेचन किया जा सकता है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि वैदिक युगीन भारतीय समाज में नारी-पुरुष के बीच समन्वय एवं सामंजस्य के साथ एकात्मपूर्ण जीवन मूल्य विकासत हो रहा था। पुरुष और स्त्री के बीच नैसर्गिक विभेद को छोड़ दें तो पुरुष और स्त्री समान रूप से सामाजिक जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं।

स्त्रियों की दशा में समय-समय पर देश, काल और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होते रहे हैं। भारतीय नारी की सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक इत्यादि की स्थिति में वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। उनके कर्त्तव्य अधिकार में तदनुरूप परिवर्तन और परिवर्द्धन भी होता रहा है। विशेषकर हिन्दू समाज में नारी और पुरुष का भेद आरम्भिक युग में कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। प्राकृतिक और मौलिक विभेद के आलावा मानव निर्मित व्यवस्था के स्तर पर हिन्दू समाज में नारियाँ पुरुषों के समान और कहीं-कहीं पर पुरुषों से श्रेष्ठ देवी स्वरूपा में मानी गयी भारतीय समाज में नारी माँ, पत्नी, बेटी और बहन के विविध रूप में भारतीय समाज में जो सम्मान नारियों को मिला है वह विश्व के अन्य सामाजिक इतिहास में दुर्लभ है। भारतीय चिन्तन में नारी के मातृ रूप की सदैव वन्दना दिखायी देती है। इस दृष्टि से ईश्वर के पश्चात माँ को ही स्थान वहाँ दिया गया है।[1] वेदों से वर्तमान तक, सभी ग्रन्थों में माँ को दिव्य, सर्वश्रेष्ठ तथा पूजनीय स्थान दिया गया है।

वस्तुत: वैदिक युग में समाजार्थिक-सांस्कृतिक स्थिति का ऐतिहासिक विवेचन वैदिक युग के ऐतिहासिक स्रोतों की समीक्षा के आधार पर किया जा सकता है। वैदिक युग के हिन्दू जीवन में नारी समान रूप से आदृत और प्रतिष्ठित दिखाई देती है। शिक्षा, धर्म, संस्कृति एवं सामाजिक विकास में उसका उतना ही योगदान दिखाई देता है जितना पुरुष का। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में उसे ग्रह-साम्राज्ञी कहा गया है।[2] उल्लेखनीय है कि ऋग्वैदिक समाज में परिवार के बजाय 'गृह' शब्द का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।[3] किन्तु परिवार प्रधान के रूप में 'कुलपा' का प्रयोग केवल एक बार हुआ है।[4] ऐसा प्रतीत होता कि ऋग्वैदिक जनों की सबसे छोटी इकाई गृह होती थी जिसमें परिवार के सदस्य एक साथ रहते थे। ऋग्वैदिक परिवार संयुक्त परिवार था जिसमें माता-पिता सहित कम से कम चार पीढ़ियों के सदस्य एक साथ रहते थे।[5] इस युग में, पति और पत्नी दोनों ही गृह के स्वामी होते थे। पति-पत्नी[6], श्वसुर[7], स्वश्रु[8] (सास), स्नुषा[9] (पुत्रवधु), स्वस या जामि[10] (बहन), भ्रातृ[11] जैसे परिवार के सम्बन्ध सूचक शब्द ऋग्वेद में हैं। इस आधार पर कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ऋग्वैदिक युग में परिवार जैसी संस्था का अभ्युदय हो चुका था जहाँ पुरुष और स्त्री में किसी प्रकार का विभेद अथवा ऊँच-नीच की भावना नहीं थी किन्तु युद्ध एवं शारीरिक श्रम के लिए पुरुष अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहा था। इसीलिए संभवत ऋग्वेद में पुत्र प्राप्ति की अतिशय कामना व्यक्त

 ISSN 0976-0849

की गई है। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल में यह उल्लेख मिलता है कि ऐसे पुत्र हों जिनसे शत्रु भय से काँपने लगे।[12] इसी मण्डल में मरुतों से प्रार्थना किया गया है कि वे शत्रुओं को पराजित करने योग्य पुत्र दें।[13] उपर्युक्त आधार पर यह विवेचन करना ठीक नहीं होगा कि ऋग्वैदिक समाज में पुत्र-पुत्रियों के बीच कोई भेद था। इस प्रकार की कामना के पीछे श्रमाधारित युगानुकूल आवश्यकताएँ थी। उल्लेखनीय है कि पैतृक सम्पत्ति पर पुत्र और पुत्री दोनों का समान अधिकार होता था। 'भाग' शब्द के कतिपय प्रयोगों से यह शब्द स्पष्ट होता है कि 'दाय' में पुत्र और पुत्री दोनों समान रूप से भागी थे। ऋग्वेद में कहा गया है कि माता ने अपने पुत्र के लिए ज्येष्ठ भाग रख लिया।[14] अविवाहिता पुत्री का पैतृक धन में भाग का स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[15] ऋग्वेद के आठवें मण्डल में यह कहा गया है कि "जिस प्रकार अपाला के सिर के बाल उसके अपने है उसी प्रकार उसके पिता की भूमि भी उसकी अपनी है।[16] यद्यपि कि इन उल्लेखों को कुछ विद्वान अत्यल्प मानते हुए ऋग्वैदिक सामाजिक व्यवस्था में पुत्र और पुत्री दोनों का 'दाय' में समान भाग स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं किन्तु इन विद्वानों के पास अपने इस अस्वीकृति के पक्ष में कोई ठोस प्रमाण भी नहीं हैं।

ऋग्वैदिक परिवारों के पितृसत्तात्मक अथवा मातृसत्तात्मक होने के विचार पर भी विद्वानों में पूर्ण मतैक्यता नहीं है। विद्वानों का एक बड़ा वर्ग ऋग्वैदिक समाज में परिवार को पितृसत्तात्मक मानता है। किन्तु यह मत भी ऋग्वेद में उल्लिखित अत्यन्त विरल उल्लेखों पर आधारित है जो ऋग्वैदिक जन व्यवस्था के पूर्णतः अनुकूल नहीं प्रतीत होता।

ऋग्वैदिक युगीन समाज में स्त्रियों के पर्याप्त प्रतिष्ठा के प्रमाण हैं। ऋग्वेद में बहुपति विवाह, बहुपत्नी विवाह और बाल विवाह का उल्लेख नहीं मिलता है।[17] स्त्रियों को अपना पति चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। स्त्रियों को अपना पति चुनने की वैसी ही स्वतन्त्रता थी जैसे पतियों को अपनी पत्नी चुनने की।[18] अन्तर्वर्ण विवाह, विधवा विवाह और नियोग प्रथा का प्रचलन दिखाई देता है।[19] उल्लेखनीय है कि बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक जीवन में उसे पत्नी, पुत्री तथा माता के रूप में सम्मान प्राप्त था। धार्मिक कृत्यों, सामाजिक उत्सवों एवं समारोहों इत्यादि में वह पुरुषों के साथ समान आसन ग्रहण करती थी।[20] पत्नी के रूप में स्त्रियाँ घर की साम्राज्ञी होती थी। गृहस्वामिनी और सहधर्मिणी उसके गृहस्थ जीवन की गरिमा व महत्व की परिचायक है। ऋग्वैदिक जनसभा विदथ में स्त्रियों के भाग लेने और उन्हें अपना मत रखने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। यह उल्लेख बताते हैं कि ऋग्वैदिक समाज को पितृसत्तात्मक अथवा मातृसत्तात्मक स्वरूप में देखना उपयुक्त नही है।

उत्तर वैदिक काल के सन्दर्भों से भी यह बात प्रमाणित होती है जहाँ अनेक सन्दर्भ पितृसत्तात्मक सूचक है वहीं अनेक मातृसत्तात्मक। ब्राह्मण ग्रन्थ एवं उपनिषदों में उल्लिखित वैदिक ऋषियों की परम्परा मे 36 वैदिक ऋषियों के नाम मातृ नामान्त रत्न हविंशि संस्कार से सम्बन्धित विभिन्न रानियों में महिषी (अर्थात पटरानी) परिवृक्ति अर्थात परित्यक्ता पत्नी, वावाता अर्थात राजा

की प्रिय पत्नी का सम्मिलित होना भी स्त्रियों के महत्त्व का ही सूचक है। ये उल्लेख ऋग्वेद में स्त्री सत्ता के प्रभूता के ही सूचक है।[21]

ऋग्वैदिक युग में कन्याओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। इस युग की स्त्रियाँ रण कौशल में भी प्रवीण होती थी, पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था उन्हें घूमने-फिरने की पूर्णत: स्वतन्त्रता थी, पुत्र और पुत्रियों के एक समान उपनयन संस्कार होते थे, दोनों को एक समान शिक्षा-दीक्षा एवं यज्ञादि का अधिकार था। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में वैदिक युगीन नारी पुरुषों के समान ही बिना किसी भेदभाव के अध्ययन-अध्यापन करती हुई दिखाई देती हैं। घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा, सिकता, निवावरी ऋग्वेद के मन्त्रों की रचयिता थी। उन्हें यज्ञ करने का भी अधिकार था।[22] श्रमसाध्य कार्य किये जाने के भी उल्लेख मिलते हैं। अपाला अपने पिता के साथ कृषि कार्य में सहयोग करती हुयी दिखाई देती है।[23] स्त्रियाँ सूत कातना, बुनना और वस्त्र बनाना भी जानती थी।[24] उदाहरणार्थ, बुनाई का काम[25], चक्की पीसने का कार्य[26] उल्लेखनीय है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उत्पादन और आर्थिक गतिविधियों में उनकी पूर्ण सहभागिता थी।

ऋग्वैदिक युगीन समाज में नारियों को जो मान-सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वह उत्तरवैदिक युग में भी किञ्चित उतार-चढ़ाव के साथ बनी हुई थी। इस युग तक शिक्षा संस्कार, यज्ञ, सामाजिक-धार्मिक कार्य में स्त्रियों के समान रूप से सहभागी होने के प्रमाण मिलते हैं। पारस्कर गृहसूत्र से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ यज्ञ का सम्पादन किया करती थीं।[27]

उत्तर वैदिक युग में स्त्री, ब्रह्मचर्य में रहकर शिक्षा ग्रहण करती थी। इस युग की स्त्रियाँ मन्त्रों की ज्ञाता और पाण्डित्यपूर्ण होती थीं। उनका उपनपन संस्कार भी किया जाता था।[28] वैदिक युग में छात्राओं के दो वर्ग थे– एक 'सद्योवधु' और दूसरा 'ब्रह्मवादिनी'। सद्योवधु उन अध्ययनरत छात्राओं को कहा जाता था जो विवाह पूर्व तक अध्ययन-अध्यापन करती थी और तत्पश्चात गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर जाती थीं। ब्रह्मवादिनी उन छात्राओं को कहते थे जो सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अध्ययन-अध्यापन में लगी रहती थीं। ये स्त्रियाँ ज्ञान-विज्ञान में पारंगत होती थी, वैदिक मन्त्रों की रचना करती थी, दर्शन, तर्क, मीमांसा साहित्य आदि विविध विषयों की पारंगत होती थी।[29] काशकृत्स्नी ने मीमांसा जैसे क्लिष्ट और गूढ़ विषय पर महत्वपूर्ण पुस्तक की रचना की थी जो बाद में इसी नाम से प्रतिष्ठित हुई। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी विख्यात दार्शनिक थी।[30] जनक की राज सभा की विद्वत गोष्ठी में गार्गी ने अपनी प्रतिभा से याज्ञवल्क्य जैसे महर्षि को स्तब्ध कर दिया था।[31]

उत्तर वैदिक युग में छात्र-छात्राओं का एक साथ अध्ययन प्रचलित था। यह परम्परा पौराणिक युग तक दिखाई देती है। उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि आश्रम में आत्रेयी ने लव एवं कुश के साथ शिक्षा ग्रहण किया था। भूरिवसु और देवराट के साथ कामन्दकी ने गुरुकुल में अध्ययन किया था। इस युग की शिक्षा में स्त्रियाँ आध्यात्मिक एवं व्यवहारिक दोनों प्रकार की शिक्षा ग्रहण करती थीं।

 ISSN 0976-0849

उल्लेखनीय है कि वे नृत्य, संगीत, गान, चित्रकला, ललित कला जैसे विषयों का अध्ययन कर वे इन विषयों में निष्णात होती थीं।[32]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि वैदिक युग विश्व के सामाजिक इतिहास में स्वर्ण युग है। ऋग्वैदिक समाज के समय जब भारतीय संस्कृति अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थी उस समय नारी और पुरुष अभेद अपना समाज स्वरूप ग्रहण कर रहा था। यही तो मातृ शक्ति की, प्रतिष्ठा सर्वोपरि दिखती है। उत्तर वैदिक युग तक भारतीय समाज में नारी अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर चुकी थी। परिवार सत्ता के स्पष्ट स्वरूप ग्रहण करने के साथ भारतीय समाज में नारी माता, पत्नी, पुत्री, बहन के रूप में वह सर्वाधिक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर चुकी थी। यह युग था जब पुत्र-पुत्री अथवा स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं दिखाई देता। भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास में सृजित सामाजिक संरचना भारतीय संस्कृति की वह अद्वितीय विशेषता बनी जिसने वैश्विक सामाजिक-सांस्कृतिक क्षितिज पर भारतीय संस्कृति को सर्वोच्च शिखर प्रदान किया ।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. मित्तल सतीशचन्द्र, 'भारतीय नारीरू अतीत से वर्तमान तक', भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, पृष्ठ-1
2. ऋग्वेद, संपा.- श्री राम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2016 ई., 10.85.46, - सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।
3. मिश्र रमानाथ, 'प्राचीन भारतीय समाज अर्थव्यवस्था एवं धर्म', प्रथम संस्करण 1991, पृष्ठ-10
4. ऋग्वेद, तत्रैव 10.179.2
5. मिश्र रमानाथ, 'प्राचीन भारतीय समाज अर्थव्यवस्था एवं धर्म', प्रथम संस्करण 1991, पृष्ठ-10
6. ऋग्वेद, तत्रैव 4.3.2
7. ऋग्वेद, तत्रैव 1.105.2
8. ऋग्वेद, तत्रैव 10.28.1
9. ऋग्वेद, तत्रैव 10.45.46
10. ऋग्वेद, तत्रैव 10.86.13
11. ऋग्वेद, तत्रैव 6.55.4; 8.101.15
12. ऋग्वेद, तत्रैव 4.3.13; 5.34.4
13. ऋग्वेद, तत्रैव 5.38.1
14. ऋग्वेद, तत्रैव 5.58.4
15. ऋग्वेद, तत्रैव 3.38.5
16. ऋग्वेद, तत्रैव 2.17.7; 7.50.14
17. ऋग्वेद, तत्रैव 8.9.84

18. ऋग्वेद, तत्रैव 10.35.2
19. ऋग्वेद, 9.115.2 – द्रष्टव्य, भगवतशरण उपाध्याय की पुस्तक 'विमेन इन ऋग्वेद'; ए.एस. अल्तेकर कृत 'पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन'
20. पाण्डेय राजेन्द्र, 'भारत का सांस्कृतिक इतिहास', द्वितीय संस्करण 1983, पृष्ठ-40
21. ऋग्वेद, तत्रैव 5.3.2; 5.28.3
22. मिश्र रमानाथ, 'प्राचीन भारतीय समाज अर्थव्यवस्था एवं धर्म', प्रथम संस्करण 1991, पृष्ठ-11, द्रष्टव्य, आर.एस. शर्मा 1977, पृष्ठ-91; सुविरा जायसवाल 1979-80, पृष्ठ 53-55
23. ऋग्वेद, तत्रैव 8.91.1
24. ऋग्वेद, तत्रैव 1.92.3
25. ऋग्वेद, तत्रैव 9.112.3
26. ऋग्वेद, तत्रैव 8.91.5-6
27. ऋग्वेद, तत्रैव 1.2.36; 2.32.4
28. पा.गृ.सू. ..20
29. अथर्ववेद 11.5.18
30. मिश्र जयशंकर, 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास', बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1981 ई., पृष्ठ-379
31. वृहदारण्यक उपनिषद् 2.4; 4.5
32. वृहदारण्यक उपनिषद् 36.1; द्रष्टव्य, मिश्र जयशंकर, 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास', तत्रैव पृष्ठ-389
33. तैत्तिरीय संहिता, 6.1, 6.5; शतपथ ब्राह्मण 14.3.1.35

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 88-93

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप

शिप्रा सिंह*

सारांश: प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त ज्ञानपरक एवं सुनियोजित था, जिसमें मनुष्य के लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। मनुष्य और समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के ही माध्यम से सम्भव माना जाता रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि शास्त्र और विवेक से शिक्षा सम्पन्न होती है और शिक्षा से मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है। शिक्षा से मनुष्य का जीवन समृद्ध और उन्नत होता है। उसकी बुद्धि और प्रज्ञा सुहृद और प्रांजल होती है।[1] कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य से श्रेष्ठ उस स्थिति में होता था जब उसकी बुद्धि और ज्ञान शिक्षा द्वारा तीव्र होती है। इसीलिए विद्याविहीन मनुष्य को पशुवत् कहा गया है। शिक्षा से मनुष्य अपना जीवन सार्थक करता है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की बोध क्षमता विकसित होती है। मनुष्य पथभ्रष्ट होने से बच जाता है तथा सही मार्ग का अनुसरण करके अपना इहलौकिक और पारलौकिक जीवन सुखमय बनाता है।[2] आत्मज्ञान के साथ-साथ जगत् का ज्ञान भी अपेक्षित माना गया है। अतः शिक्षा की सार्थकता इसी में है, कि वह मनुष्य को सन्तुलित और श्रेष्ठ जीवन प्रदान करे। मनुष्य का आत्मिक विकास सांसारिकता से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति गुण-अवगुण को परखने की शक्ति तथा उचित-अनुचित के विश्लेषण की वृत्ति शिक्षा से ही सम्भव रही है।

बीजशब्दः पारलौकिक, प्रांजल, आत्मज्ञान, आध्यात्मिकता, काव्यगोष्ठी, विचारगोष्ठी, विवेकसम्मत, परिष्कृत, वेद, उपनिषद्, मधुपर्क, ऋक्ज्ञान, गरिमामय, धियावसु, चिरसंचित ज्ञान, विद्यागोष्ठी, प्रमाणगोष्ठी, तर्कशास्त्र, मीमांसा, पराविद्या, ज्ञानसागर

प्रस्तावना:

मनुष्य के जीवन में शिक्षा का अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। अज्ञानता अन्धकार के समान है अतः अज्ञानी मनुष्य का जीवन अन्धकारमय है। जो कर्म विद्या, श्रद्धा और योग से संयुक्त होकर किया जाता है, वही प्रबलतर होता है। अतः ज्ञान से ही उसका जीवन आलोकित होता है। ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो समस्त तत्त्वों के मूल को समझने में मनुष्य को सर्वथा समर्थ बनाता है तथा

*शोधार्थी, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

उसे सही कार्यों की ओर प्रवृत्त करता है।[3]

शिक्षा से सिर्फ मनुष्य का ही जीवन शुद्ध, विवेकसम्मत, परिष्कृत और समृद्धवान नहीं होता, बल्कि समाज भी सात्त्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सन्मार्ग पर चलकर विकसित होता है। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, उसके चरित्र का उत्थान, उसके व्यक्तित्व का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्व का निष्पादन और उसके सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन शिक्षा के प्रधान उद्देश्य हैं। शिक्षा और ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्कर्ष होता था। विभिन्न प्रकार के निर्देशों, संयमों और नियमों से मनुष्य का जीवन सुव्यवस्थित होता था, जिससे उसका व्यक्तित्व विकसित होता था। प्राचीन काल में यह माना जाता था, कि शिक्षार्थी में आत्मविश्वास का होना उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का कारण था।[4] शिक्षित और ज्ञानवान होने के कारण व्यक्ति अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को निष्ठापूर्वक निष्पन्न करता था।

शिक्षा:

प्राचीन भारत में धर्म, शिक्षा एवं विद्या एक दूसरे के पर्याय थे। भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जीवन निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को निष्पन्न करने के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण थी। मनुष्य और समाज का उत्कर्ष शिक्षा के द्वारा ही माना जाता था। बालक की सुव्यवस्थित और सुनियोजित शिक्षा का प्रारम्भ ब्रह्मचर्य आश्रम में उपनयन संस्कार के पश्चात् होता था, जिसमें आचार्य ब्रह्मचारी को नये जीवन में दीक्षित करता था जिसे द्वितीय जन्म कहा गया।[5] उपनयन संस्कार के पश्चात् बालक गृह त्यागकर गुरु के सान्निध्य में जाता था तथा यहीं गुरुकुल में रहकर विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करता था।[6] उपनिषदों में 'गुरुकुल' के स्थान पर 'आचार्य कुल' का प्रयोग किया गया है।[7] चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला में चाणक्य के सान्निध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण की थी। कालिदास के ग्रन्थों में भी अनेक ऐसे आश्रमों का उल्लेख मिलता है।[8] बाण ने 'हर्षचरित्' में स्वयं लिखा है कि वह शिक्षा प्राप्ति के निमित्त अनेक वर्षों तक गुरु के आश्रम रहा। मध्यकालीन अनेक लेखकों से विदित होता है कि गुरुकुल की परिपाटी समाज में थी।[9]

शिक्षा में आचार्य का स्थान:

वैदिक युग में आचार्य का स्थान देवता के रूप में अत्यन्त आदरयुक्त, गरिमामय था। आचार्य के व्यक्तित्व और उसके ज्ञान से ही आचार्य कुल का मान था। इसलिए आचार्य का परम विद्वान् और धियावसु होना अपेक्षित था। अध्यापन के कारण वह स्तुत्य था। प्राय: वह अपने चिरसंचित ज्ञान और विद्या से अपने उत्तराधिकारी पुत्र को अवगत करा देता था। अथर्ववेद में उसके लिए विवृत है कि वह संस्कार के समय शिष्य को गर्भ में धारण करता था और तीन रात तक अपने उदर में उसे धारण

 ISSN 0976-0849

करके उसका पोषण करता था तथा चौथे दिन उसको जन्म प्रदान करता था। इसलिए आचार्य की गरिमा जन्म देने वाली माँ से कम नहीं थी।[10]

शिक्षा के अधिकारी:

प्राचीन काल से ही ज्ञान-पिपासु और जिज्ञासु को ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। ऋग्वेद में कहा गया है कि आचार्य जब शिष्य के अध्ययन की अभिरुचि और उसकी वृत्ति का निरीक्षण करता था तब सन्तुष्ट होने के पश्चात् ही उसे शिष्य-परम्परा में गृहीत करता था।[11] कठोपनिषद् में कहा गया है कि नचिकेता की यथोचित परीक्षा लेने के बाद ही यमाचार्य ने उससे कहा, "हे ब्रह्मन्! तुम्हें नमस्कार। तुम नमस्कार योग्य अतिथि होकर भी मेरे घर में तीन रात्रि तक बिना भोजन किये रहे। अतः एक-एक रात्रि के लिए एक-एक करके मुझसे तीन वर माँग लो।" इसके बाद ही यम ने उसे उपदेश दिया था।[12] मत्स्यपुराण में उल्लेख है कि शुक्र जब पूर्णरूपेण कच के शील और स्वभाव से सन्तुष्ट हो गए तब उन्होंने उसे अपना शिष्य स्वीकार किया। छात्र की योग्यता का आधार उसकी विनम्रता, प्रतिभा, इन्द्रियनिग्रह, शील, संयम आदि गुण होते थे।[13]

शिक्षा प्रदान करने के विषय:

प्राचीन काल में छात्रों को वेदों के अतिरिक्त अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। समस्त विषयों का उद्गमस्थल वेद ही माना जाता था। वेद के षड्अंग थे– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। ऋषि साधक के रूप में मन्त्रों के अर्थ एवं वाक् की रचना करता था। मन्त्रों को कण्ठस्थ करने का चलन समाज में था। इसके अतिरिक्त दर्शन, न्याय, महाकाव्य, व्याकरण, ज्योतिष, भाषाविज्ञान आदि अनेक विषय प्रचलित थे।[14] वेद के अध्ययन का आधार संवाद अथवा मौखिक था। अध्ययन करने के लिए छात्र प्रायः गुरु के सान्निध्य में घर से बाहर उन्मुक्त वातावरण में ही वेद का पाठ करते थे। वेदों के अतिरिक्त वैदिक संहिताओं और वेदांगों का अध्ययन भी अपेक्षित था। उपनिषद्-युग में वैदिक संहिताओं, वेदांगों, याज्ञिक विद्याओं आदि के अतिरिक्त पराविद्या और ब्रह्मविद्या का भी अध्ययन किया जाता था। इतिहास, पुराण, व्याकरण, भूत विद्या, क्षात्र विद्या, वाकोवाक्यम्, तर्कशास्त्र, शिक्षा, निरुक्त, छन्द, नक्षत्र विद्या, ज्योतिष, राशि एकायन आदि की शिक्षा दी जाती थी।[15] उपनिषदों में माया, कर्म, पुनर्जन्म, मुक्ति और आत्मा सम्बन्धी अनेक विचार किये गये। पराविद्या शब्द सर्वोच्च ज्ञान या आत्मज्ञान के लिए था।[16] कौटिल्य ने भी अन्वीक्षकी, त्रयी वार्ता और दण्डनीति का उल्लेख किया है।[17] कालिदास ने सांगोपांग वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र आदि चौदह विद्याओं का उल्लेख किया है।[18] दण्डी ने पाठ्य विषयों की सूची इस प्रकार दी है– सभी लिपियाँ, भाषाएँ, वेद, वेदांग, उपवेद, काव्य, नाट्यकला, धर्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष,

तर्कशास्त्र, मीमांसा, राजनीति, संगीत, छन्द, रसशास्त्र, युद्धविद्या, द्यूत, चौर्य विद्या आदि। छात्र प्राय: गुरु के आश्रम में 12-16 वर्ष तक निवास करके विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करता था।

शिक्षा-समाप्ति और समावर्तन:

शिक्षा की समाप्ति पर समारोह आयोजित किया जाता था। यह आयोजन समावर्तन के नाम से जाना जाता था। समावर्तन का अर्थ था गुरु के यहाँ से शिक्षा प्राप्त करके घर लौटना। उस समय ब्रह्मचारी ज्ञानसागर में स्नान करता था। शिक्षा के अन्त में विद्यार्थी के स्नान के कारण उसे स्नातक कहा जाता था। उसी समय ब्रह्मचारी स्नातक को आचार्य द्वारा 'मधुपर्क' प्राप्त होता था। आचार्य उसे स्नेहपूर्वक भावी जीवन में पदार्पण करने के लिए आवाहित करता था।[19]

शास्त्रार्थ और विचारगोष्ठी:

प्राचीन काल से विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ, ज्ञानचर्चाएँ और विद्वत्गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। पूर्ववैदिक युग में बहुधा विद्वत्सभा हुआ करती थी, जिसमें स्त्रियाँ भी ऋक्गान किया करती थीं।[20] जनक की राजसभा में होने वाले शास्त्रार्थ का नेतृत्व याज्ञवल्क्य ने ही किया था। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है, उद्दालक, आरुणि और सौचेया प्राचीनी में ब्रह्म को लेकर शास्त्रार्थ हुआ था। कालान्तर में ये विद्वत्गोष्ठियाँ अनेक विषयों से सम्बन्धित हो गयीं। सम्राटों की राजसभाएँ प्राय: विद्वानों से सज्जित रहा करती थीं। हर्षचरित से विदित होता है कि उन दिनों अनेकानेक विषयों पर चर्चाएँ चलती थीं। ऐसी ज्ञान-चर्चाओं की गोष्ठियों को बाण ने 'विद्यागोष्ठी' कहा है। काव्यगोष्ठियाँ भी आयोजित की जाती थीं, जिनमें प्रबन्धों के विषय और रचना पर विचार किया जाता था। प्रमाणगोष्ठी में सभी विषयों की प्रामाणिकता पर विचार किया जाता था।[21] पूर्ववैदिकयुगीन अरब लेखक अलबेरूनी ने भी विभिन्न विद्वत्गोष्ठियों की चर्चा की है।

सहशिक्षा:

वैदिक युग में सहशिक्षा की प्रथा थी, जिसमें स्त्री-पुरुष समान रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे। स्त्रियों ने पुरुषों की तरह अनेक वैदिक ग्रन्थों के ऋचाओं की रचना भी की थी। उपनिषद् युग में वे पुरुषों की तरह विद्वत्गोष्ठियों में बैठकर पुरुषों से शास्त्रार्थ किया करती थीं। एक साथ वे शिक्षा ग्रहण करती थीं और एक साथ वाद-विवाद में सम्मिलित होती थीं।[22] भवभूति (8वीं सदी) ने सहशिक्षा का उल्लेख किया है। कामन्दकी ने भूरिवरन और देवराट के साथ विद्या ग्रहण की थी। अत्रेयी ने वाल्मीकि आश्रम में लव और कुश के साथ शिक्षा प्राप्त की थी।[23] कालान्तर में आकर जब स्त्री-शिक्षा कम होने लगी तब सहशिक्षा को भी आघात लगा।

 ISSN 0976-0849

निष्कर्षः

प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप धर्ममय था। धर्म और शिक्षा एक दूसरे के पूरक थे। शिक्षा का उद्देश्य मात्र भौतिक आवश्यकता की पूर्ति न होकर संयमित, नियमित एवं आदर्शपूर्ण जीवन की प्राप्ति थी। भोग और कामना ही मानव जीवन की उपलब्धि नहीं अपितु संयम, नियम, आदर्श, आध्यात्मिक चिन्तन भी जीवन का हिस्सा था। मनुष्य के चरित्र के उत्थान में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी। शिक्षा अवधि में ही मनुष्य के आचरण और चरित्र को उन्नत करने का प्रयास किया जाता था। सहिष्णुता और सौहार्द्र, सत्यनिष्ठा और नैतिकता तथा सदाचरण और आदर्श मनुष्य के चरित्रोत्थान के प्रधान कारणभूत तत्त्व थे। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपनी तामसी और पाशविक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखता था तथा सत्य-असत्य में भेद करने में समर्थ होता था। मनुष्य शिक्षित और ज्ञानवान होने के कारण अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को निष्ठापूर्वक सम्पन्न करता था।

संदर्भ ग्रन्थः

1 विष्णु पुराण 6, 5, 6, 1 आगमोत्थं विवेकाच्च छिधा ज्ञानं तदुच्यते।
विष्णु पुराण 1, 19, 41 सा विद्या या विमुक्तये। विद्यान्या शिल्पैनपुण्यम्।

2 छान्दोग्योपनिषद् ड. 1,1,10 उभौ कुरूतौ यश्चैतदेवं वेदयश्च न वेद।

3 ऋग्वेद, संपा.- श्री राम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2006 ई., 1,164,66; शतपथ ब्राह्मण 2,2,2,6; अथर्ववेद 11,5,26

4 विष्णुपुराण पृ. 6,5,62 अन्धं तम इवाज्ञानम्।

6 आश्व.गृ.सू. 1,20,6 देव सवितरेष ते ब्रहमचारी सा मा मृत।

7 हिर. गृ.सू., 1,5,11

8 जातक 6, पृ. 32

9 स्मृतिचन्द्रिका 2, पृ. 195

10 अथर्ववेद, 1,5,3 आचार्य उपनयमानो ब्रहमचारिण क्रणुते गर्भमन्तः।
तं. रात्रीस्तिसु उदेरे बिभर्ति तं. जातुं द्रष्टुमभिमयन्ति देवाः।

11 ऋग्वेद, तत्रैव 10,7,9,1,9,11,2,1

12 कठोपनिषद् 1,1,20,29

13 मत्स्य पुराण 35,19 शीलदेक्षिण्यामाधुर्यैराचारेण दमेन च।

14 अथर्ववेद, 15,1

15 निरूक्त 1,19; 73,6

16 छांदोग्यउपनिषद् 4,2

17 जातक, 1, पृ.212

18 रघुवंश, 5.11

19 तैत्तिरीयोपनिषद् 11

20 ऋग्वेद, तत्रैव 10,71,11

21 हर्षचरित, सर्ग 3

22 उपनिषद: उपनिषद् निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, गीताप्रेस, गोरखपुर।

23 अग्रवाल वासुदेवशरण: पाणिनिकालीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सं. 2012, पृ. 607

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 94-100

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में नाभिकीय शक्ति : एक सुरक्षात्मक उपागम के रूप में

स्मिता सिंह* एवं प्रो. विनोद कुमार सिंह**

सारांशः द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा किये गये परमाणु परीक्षण के उपरांत विश्व एक नये दौर में प्रवेश कर गया जहाँ सुरक्षा नाभिकीय शक्ति से सृजित होने लगी। नाभिकीय शक्ति एक सुरक्षात्मक उपगम के रूप में हमारे आधुनिक विश्व के लिए महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में नाभिकीय शक्ति का प्रयोग विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अपनी सुरक्षा व्यवस्था को और अधिक मजबूत बनाने में किया जा रहा है परंतु यहाँ दूसरा पहलू यह भी है कि जहाँ एक ओर यह सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने में सहायक है तो वहीं दूसरी ओर इसके कुछ गंभीर सुरक्षा खतरे भी है जिससे सजक रहने की आवश्यकता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में नाभिकीय शक्ति का सुरक्षा उपागम के रुप में विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इसमें नाभिकीय शक्ति व सुरक्षा की संकल्पना का अनुशीलन की चेष्ठा की गयी हैं। वर्तमान परिदृश्य में नाभिकीय शक्ति का प्रयोग किस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा को प्राप्त करने में किया जा सकता है। इस विकल्प का अध्ययन एवं मूल्यांकन करने का भी प्रयास करता है। उक्त शोध उद्देश्य हेतु विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग इस शोध पत्र में किया गया है और जिसमें विभिन्न प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग किया गया है।

बीजशब्दः नाभिकीय शक्ति, ऊर्जा स्रोत, ग्रीन हाउस गैस, परमाणु दुर्घटना, नाभिकीय कचरा

प्रस्तावना

नाभिकीय शक्ति आधुनिक वैश्विक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण और सुरक्षात्मक ऊर्जा स्त्रोत के रूप में प्रमुख हो गई है। यह ऊर्जा स्त्रोत अद्वितीय तरीके से मानव सभ्यता के विकास में मदद कर रहा है और सुरक्षा स्तरों को बढ़ा रहा है। नाभिकीय शक्ति का सुरक्षात्मक उपयोग नाभिकीय हथियारों के रूप में दुनियाभर में बढ़ चुका है। यह उपयोग आने वाले संघर्षों के खतरों को कम करने

*शोध छात्रा, **आचार्य – रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

में मदद कर सकता है और साथ ही युद्धीय तंत्रों को सुरक्षित और शांतिपूर्ण बना सकता है।

नाभिकीय ऊर्जा एक अस्पष्ट ऊर्जा स्त्रोत के समृद्धि का भी आशावादी संकेत है। यह बिना अधिक प्रदूषण उत्पन्न किये एक लाभकारी ऊर्जा स्त्रोत प्रदान कर सकता है जिससे हम जलवायु परिवर्तन को कम करने के लिए प्रयासरत हो सकते हैं। हालांकि, नाभिकीय शक्ति का उपयोग आवश्यक है परंतु इसकी चुनौतियों को भी नकारा नहीं जा सकता है। नाभिकीय सुरक्षा, नाभिकीय अपघातों और पर्यावरण सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए तैयार की जानी चाहिए।[1]

नाभिकीय शक्ति एक प्रकार की ऊर्जा है जिसे नाभिकीय अभिक्रिया–नाभिकीय विखंडन तथा नाभिकीय संलयन द्वारा प्राप्त किया जाता है। इस अभिक्रिया द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक या मानव द्वारा निर्मित नाभिकीय रिएक्टर्स का उपयोग किया जाता हैं जिसमें नाभिकीय अभिक्रिया द्वारा ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह ऊर्जा विद्युत शक्ति उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होती है, जो हमारे घरों, उद्योगों और अन्य स्थानों में बिजली उत्पन्न करने में प्रयुक्त होती है। नाभिकीय शक्ति का उपयोग नाभिकीय हथियारों के रूप में भी होता है, जिसे सुरक्षा और रक्षा के लिए उपयोग किया जाता है। नाभिकीय शक्ति एक बहुत ही महत्वपूर्ण ऊर्जा स्त्रोत है, लेकिन इसका उपयोग सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ-साथ सावधानी और जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए, क्योंकि इसके गलत उपयोग के बहुत बड़े खतरे हो सकते हैं।[2]

नाभिकीय शक्ति के उद्भव पर दृष्टिपात किया जाए तो सन् 1919 में परमाणु भौतिकी के पिता के रूप में प्रसिद्ध अर्नेस्ट रदरफोर्ड ने परमाणु विखंडन के माध्यम से सर्वप्रथम नाभिकीय शक्ति से दुनिया को परिचय कराया। इंग्लैंड में उनके दल ने नाइट्रोजन पर रेडियोधर्मी पदार्थ से प्राकृतिक रूप से निकलने वाले अल्फा कण से बमबारी की और अल्फा कण से भी अधिक ऊर्जा युक्त एक प्रोटॉन को उत्सर्जित होते देखा।

जेम्स चैडविक द्वारा 1932 में न्यूट्रॉन की खोज के बाद, परमाणु विखंडन को सर्वप्रथम एनरिको फर्मी ने प्रयोगात्मक रूप से 1934 में रोम में हासिल किया, जब उनके दल ने यूरेनियम पर न्यूट्रॉन से बमबारी की इस प्रकार कई वर्षों तक किए गये अनुसंधान के बाद वैज्ञानिकों ने यह पाया कि अगर विखंडन अभिक्रियाएं अतिरिक्त न्यूट्रॉन छोड़ती हैं तो एक स्व-चालित परमाणु श्रृंखला अभिक्रिया फलित हो सकती है। इस बात ने कई देशों में वैज्ञानिकों को (अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस, जर्मनी और सोवियत संघ सहित) परमाणु विखंडन अनुसंधान के समर्थन के लिए अपनी सरकारों को याचिका देने के लिए प्रेरित किया। इस खोज ने अमेरिका में, जहां फर्मी और शीलार्ड, दोनों ने प्रवास किया था, मानव निर्मित प्रथम रिएक्टर को प्रेरित किया, जो शिकागो पाइल-1 कहलाया और जिसने 2 दिसम्बर 1942 को क्रिटिकलिटी हासिल की। यह कार्य मैनहट्टन प्रोजेक्ट का हिस्सा बन गया, जिसने हैनफोर्ड साईट (पूर्व में हैनफोर्ड शहर, वाशिंगटन) पर विशाल रिएक्टर

 ISSN 0976-0849

बनाए, ताकि प्रथम परमाणु हथियारों में प्रयोग के लिए प्लूटोनियम पैदा किया जा सके, जिन्हें बाद में हिरोशिमा और नागासाकी के शहरों पर इस्तेमाल किया गया।[3]

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह डर कि रिएक्टर अनुसंधान परमाणु हथियारों और प्रौद्योगिकी के तीव्र प्रसार को प्रोत्साहित करेगा और इस डर के साथ संयुक्त कई वैज्ञानिकों की यह सोच कि यह विकास की एक लंबी यात्रा होगी, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई जिसमें सरकार ने रिएक्टर अनुसंधान को कड़े सरकारी नियंत्रण और वर्गीकरण के तहत रखने का प्रयास किया। इसके अलावा, अधिकांश रिएक्टर अनुसंधान, विशुद्ध रूप से सैन्य प्रयोजनों पर केंद्रित थे। एक तत्काल हथियार और विकास की दौड़ तब शुरू हो गई जब अमेरिकी सेना ने जानकारी साझा करने और परमाणु सामग्री को नियंत्रित करने के अपने ही वैज्ञानिक समुदाय की सलाह का पालन करने से इनकार कर दिया।

20 दिसम्बर 1951 को पहली बार एक परमाणु रिएक्टर द्वारा बिजली उत्पन्न की गई, आर्को, आइडहो के नजदीक EBR-I प्रयोगात्मक स्टेशन में, जिसने शुरुआत में 100 kW का उत्पादन किया (आर्को रिएक्टर ही पहला था जिसने 1955 में आंशिक मेल्टडाउन का अनुभव किया)। 1952 में, राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन के लिए पाले आयोग (द प्रेसिडेंट्स मेटिरिअल्स पॉलिसी कमीशन) की एक रिपोर्ट ने परमाणु ऊर्जा का "अपेक्षाकृत निराशावादी" मूल्यांकन किया और "सौर ऊर्जा" के सम्पूर्ण क्षेत्र में आक्रामक अनुसंधान की मांग की। राष्ट्रपति ड्वाइट आइजनहावर द्वारा दिसम्बर 1953 को दिए गए भाषण "शांति के लिए परमाणु" ने परमाणु के उपयोगी दोहन पर बल दिया और परमाणु ऊर्जा के अंतरराष्ट्रीय प्रयोग के लिए अमेरिका को मजबूत सरकारी समर्थन के मार्ग पर आगे बढ़ाया।[4]

नाभिकीय शक्ति के लाभाकारी एवं हानिकारक आयाम

नाभिकीय शक्ति या नाभिकीय ऊर्जा वर्तमान समय की जरूरत है। ऊर्जा आपूर्ति को पूर्ण करने के लिए, यह किसी विकासशील राष्ट्र हो या विकसित राष्ट्र यद्यपि इसका सही इस्तेमाल करे तो यह राष्ट्र के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो सकता है परन्तु सिक्के का दूसरा पहलू यह भी है कि अगर इसका गलत प्रयोग किया गया तो यह मनुष्य जगत के लिए अत्यंत भयावह की स्थिति उत्पन्न कर देगी। इसके कुछ महत्वपूर्ण लाभाकारी एवं हानिकारक आयाम निम्नवत हैं–

नाभिकीय शक्ति के लाभाकारी आयाम :

* **निम्न या अल्प ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन :** नाभिकीय ऊर्जा यंत्र उच्च मात्रा में विद्युत उत्पादन करते है तथा ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन अत्यंत निम्न मात्रा में होता है, जो कि जलवायु परिवर्तन में हो रहे नुकसान को रोकते हैं।
* **विश्वसनीय ऊर्जा स्रोत :** नाभिकीय ऊर्जा एक स्थिर और विश्वसनीय स्रोत प्रदान करती है क्योंकि यह मौसम की स्थिति या ईंधन की उपलब्धता पर निर्भर नहीं है।

* **उच्च ऊर्जा घनत्व :** परमाणु ईंधन में बहुत अधिक ऊर्जा घनत्व होता है, जिसका तात्पर्य है कि परमाणु ईंधन की एक छोटी मात्रा एक विस्तारित अवधि में बड़ी मात्रा में बिजली का उत्पादन कर सकती है।

* **बेस लोड पावर :** परमाणु ऊर्जा संयंत्र लगातार काम कर सकते हैं और बेस लोड बिजली प्रदान करने में उपयुक्त है, जो न्यूनतम मांग को पूरा करने के लिए आवश्यक बिजली की निरंतर आपूर्ति लें।

परमाणु ऊर्जा के हानिकारक या नुकसान देय (खतरनाक) पहलू :

* **परमाणु दुर्घटनाएं :** परमाणु दुर्घटना से जुड़ा सबसे महत्वपूर्ण खतरा चेर्नोबिल और फुकुशिमा दुर्घटना में देखा गया। इन आपदाओं जैसी दुर्घटनाओं की संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता जिसके परमाणु स्वरूप विकिरण की भयावह रिहाई और दीर्घकालिक पर्यावरणीय क्षति हो सकती है।

* **परमाणु प्रसार :** परमाणु ऊर्जा में उपयोग की जाने वाली प्रौद्योगिकी और सामग्रियों को परमाणु हथियारों के उत्पादन के लिए मोड़ा जा सकता है जिससे वैश्विक सुरक्षा जोखिम उत्पन्न हो सकता है। परमाणु हाथियारों का शुरूआती प्रयोग अत्यंत भयावह था जिसे हिरोशिमा और नागासाकी हमले में देखा गया जिसका प्रभाव आज तक है।

* **नाभिकीय कचरा :** परमाणु ऊर्जा रेडियोधर्मी कचरा उत्पन्न करती है जो हजारों वर्षों तक खतरनाक बना रहता है। इस कचरे का दीर्घकालिक भंडारण और निपटान काफी चुनौतियाँ पैदा कर सकता है।

* **उच्च लागत और देरी :** परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का निर्माण और उन्हें बंद करना महंगा और समय लेने वाला हो सकता है क्योंकि नाभिकीय अभिक्रिया को अचानक नही रोका जा सकता है। इसके लागत में वृद्धि सामान्य नहीं होती है। परमाणु ऊर्जा में स्वच्छ और विश्वसनीय ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता है लेकिन इसमें महत्वपूर्ण जोखिम भी हैं। भविष्य के ऊर्जा मिश्रण में इसकी भूमिका खतरों को कम करते हुए इसके लाभों को अधिकतम करने के लिए सावधानीपूर्वक प्रबंधन, तकनीकि प्रगति और कड़े सुरक्षा उपायों पर निर्भर करती है।

नाभिकीय शक्ति एक सुरक्षा उपागम के रूप में :

नाभिकीय शक्ति के विकास के बाद से ही जहां एक ओर विधवंसकारी परिणाम दिए वहीं दूसरी ओर इसने एक राष्ट्र के लिए सुरक्षा की जिम्मेदारी का भी बखूबी निर्वहन किया। 1945 में

 ISSN 0976-0849

जापान के दो प्रमुख शहरों हिरोशिमा एवं नागासाकी पर परमाणु विस्फोट के बाद विश्व में आतंक का संतुलन स्थापित हुआ।[5] राष्ट्रों द्वारा ऐसा सोचा गया था कि परमाणु हथियारों के प्रयोग मात्र से हम जल्द ही युद्ध में विजय प्राप्त कर सकेंगे परंतु ऐसा ना हो सका इतिहास गवाह है कि द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में परमाणु हथियारों के प्रयोग के बाद अब तक कभी भी इसका प्रयोग नहीं किया जा सका है और ना ही एक राष्ट्र इसके प्रयोग के बारे में सोच सका है। 1962 के क्यूबा मिसाइल संकट के दौरान ऐसा देखा गया कि दो परमाणु संपन्न राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस परमाणु युद्ध के काफी निकट पहुंच गए थे परंतु अंततः यह देखा गया कि दोनों राष्ट्रों में से किसी ने भी परमाणु हथियारों के प्रयोग करने के निर्णय तक नहीं पहुंच सके। वर्ष 1998 में भारत और पाकिस्तान दोनों ही राष्ट्रों द्वारा परमाणु शक्ति अर्जित कर लिया गया था। इसके अगले ही वर्ष 1999 में दोनों राष्ट्रों के मध्य कारगिल संघर्ष देखने को मिला जिसमें विद्वानों को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कहीं अंत तक भारत और पाकिस्तान के मध्य परमाणु युद्ध न छिड़ जाए परंतु वहां भी ऐसा ना हो सका और लाहौर समझौता के द्वारा दोनों राष्ट्रों के मध्य शांति स्थापित की गयी।[6] इसके अलावा अगर हम वर्तमान समय की बात कर तो रूस-यूक्रेन युद्ध में भी ऐसा देखा गया जहां रूस के पास परमाणु हथियारों का जखीरा होते हुए भी वह अब तक यूक्रेन पर विजय प्राप्त नहीं कर पाया है और ना ही युद्ध में परमाणु हथियारों का प्रयोग करने की हिम्मत जुटा पाया है। इतिहास के पन्नों को पलटने से यह ज्ञात होता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात ना कभी परमाणु हथियारों का प्रयोग युद्ध में हुआ है और ना ही भविष्य में इसके होने की संभावना है।

परमाणु हथियारों के आगमन से भयादोहन की स्थिति उत्पन्न हो गई है जो सुरक्षा की दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्र द्वारा परमाणु हथियारों का भय दिखाकर अपने राष्ट्रीय हित को साधने की कोशिश करते हैं राष्ट्रीय हित में सबसे प्रमुख हित राष्ट्रीय सुरक्षा का है जिससे कोई भी राष्ट्र समझौता नहीं करना चाहता है।[7]

नाभिकीय शक्ति का उपयोग वर्तमान समय में ज्यादातर विद्युत बनाने में किया जा रहा है इसके अलावा इसका प्रयोग सैन्य और सुरक्षा के क्षेत्र में चोरी छिपे बड़ी मात्रा में किया जा रहा है। यह एक देश को उसके दुश्मनों के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने में मदद करता है और नाभिकीय शक्ति का उपयोग सैन्य के साथ ही राजनीतिक और द्विपक्षीय परिप्रेक्ष्य में भी होता है, जिससे सुरक्षा की गारंटी मिलती है।

ऊर्जा व विकासात्मक कार्य की उद्देश्य के साथ विकसित हुई नाभिकीय शक्ति शक्ति के अन्य पहलू को उजागर होती देर नहीं लगी। अल्मागर्दो में अमेरिका द्वारा किए गए विस्फोट के कुछ ही वर्षों बाद उसने इसका दुरुपयोग जापान के हिरोशिमा व नागासाकी शहरों पर कर दिया और इस तरह नाभिकीय शस्त्र एक उपागम के रूप में वैश्विक रूप से प्रतिष्ठित हो गए। इस शक्ति की प्राप्ति

हेतु अन्य समर्थ राष्ट्रों ने अपने प्रयासों को और अधिक गति व संबल प्रदान करना आरंभ कर दिया जिसमें सोवियत रूस, यू.के., फ्रांस, चीन, भारत, पाकिस्तान एवं उत्तर कोरिया आदि शामिल हैं। सन् 1968 के पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नाभिकीय और गैर नाभिकीय राष्ट्रों के बीच किए गए वर्गीकरण ने विश्व को दो हिस्सों में बांट दिया। ऐसे राष्ट्र जिनके पास नाभिकीय शक्ति नहीं थी उनको नाभिकीय शक्ति संपन्न राष्ट्रों से सहायता हेतु उनकी ओर झुकना पड़ा। इस प्रतिमान का सबसे विशिष्ट पहलू एनपीटी के आगमन से उजागर हुआ जहां राष्ट्रों को नाभिकीय शक्ति के परिपेक्ष में अग्रिम कार्रवाइयों हेतु रोका जाने लगा और इस बात को तय किया गया कि भविष्य हेतु परमाणु शक्ति की क्षमताओं के अप्रसार के विषय में सोचा जाए और अप्रसार शब्द के आते ही यह विध्वंसक नाम की शक्ति सुरक्षा उपागम के रूप में विकसित हो गई। इस सुरक्षा उपागम की प्रतिष्ठित प्रतिष्ठा में लगातार विभिन्न संधियों और समझौते के माध्यम से विभिन्न शान्ति समूहों की स्थापना होती रही और वैश्विक बौद्धिक समूह ने इस पर विभिन्न प्रकार से विचार विमर्श किया जिन्हें अलग-अलग संगठनों, समूह और सौंधियों आदि के रूप में विभिन्न अंतरालों पर कोशिश की गई। इस परिप्रेक्ष्य में सबसे नवीनतम कदम परमाणु हथियारों पर निषेध संधि-2017 है।[8]

भारत के संदर्भ में देखा जाए तो भारत ने आरंभ से ही अपनी परमाणु नीति को स्पष्ट कर दिया था कि वह परमाणु शक्ति की प्राप्ति व विकास को केवल विकासात्मक कार्य हेतु ही प्रयोग करेगा वह शक्ति को कभी विस्फोटक रूप में प्रयोग नहीं करेगा।

विश्लेषण :

वर्तमान समय में यह कहा जा सकता है कि परमाणु हथियारों के आगमन का उद्देश्य युद्ध में विजय प्राप्त करना था। ऐसे हथियारों का प्रयोग आरम्भ में एक शस्त्र के रूप में किया गया था परंतु इतिहास के पन्नों को पलटने से यह ज्ञात होता है कि यह भले ही एक हथियार के रूप में विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था परंतु यह कहीं ना कहीं शान्ति एवं सुरक्षा में भी अपना महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा है। ऐसा देखा गया है कि जिन राष्ट्रों के पास परमाणु हथियार मौजूद है उनसे अन्य कोई भी राष्ट्र युद्ध नहीं करना चाहता अत: सभी राष्ट्र युद्ध से बचने की कोशिश करते हैं जिससे शांति एवं सुरक्षा बनी रहती है।[9]

आरंभ में जब परमाणु हथियार अमेरिका के पास था तब शक्ति का संतुलन अमेरिका के पक्ष में झुका हुआ था। तब ऐसा प्रतीत होता था कि अमेरिका ही सर्वशक्तिमान है और वह अब जो चाहे वह कर सकता है। विश्व में उसी का वर्चस्व है, परंतु जैसे ही सोवियत रूस के द्वारा परमाणु परीक्षण किया गया। वैसे ही शक्ति का संतुलन फिर से बराबर हो गया और विश्व द्विध्रुवीय हो गया। इसके पश्चात अन्य राष्ट्रों जैसे की यू.के., फ्रांस, चीन, भारत, पाकिस्तान एवं उत्तर कोरिया के द्वारा परमाणु

 ISSN 0976-0849

परीक्षण किया गया तत्पश्चात सभी राष्ट्रों के मध्य एक शक्ति का संतुलन स्थापित हो गया जिससे विश्व बहुध्रुवीय हो गया और युद्ध की संभावनाओं को भी कम कर दिया।[10]

उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि नाभिकीय शक्ति के आगमन से राष्ट्रों में सुरक्षा की भावना विकसित हुई है और विश्व पहले से अधिक सुरक्षित महसूस कर रहा है। वहीं भारत के संदर्भ में देखा जाए तो 1998 में भारत ने परमाणु परीक्षण किया, जिसके बाद वह न केवल चीन के साथ शक्ति संतुलन स्थापित किया बल्कि विश्व में भी अपनी शक्तियों का प्रदर्शन किया और राष्ट्रीय सुरक्षा को और अधिक मजबूत किया।

संदर्भ सूची :

1. सुब्रहमण्यम, के., "न्यूक्लियर प्रोलिफिरेशन एण्ड इण्टरनेशनल सिक्योरिटी", इण्टरनेशनल अफेयर्स, नई दिल्ली, 1985, वर्ष 62, अंक 3, पृ. 77
2. गुप्ता, डॉ. परशुराम, "परमाणु निरस्त्रीकरण", लोकहित प्रकाशन, बरेली, 1985, पृ. 102
3. गुप्ता, सुबोध कुमार, "परमाणु शस्त्र व विश्व शांति", राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 93
4. खन्ना, डी.डी., "स्ट्रेटजिक इन्वायरमेंट इन साउथ एशिया ड्यूरिंग द 1980", नया प्रकाश पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1979, पृ. 102
5. सिंह, स्वर्ण, "चीन के नाभिकीय अस्त्र और सिद्धान्त"; एयर कमोडोर जसजीत सिंह द्वारा सम्पादित, "भारतीय परमाणु शस्त्र", प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
6. अजीज, डॉ. महमूद अब्दुल, "न्यूक्लियर प्रोलिफिरेशन एण्ड इण्टरनेशनल सिक्योरिटी", इण्टरनेशनल अफैयर्स, नई दिल्ली, 1978, वर्ष 55, अंक 2, पृ. 39
7. अग्रवाल, एच.ओ., "निरस्त्रीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय विधि", सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1997, पृ. 71
8. भास्कर, सी. उदय, "नाभिकीय परीक्षण और शीतयुद्ध के बाद का विश्व", एयर कोमोडोर जसजीत सिंह द्वारा सम्पादित, "भारतीय परमाणु शस्त्र", प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1999
9. सिंह, डॉ. विनोद कुमार, "नाभिकीय आतंकवाद एवं शस्त्र नियन्त्रण", अग्रवाल, डॉ. प्रशान्त व सिन्हा, डॉ. हर्ष कुमार द्वारा सम्पादित, रक्षार्थ, खण्ड-8, अंक-1, जनवरी, 2010, पृ. 89
10. ऑफिशियल डाक्यूमेन्ट ऑफ एन.पी.टी., रिव्यू कान्फ्रेंस, यू.एन. एण्ड डिसआर्मामेन्ट अफेयर्स, न्यूयार्क, मई, 2005, पृ. 386

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 101-107
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

भारत-बांग्लादेश सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंध : एक अवलोकन

डॉ. ब्रजेश कुमार मिश्र*

सारांश: भारत और बांग्लादेश की साझा ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत रही है। बंगाल के विभाजन के पूर्व बंगाली भूमि कृषि, विपणन, उद्योग, सांस्कृतिक विरासत से आबद्ध थी। ऐसा नहीं है कि विभाजन ने इसमें व्यापक परिवर्तन किया हो। पहले पूर्वी पाकिस्तान और फिर 1971 में बांग्लादेश के विश्व पटल पर उभरने के बाद बांग्लादेश ने भारत के साथ अपने रिश्ते कायम रखे। यद्यपि इस्लामी ताकतों नें जरूर इसमें विघ्न डालने की कोशिश की, फिर भी सांस्कृतिक और सामाजिक सम्बन्धों में कोई बदलाव देखने को नहीं मिला। विशेष रूप से बांग्लादेशी समाज की व्यापक झलक आधुनिक पश्चिम बंगाल में देखने को मिलती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्व और भारत-विभाजन के पश्चात् के बंगाली सामाजिक विन्यास को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही यह भी दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि भारत और बांग्लादेशी समाज में किस प्रकार की समानता और एकरूपता है तथा दोनों देशों के संबंधों को बंगाली समाज ने किस प्रकार से प्रभावित किया है?

बीजशब्द: भारत, बांग्लादेश, सामाजिक विन्यास, मुस्लिम समुदाय, हिन्दू, जाति

भारत एक विस्तृत भू-भाग एवं विशाल जनसंख्या वाला देश है। इसकी ऐतिहासिक परम्परा की जड़े हजारों वर्ष पुरानी हैं। इसके निकटवर्ती-संलग्न पड़ोसी राष्ट्र भारतीय क्षेत्र के अन्तर्गत ही अपनी अलग पहचान बनाये रखने का प्रयत्न कर सकते हैं। भारत का कोई भी पड़ोसी राष्ट्र, जिसके राष्ट्रीय हित भले ही अलग-अलग हों, भारतीय विदेश नीति के उतार चढ़ाव की उपेक्षा नहीं कर सकता। वस्तुतः भारतीय उपमहाद्वीप के राष्ट्र 'भू-राजनीतिक' एवं पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से स्टीफेन जोन्स के शब्दों में 'एकीकृत क्षेत्र' का निर्माण करते हैं।

*सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

 ISSN 0976-0849

भारत की विदेश नीति अपने पड़ोसियों के प्रति सहयोग, मैत्री एवं सदाशयता की रही है। बांग्लादेश भारत का एक ऐसा पड़ोसी राष्ट्र है, जिसकी सीमायें भारतीय राज्यों-पश्चिम बंगाल, मेघालय और त्रिपुरा से जुड़ी हैं। भारत ने सदैव बांग्लादेश के साथ अपने वैदेशिक सम्बन्धों के निर्धारण में अपनी सार्थक सहयोग की नीति का अक्षरशः पालन किया है। दक्षिण एशिया के ये दोनों राष्ट्र ऐतिहासिक दृष्टि से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। दोनों देशों की साझी संस्कृति रही है। इनका सामाजिक परिवेश भी समान है। इतना ही नहीं, दोनों एक दूसरे के अन्तरंग भावनाओं को भातृत्व भाव से अनुभव करते हैं। यही साझेदारी बांग्लादेश के साथ बहुआयामी सम्बन्धों के विभिन्न स्तर के क्रिया-कलापों में झलकती है। उच्च स्तरीय आदान-प्रदान, यात्रायें, बैठकें आदि नियमित रूप से चलती रहती हैं, साथ ही साथ व्यक्ति से व्यक्ति के बीच व्यापक स्तर पर अन्तर क्रिया-कलापों का भी संचालन होता रहता है। बांग्लादेश स्थित भारतीय मिशन प्रतिवर्ष लगभग 5 लाख वीजा प्रदान करता है तथा हजारों की संख्या में बांग्लादेशी छात्र स्वयं के व्यय पर भारत में अध्ययन कर रहे हैं। ये आदान-प्रदान और अन्तर क्रिया-कलाप राजकीय स्तर के क्रिया-कलापों के लिए एक महत्वपूर्ण अनुबन्ध का कार्य करते हैं। बांग्लादेश के साथ भारत की भू-भागीय सीमायें 4000 किलोमीटर के आस-पास हैं, जो भारत के अपने पड़ोसी देशों के साथ की सीमाओं में सबसे लम्बी है।[1]

भारत-बांग्लादेश का सम्बन्ध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और भाषाई विन्यास से आबद्ध है। सामाजिक सम्बन्धों के उद्घाटन में सामाजिक विन्यास अथवा सामाजिक संरचना की पृष्ठभूमि का अवलोकन नितान्त तर्क संगत प्रतीत होता है। सामाजिक संरचना की पृष्ठभूमि रक्त सम्बन्ध, धर्म, अर्थ, राजनीति के साथ ही साथ ऐसे मानदण्डों और मूल्यों पर अवलम्बित है, जो समाज के सदस्यों की सामाजिक भूमिकाओं का निर्धारण करते हैं। सामाजिक संरचना को एक सुव्यवस्थित और सुस्थापित सामाजिक ढांचे के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाओं के मध्य मानकों और पद्धतियों का सम्बन्ध सामाजिक संरचना कहलाती है। वस्तुतः सामाजिक संरचना शब्दावली का समाज विज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग 1920 के दशक में ही आरम्भ हुआ।[2] बांग्ला समाज के सामाजिक विन्यास को इसी आलोक में समझना समीचीन प्रतीत होता है।

बंगाल मूलतः एक जलोढ़ भूमि वाला क्षेत्र रहा है। बड़ी संख्या में नदियों के संजाल के चलते कृषि के लिए यह क्षेत्र समोन्नत रहा है। फलतः इसने यहाँ के लोगों की जीवन-शैली को विशेष तौर पर प्रभावित किया। बांग्ला समाज में एक विशिष्ट भाषा, संस्कृति और लोकाचार के साथ एक समरूप जातीय समूह का गठन आठवीं सदी में हुआ। जातीय रूप से बंगाल मुखतः तीन तत्वों गैर आर्यन, द्रविड़ और आर्य द्वारा गठित मिश्रित नस्लों की निवास-स्थली है। बंगाली सामाजिक संरचना एक कठोर धार्मिक सिद्धांत पर आधारित थी और मुख्यतः भोजन और कपड़े के साथ इसकी कुछ

जातीय प्रतिबन्धों की अपनी अलग विशिष्ट पहचान थी। मुस्लिम आक्रामण के बाद यहाँ मुस्लिम संस्कृति ने पांव पसारा।

ब्रिटिश भारत में बंगाल की सामाजिक संरचना अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए थी। ग्रामीण संस्कृति शेष भारत से भिन्न थी। यहाँ शहरीकरण उस रूप में नहीं हो सका, जिस रूप में इंग्लैंड में था। जाति-बाध्यता, अन्तर्विवाही प्रथा और आततायी आक्रान्ताओं द्वारा किए जाने वाले अनवरत आक्रमणों ने शहरी केन्द्रों को विनष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यहाँ एक समृद्धशाली व्यापारी वर्ग मौजूद था जो सामन्तवाद के विरोध में नहीं था, जैसा यूरोपीय समाज में दिख रहा था। इसी स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए मैक्स वेबर नें भारत में विशेष रूप से राजस्व प्रशासन में विभेदक विकास को प्रीबेन्डलाईजेशन (Prebendalization) कहा है। करदाताओं में जमींदार, तालुकदार, अस्थायी राजस्व ठेकेदार और जागीरदार सम्मिलित थे जिन्हें विशिष्ट राजनीतिक सैन्य कर्तव्यों हेतु अनुदान मिलता था, लेकिन भूमि पर उनका मालिकाना हक नहीं था। जमीदारों को ही मालिकाना हक प्राप्त था और अन्यों से उन्हें किराया प्राप्त करने की छूट थी। बंगाल के सामाजिक संरचना में बदलाव 1793 में लार्ड कार्नवालिस के स्थायी बंदोबस्त अधिनियम से आया। इसने एक अमीर जमीन मालिकों का एक विशाल समूह तैयार किया।[3] जमीदारों का एक नया वर्ग उभरा, जो मुख्यत: हिन्दू व्यापारियों और साहूकार-समूहों से विकसित हुआ। फलत: मौजूदा शासकों और जमीदार वर्ग के मध्य एक दरार पैदा हो गयी। 19वीं सदी के अन्त तक बहुसंख्यक मुस्लिम समुदाय वाले पूर्वी जिलों पर अमीर उच्च जाति के हिन्दुओं ने कब्जा कर लिया। स्थायी बन्दोबस्त प्रणाली ने उपसंघर्ष की प्रक्रिया की शुरुआत की। इसके परिणाम स्वरूप जमीदार वर्ग शीर्ष पर पहुँच गया। कृषक वर्ग की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई।

1947 के बाद पूर्वी पाकिस्तान की सामाजिक और धार्मिक संरचना में व्यापक बदलाव हुआ। हिन्दुओं का पलायन, राज्य द्वारा जमींदारी का अधिग्रहण, शहरीकरण की बढ़ती गति, सरकार पर नियंत्रण रखने वाले कुलीन समूहों की वित्तीय नीति और विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयन जिसका लाभ जनता की तुलना में विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोगों को अधिक मिला। शहरीकरण, व्यावसायिक गतिविधि और औद्योगिक विकास में वृद्धि ने पूर्वी पाकिस्तान की मौजूदा सामाजिक संरचना को व्यापक तौर पर प्रभावित किया।

1947 में भारत से जब पाकिस्तान अलग हुआ तो इस नये राज्य की 55 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या इसके पूर्वी भाग अर्थात् बंगाली क्षेत्र में रहती थी। यह क्षेत्र पश्चिम भाग के वनिस्पत अत्यन्त छोटा था। भू-राजनीतिक, भाषायी, और सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्वी पाकिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान की तुलना में अधिक सहचरी इकाई थी। पूर्वी पाकिस्तान में सामाजिक-आर्थिक संरचना पश्चिमी पाकिस्तान की तुलना में पर्याप्त विकसित अवस्था में थी।

 ISSN 0976-0849

राजनैतिक दृष्टिकोण से भी यह बांग्ला क्षेत्र (पूर्वी पाकिस्तान) विकास की उच्चतर अवस्था में था। अविभाजित बंगाल का यह क्षेत्र उपमहाद्वीप में साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलनों के समय से ही सक्रिय था।[4] ऐसी स्थिति में इस देश के लोग आज भी स्वयं को भारत के करीब पाते हैं क्योंकि इस देश का जन्म भाषायी आधार (बांग्ला भाषा और उर्दू) पर हुआ था।[5] ऐसी स्थिति में दोनों देशों के सामाजिक और सांस्कृतिक रिश्तों को देखना आवश्यक जान पड़ता है।

बांग्लादेशी समाज का विभाजन धर्म के आधार पर हुआ है न कि अर्थ के आधार पर। बंगाली हिन्दुओं में चार वर्णों की व्यवस्था विद्यमान थी। बंगाल में जाति का विभाजन ब्राह्मणों के बीच में था। जो गैर ब्राह्मण थे वे कई उपजातियों से पैदा हुए थे। सामाजिक क्षेत्र में ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊपर था। ब्राह्मणों में भौगोलिक आधार पर बटवारा किया गया था। चूँकि बांग्लादेश तब अस्तित्व में न था तो स्वाभाविक है कि हिन्दुस्तानी समाज की स्थिति यही रही होगी। वस्तुतः भारतीय हिन्दू समाज का प्रारम्भिक विभाजन ऋग्वैदिक मनीषियों द्वारा किया गया। ऋग्वेद में 'ब्राह्मण', 'क्षत्र' और 'विश्' तीन वर्णों का उल्लेख मिलता है।[6] साथ ही पहले मण्डल में 5 वर्णों के मिलने का भी संकेत है। ऋग्वेद के ही 10वें मण्डल के पुरुष सूक्त में आया है कि विराट् पुरूष के मुँह से ब्राह्मण, हाथ से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैर से शूद्र पैदा हुआ। यह विभाजन सर्वाधिक मान्य है।[7]

ऋग्वेद के 9वें मण्डल की एक ऋचा में एक कवि का कथन है, "मैं एक कवि हूँ। मेरे पिता वैद्य हैं। मेरी माता आटा पीसती थीं और हम सभी धन और पशु की कामना करते थे।"[8] लगता है कि जैसे-जैसे वैदिक समाज विकसित होता गया, वैसे-वैसे सामाजिक विभाजन का प्रारूप भी बदलता गया।

गीता में श्री कृष्ण तो समाज को गुण और कर्म के आधार पर बँटा बताते हैं–

"चतुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।"[9]

समाज का विभाजन जिस आधार पर भी हुआ हो वर्तमान में समाज में चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) का ही सिद्धान्त मान्य है।

बंगाली (बांग्लादेशी) हिन्दू समाज में भी इसे स्वीकारा गया है। बांग्लादेश में गैर ब्राह्मणों को तीन कोटियों में बाँटा गया। पहली कोटि में 20 उपजातियाँ थीं। उसमें 'करन' (लेखक), वैद्य, बुनकर, उग्र (योद्धा) आदि आते थे। दूसरी कोटि में 12 उपजातियाँ थीं जिनमें सोनार, धीबर (मत्स्य पालक) प्रमुख थे। तीसरी कोटि में 9 उपजातियाँ थीं। इनमें 'चाण्डाल' और 'चमार' प्रमुख थे। अन्तिम कोटि के लोगों को अछूत माना जाता था। ये व्यवस्थायें वर्तमान समय में भी लागू रही हैं। लेकिन इसमें अधिकांश हिन्दू जातियों को कम करने के निमित्त हिन्दू जाति प्रणाली संरचना को ढीला कर दिया गया।

भारतीय समाज में स्थितियाँ अभी भी यथावत हैं। इ.एम. मकर के अनुसार भारतीय पारम्परिक संस्कृति अपेक्षाकृत कठोर सामाजिक पदानुक्रम द्वारा परिभाषित की गयी है। यहाँ बच्चों को छोटी उम्र में ही उनकी भूमिकाओं और समाज में उनके स्थान को बताया जाता है।[10]

भारत में मुसलमानों के आगमन के बाद भारत के लोगों को एक और धर्म के विषय में जानकारी मिली। बांग्लादेशी समाज में मुसलमानों की आबादी सर्वाधिक है। हलाँकि मुसलमानों में 10वें मण्डल जैसे समाज का विभाजन नहीं मिलता फिर भी मुसलमानों में उपजातियाँ हैं।[11] जेम्स ब्राइस ने मुसलमानों में 8 और गैट ने सिर्फ तीन उपजातियों का दावा किया है। गैट का विश्लेषण सत्य के करीब है जो बांग्लादेशी समाज में विद्यमान है। ये तीन उपजातियाँ हैं–

1. अशरफ (उच्च)
2. अजलफ
3. अरज़ल

भारतीय समाज में मुसलमानों की कई उपजातियाँ हैं। मुसलमानों में अन्तरजातीय विवाह का प्रचलन वहाँ भी है और भारत में भी। हिन्दू समाज में ऐसा विरले ही मिलता है। ऐसी धारणा है कि हिन्दुओं के सबसे निचले स्तर के लोगों ने इस्लाम स्वीकारा।

भारत और बांग्लादेश दोनों ही जगह शहरों में जाति-बन्धन कम है।[12] ग्रामीण समाज का विभाजन इस तरह किया जा सकता है–

1. पूँजीवादी कृषक (मजदूरों से खेती कराते हैं।)
2. अमीर कृषक (खुद भी करते हैं।)
3. मध्यमवर्गीय कृषक (बाजार देखकर खेती करते हैं।)
4. परिधि पर रहने वाले कृषक (भूमि काफी कम होती है।)
5. भूमिहीन (मजदूरी करने को मजबूर होते हैं।)

बांग्लादेशी समाज की 75 प्रतिशत जनसख्या चौथे और पाँचवें वर्ग के अन्तर्गत आती है। बांग्लादेशी समाज में जिनके पास नौकरी नहीं है वे पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। ये गाँव में तमाम तरह के व्यवसाय करते हैं। भारतीय समाज में भी कमोबेश यही स्थिति विद्यमान है।

बांग्लादेशी समाज का पहनावा भी भारतीय समाज जैसा ही है। ग्रामीण औरतें साड़ी पहनती हैं। पुरुष लुंगी और बनियान पहनते हैं। शहरी क्षेत्रों की स्थिति अलग है। दोनों ही जगह के पुरुष पैन्ट-टीशर्ट को तरजीह देते हैं। महिलाएँ साड़ी, समीज, सलवार, स्कर्ट-टाप पहनी हुई देखी जा

 ISSN 0976-0849

सकती हैं। बिन्दी महिलाओं के श्रृंगार का द्योतक है जिसने अब दोनों देशो में फैशन का रूप धारण कर लिया है।

बांग्लादेश और भारत दोनों ही जगह का रहने वाला शहरी अपने-अपने तरीके से जीवन-यापन करता है–

1. उच्च वर्ग क्लब, शॉपिग सेन्टर, रेस्तरां में जाता है।
2. मध्यम वर्ग टी.वी. देखकर अपना काम चलाता है। डांस करता है। पेन्टिंग बनाता है। अंग्रेजी शराब पीता है।
3. निम्न वर्ग कभी-कभी फिल्में देखकर और देशी शराब से ही काम चला लेता है।

बांग्लादेशी भोजन, भारतीय बंगाल जैसे ही होते हैं। चूँकि बांग्लादेश में मुसलमानों की संख्या अधिक है अतः वहाँ के मुख्य त्यौहार रमजान, बकरीद, इदुल फितर, इदुल अजहा, सब-ए-बारात हैं, जो भारतीय मुसलमानों का भी प्रमुख पर्व है। बांग्लादेशी हिन्दू दुर्गा पूजा का पर्व बड़े उल्लास से मनाते हैं।

यथार्थतः भारत और बांग्लादेश दोनों ही राष्ट्रों का सामाजिक जीवन लगभग एक जैसा है। बांग्लादेश की राष्ट्र भाषा बंगाली है जो भारत में भी बोली जाती है। वहाँ पर बौद्ध भी हैं। CHT क्षेत्र में पहले अधिकाधिक मात्रा में बौद्ध थे।[13] सम्प्रति इनकी संख्या कम है। अगर देखा जाये तो बांग्लादेश का सामाजिक जीवन उन भारतीय राज्यों से ज्यादा मिलता है जो उससे सटे हैं।

21 फरवरी को मनाया जाने वाला बांग्लादेशी भाषा दिवस बंगाली सभ्यता का प्रतीक है। 1952 में 'बांग्ला भाषा आन्दोलन' में मारे गये बंगाली युवकों के शोक में यह त्यौहार मनाया जाता है। 'अमार सोमार बांग्ला' बांग्लादेश का राष्ट्रीय गीत है जो पश्चिम बंगाल के लोगों की भावना से जुड़ा हुआ है। पोहिला एक ऐसा त्यौहार है जो दोनों देशों में 14 अप्रैल को कृषि की शुरूआत के पहले दिन के उत्सव के रूप में मनाया जाता है। यह त्यौहार गुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर के गीत, **"एशो है वैशाख, एशो-एशो"** को गाकर मनाया जाता है।

सारतः बांग्लादेश और भारतीय समाज में काफी साम्यता है। सम्प्रति बांग्लादेशी समाज में काफी जटिलता है। बांग्लादेशी मुस्लिम समाज, भारतीय मुस्लिम समाज की तुलना में अत्यधिक कट्टर है। अभी बांग्लादेश में सामाजिक संरचना का विकास उतना नहीं हो सका है जितना भारत में। बांग्लादेश में शिक्षा, गरीबी, भूखमरी भारत की तुलना में अधिक है। वहाँ पर कुल मिलाकर, ढाका, चॅटगाँव और खुलना ही हाइटेक शहरों की श्रेणी में आ सके हैं। अभी भी बांग्लादेशी शहरों का आधुनिकीकरण होना बाकी है। साथ ही अगर यह कहा जाये कि वहाँ समाजीकरण के विकास

की आवश्यकता है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भः

1. नूरानी, ए.जी., इंडो बांग्लादेश डिस्ट्रस्ट, फ्रंटलाइन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001 ई., पृ. 239
2. मेर्टन, आर., सोशल स्ट्रक्चर एण्ड नॉमिनेट, अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू, खण्ड-3, 1938 ई., पृ. 672
3. कीथ, ए.बी., स्पीचेज एण्ड डाक्यूमेन्ट्स ऑफ इण्डियन पॉलिसी 1750-1921 ई., ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1922 ई., पृ. 79
4. ग्रोवर, बी.एल., और यशपाल, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास (6वाँ संस्करण), एस.चंद प्रकाशन कम्पनी, दिल्ली, 2001 ई., पृ. 139
5. पंत, पी. और जैन, एस.पी., अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, मीनाक्षी प्रकाशन, वाराणसी, 1992 ई., पृ. 68
6. ऋग्वेद, 8/25, अनु. श्रीराम शर्मा आचार्य, गायत्री परिवार, वाराणसी, संस्करण 2006 ई., पृ. 135
7. प्रसाद, ओ.पी., प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास, (7वाँ संस्करण), न्यू ऐज इण्टरनेशनल प्रा.लि., कानपुर, 2021 ई., पृ. 331
8. ऋग्वेद, 8/112, तदैव
9. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-4, श्लोक-13, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2001 ई.
10. मकर, ई.एम., ऐन मेटिकन्स गाइड टू डूइंग बिजनेस, एडम्स मीडिया, नई दिल्ली, 2001 ई., पृ. 27
11. भारत की जनगणना, 2011
12. नाहियान, एफ.यू., सोशल स्ट्रक्चर ऑफ बांग्लादेश, रिट्राइव्ड फ्रांम https://www.scribd.com/document/474000572/Social-Structure-of-Bangladesh
13. हजारिका, एस., रिफ्यूजी विदिन, रिफ्यूजी विदाउट, रिट्राइव्ड फ्रांम http://www.south-asia.com/himal/april/chakma.htm

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 108-118

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

भारत-अफगानिस्तान सम्बन्ध का सामरिक मूल्यांकन

डॉ. अमित कुमार उपाध्याय* एवं अमित कुमार**

सारसंक्षेप: "अफगानिस्तान न केवल भूरणनीतिक एवं सामरिक दृष्टि से भी भारत के लिये महत्त्वपूर्ण है बल्कि यह भारत के आर्थिक महाशक्ति बनने के लिए भी आवश्यक है क्योंकि अफगानिस्तान, भारत और मध्य एशिया के मध्य स्थित है जो मध्य एशिया से यूरोप तक भू-मार्ग से सम्पर्क एवं व्यापार की सुविधा उपलब्ध करा सकता है। यह देश रणनीतिक रूप से तेल और गैस से समृद्ध मध्यपूर्व और मध्य एशिया से सीमा साझा करता है जो इसे एक महत्त्वपूर्ण भूस्थानिक स्थिति प्रदान करता है। साथ ही अफगानिस्तान कीमती धातुओं और खनिजों जैसे प्राकृतिक संसाधनों से भी समृद्ध है। यही कारण है कि भारत ने अफगानिस्तान में 3 अरब डॉलर से अधिक की सहायता आधारभूत संरचनाओं के विकास के लिए प्रदान किया है। इसके अलावा अफगानिस्तान में बढ़ते चीनी प्रभाव ने भारत के लिये एक कूटनीतिक चुनौती भी पैदा कर दी है। तालिबान की वापसी, अफगानिस्तान और पाकिस्तान की मौजूदा सुरक्षा स्थिति में परदे के पीछे से हक्कानी नेटवर्क, अलकायदा और ISIS के प्रभाव के कारण बढ़ते आतंकवाद और ड्रग्स की तस्करी जैसे संगठित अपराध ने भारत के लिये सुरक्षा संबंधी चिंता उत्पन्न कर दी है। ऐसे में अफगानिस्तान में सत्ताधारी तालिबान से सम्पर्क बनाते हुए नई दिल्ली को अपने विविध हितों की रक्षा के लिए मजबूत उपस्थिति स्थापित करनी होगी।

बीजशब्द: सामरिक, रणनीतिक, भू-राजनैतिक, आतंकवाद, तालिबान, भू-आबद्ध, कूटनीति

अफगानिस्तान एक भूमि आबद्ध राज्य है तथा अफगानिस्तान में पश्तून, उजबैक, ताजिक एवं हजारा नामक नृजातीय समूह का निवास है। अफगानिस्तान समाज अभी भी कबायली है तथा आर्थिक विकास का अभाव है। स्वतंत्र भारतीय विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई गई तथा अफगानिस्तान के शासक जहीर शाह (1933-1973) ने भी गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई। फलस्वरूप भारत और अफगानिस्तान के मध्य क्षेत्रीय एवं वैश्विक मुद्दों पर मित्रतापूर्ण संबंध बने रहे।

*सहायक आचार्य, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर; **सहायक आचार्य, के.बी. पी.जी. कॉलेज, मीरजापुर

इस काल में अफगानिस्तान एक शांतिप्रिय देश था। यह बिन्दु उल्लेखनीय है कि अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान में मध्य आरम्भ से ही डूरण्ड रेखा को लेकर विवाद कायम था। डूरण्ड रेखा भारत एवं अफगानिस्तान के बीच सीमा विभाजित करने वाली रेखा है, परन्तु भारत के विभाजन के बाद डूरण्ड रेखा पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान के बीच विभाजित रेखा बन गई। अफगानिस्तान के अनुसार पाकिस्तान, एक नया राज्य है, ब्रिटिश साम्राज्य का उत्तराधिकारी नहीं। इसलिए पाकिस्तान और अफगानिस्तान के मध्य सीमा रेखा का पुनर्निर्धारण होना चाहिए।[1]

आरम्भ में अफगानिस्तान में राजतंत्रीय शासन था। वर्ष 1973 में अफगानिस्तान में राजतंत्र समाप्त हो गया तथा मोहम्मद दाऊद नए प्रधानमंत्री बने, जिन्होंने डूरण्ड रेखा के मुद्दे पर आक्रामक दृष्टिकोण अपनाया। वर्ष 1978 में प्रधानमंत्री दाऊद को मॉर्क्सवादी नेता मो. नूर तराकी के द्वारा सत्ता से हटा दिया गया और उन्होंने शासन पर नियंत्रण कर लिया। पाकिस्तान के द्वारा नूर तराकी का समर्थन नहीं किया गया और शीतयुद्ध के दौरान पाकिस्तान, अमेरिका के सैनिक गठबंधन का सदस्य था। इसलिए अफगानिस्तान में पाकिस्तान और अमेरिका के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए सोवियत संघ के द्वारा अफगानिस्तान में सेना भेजी गई, जिसके लिए प्रधानमंत्री मो. नूर तराकी ने सोवियत संघ से अनुरोध किया था। मो. नूर तराकी और मो. आमिन के बीच शासन सत्ता के बीच संघर्ष होने लगा और तराकी के शासन को बचाने के लिए सोवियत संघ ने सैनिक हस्तक्षेप किया।[2]

सोवियत संघ के द्वारा अफगानिस्तान में सैनिक हस्तक्षेप के दौरान भारतीय विदेश नीति के समक्ष जटिल चुनौती उत्पन्न हो गई। अफगानिस्तान, भारत का परंपरागत मित्र रहा है। इसलिए भारत के द्वारा अफगानिस्तान की एकता एवं अखण्डता का समर्थन किया गया, परन्तु भारत के द्वारा सोवियत संघ के सैनिक हस्तक्षेप का विरोध नहीं किया गया क्योंकि अफगानिस्तान में सोवियत संघ की उपस्थिति भारत के हितों के प्रतिकूल नहीं थी। वर्ष 1971 में भारत और सोवियत संघ के बीच मित्रता एवं शांति के समझौते पर हस्ताक्षर हो चुके थे। इसलिए भारत-सोवियत संघ संबंध अत्यधिक मधुर और मित्रतापूर्ण थे।[3]

सोवियत संघ के अफगानिस्तान में सैनिक हस्तक्षेप का मुकाबला करने के लिए अमेरिका के द्वारा पाकिस्तान का प्रयोग फ्रंट लाइन राज्य के रूप में किया गया। पाकिस्तान के तत्कालीन शासक जनरल जिया-उल-हक को अमेरिका के द्वारा बड़ी आर्थिक और सैनिक सहायता प्राप्त हुई तथा पाकिस्तान का समर्थन चीन और सऊदी अरब के द्वारा भी किया गया। पाकिस्तान ने मुजाहिदीनों को प्रशिक्षित करके सोवयित संघ की सेनाओं के विरुद्ध अफगानिस्तान में तैनात किया। इस दौरान सोवियत संघ ने मो. नजीब उल्ला को अफगानिस्तान का राष्ट्रपति बना दिया। इस कदम के बाद अफगानियों के द्वारा सोवियत सेनाओं के विरुद्ध गोरिल्ला युद्ध का प्रयोग किया गया। जब सोवियत संघ की आर्थिक स्थिति बदहाल होने लगी तब वर्ष 1988 के जिनेवा समझौते के द्वारा सोवियत संघ

 ISSN 0976-0849

से सेनाओं को अफगानिस्तान से वापस आने का निर्देश दिया गया, परन्तु अफगानिस्तान में शांति स्थापना नहीं हो सकी।[4]

सोवियत सेनाओं की अफगानिस्तान वापसी के बाद अफगानिस्तान की विभिन्न नृजातीय समूह के बीच आपस में संघर्ष होने लगे और नजीब उल्ला सरकार को शासन से हटा दिया गया। मुजाहिदीनों ने बुरहानुद्दीन रबानी के नेतृत्व में एक अंतरिम सरकार का निर्माण किया। अब्दुल रसीद दोस्तम के द्वारा उत्तरी गठबंधन का नेतृत्व किया गया, जिसे भारत और अन्य देशों के द्वारा समर्थन दिया गया। परिणामस्वरूप मुजाहिदीनों को सफलता प्राप्त हुई और अफगानिस्तान में वर्ष 1996 में तालिबान शासन का निर्माण हुआ।[5]

तालिबान इस्लामी छात्रों का एक राजनीतिक आंदोलन था और ये अफगानिस्तान में इस्लाम के अनुसार शासन व्यवस्था, अर्थव्यवस्था तथा समाज को संचालित करना चाहती थी। तालिबान के द्वारा महिलाओं की शिक्षा का विरोध किया गया तथा महिलाओं के सार्वजनिक जीवन पर भी अनेक प्रतिबंध लगाए गए तथा इनके द्वारा उन महिलाओं को दण्डित किया गया, जो सार्वजनिक रूप से पुरुषों के साथ दिखाई देती थी। तालिबान के प्रभावी होने से अफगानिस्तान में पाकिस्तान का प्रभाव बढ़ गया, क्योंकि तालिबान पाकिस्तान और उसकी खुफिया एजेंसी आई.एस.आई. के द्वारा समर्थित शासन था। तालिबानों के द्वारा कश्मीर में सीमा पर आतंकवाद को बढ़ावा दिया गया और तालिबान सरकार को मान्यता देने वाले दुनिया में केवल तीन राज्यों (पाकिस्तान, सऊदी अरब तथा संयुक्त अरब अमीरात) के द्वारा किया गया। भारत के द्वारा तालिबान सरकार को मान्यता नहीं दी गई। तालिबान के नेता मुल्ला उमर के शासन के दौरान भारत-अफगानिस्तान के बीच सर्वाधिक प्रतिकूल संबंध थे। वर्ष 1999 में इण्डियन एयरलाइंस के विमान आई.सी.-814 को काठमांडू से अपहृत करके कंधार ले जाया गया तथा भारत को मसूद अजहर जैसे आतंकी को रिहा करना पड़ा। इस दौरान तालिबानी नेता मुल्ला उमर और अलकायदा के मुखिया ओसामा बिन लादेन के बीच प्रगाढ़ संबंध बन गए और ओसामा बिन लादेन अफगानिस्तान आ गया और अलकायदा के द्वारा सितम्बर 2001 में अमेरिका के विश्व व्यापार केन्द्र पर आतंकी हमला किया गया।[6]

सितम्बर 2001 में विश्व व्यापार केन्द्र पर आतंकी हमले के पश्चात् अमेरिका ने तालिबान के विरुद्ध आपरेशन इनड्यूरिंग फ्रीडम आरम्भ किया, जिसका समर्थन नाटो और भारत ने भी किया। अमेरिका के द्वारा गठबंधन सेनाओं के साथ मिलकर कर अफगानिस्तान पर हमला किया गया और अमेरिका ने इस हमले को "आतंक के विरुद्ध युद्ध" का नाम दिया। इस दौरान अमेरिका ने पाकिस्तान का भी सहयोग लिया। पाकिस्तान के लिए यह अत्यधिक चुनौतिपूर्ण समय था, क्योंकि पाकिस्तान को तालिबानियों के विरुद्ध हमले का समर्थन करना पड़ा, जबकि पाकिस्तान तालिबानियों का सबसे बड़ा समर्थक था। इस हमले के बाद वर्ष 2001 में तालिबानी शासन का अंत हो गया।[7]

तालिबानी शासन समाप्त होने के बाद भारत के द्वारा पुनः अफगानिस्तान के साथ प्रगाढ़ संबंधों का विकास किया गया। अफगानिस्तान में शांति एवं लोकतांत्रिक सरकार के निर्माण के लिए दिसम्बर 2001 में जर्मनी में "बोन समझौता" हुआ, जिसके द्वारा अफगानिस्तान में एक अंतरिम प्रशासन का निर्माण किया गया, जिसके चेयरमैन हामिद करजई थे। वर्ष 2004 में अफगानिस्तान में पहला राष्ट्रपति चुनाव हुआ एवं हामिद करजई राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित हुए। भारत-अफगानिस्तान संबंधों को नई सुदृढ़ता प्राप्त हुई तथा अफगानिस्तान के साथ द्विपक्षीय क्षेत्रीय मुद्दों पर संबंधों में प्रगाढ़ता बढ़ी। 14वें दक्षेस सम्मेलन के दौरान अफगानिस्तान को दक्षेस का सदस्य भी बना दिया गया। भारत, अफगानिस्तान में आधारभूत संरचना के विकास में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रयोजित 21 देशों का सम्मेलन न्यूयार्क में हुआ, जिसमें भारत की भूमिका उल्लेखनीय थी।[8]

भारतीय सरकार ने अफगानिस्तान को 100 मिलियन डॉलर आर्थिक सहायता प्रदान की। एक मिलियन टन गेहूँ के अतिरिक्त भारत ने जेरंज डेलाराम सड़क परियोजना (Route 606) के निर्माण हेतु 152 मिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता का प्रदान किया। भारतीय सीमा सड़क संगठन द्वारा निर्मित इस सड़क का वर्ष 2009 में उद्घाटन भी किया गया। हेरात में सलमा बांध शक्ति परियोजना के लिए कुल 1775 करोड़ रुपये की सहायता राशि दिया। लगभग 10 वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद 2016 में 42 मेगावाट क्षमता वाले इस डैम का उद्घाटन संयुक्त रूप से भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी एवं अफगानिस्तान के राष्ट्रपति असरफ गनी के द्वारा किया गया। भारत के द्वारा अफगानिस्तान की आधारभूत संरचना के विकास तथा क्षमता निर्माण कार्यक्रम में महत्वपूर्ण सहयोग निरंतर दिया जाता रहा। अफगानिस्तान में ज्यादा से ज्यादा निवेश आकर्षित करने के लिए वर्ष 2012 में नई दिल्ली में एक निवेश सम्मेलन भी आयोजित किया गया। अमेरिका के द्वारा शांति स्थापना के लिए अंतर्राष्ट्रीय सैनिकों की तैनाती की गई, जबकि भारत के द्वारा अफगानिस्तान में कभी भी सेना की तैनाती के विकल्प पर विचार नहीं किया गया। अफगानिस्तान में निवेश के लिए दिल्ली सम्मेलन आयोजित किया गया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत में किसी अन्य देश के लिए आयोजित किया जाने वाला यह पहला शिखर सम्मेलन है। भारतीय व्यवसाय समूह द्वारा इस कार्यक्रम के प्रति सकारात्मक प्रक्रिया दिखाना अपने एक ऐसे पड़ोसी देश के साथ हमारी घनिष्टता और एकजुटता का प्रतीक है, जिसके साथ हमारे लम्बे ऐतिहासिक एवं सभ्यतामूलक संबंध रहे हैं। वर्ष 2014 में नाटो के सैनिकों की वापसी और आतंकवाद के कारण हो रही जनहानि को देखते हुए अफगानिस्तान पर एक बड़ा निवेश सम्मेलन आयोजित करना अपने आप में अभूतपूर्व कदम है, क्योंकि अफगानिस्तान पिछले तीन दशक से हिंसा और संघर्ष से परेशान है। इसलिए अफगानिस्तान की भलाई के लिए यह कदम पड़ोसी देशों और संपूर्ण विश्व की सुरक्षा के लिए आवश्यक है।[9]

 ISSN 0976-0849

"इंदिरा गांधी शिशु स्वास्थ्य केन्द्र" का निर्माण काबुल के हबीबी स्कूल में किया गया। इसके अतिरिक्त कृषि, बैंकिंग तथा कम्प्यूटर के क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण सहयोग किया गया। अफगानिस्तान के स्थायी विकास के लिए अफगानिस्तान में भारत द्वारा सहायता कार्यक्रम चलाया जाता रहा। भारत सरकार ने अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों के अतिरिक्त कृषि, खनन और स्वास्थ्य क्षेत्र में सहायता करने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की। भारत द्वारा बुनियादी स्तर पर विकास के लिए निर्माणाधीन लघु विकास परियोजनाओं के विस्तार के लिए भी सहमति व्यक्त की गई है। भारत द्वारा अफगानिस्तान की जरूरत के अनुसार भारत में चिकित्सा, इंजीनियरिंग और प्रबंध संस्थानों में छात्र एवं व्यक्तियों की संख्या बढ़ाने पर सहमति व्यक्त की गई है तथा दोनों देश स्कूल, विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों के वार्षिक आवागमन कार्यक्रमों को बढ़ावा देंगे तथा भारत, कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं विधायिका के विभिन्न विभागों को तकनीकी प्रशिक्षण एवं अन्य प्रकार से क्षमता निर्माण में सहायता करता रहेगा।[10]

भारत-अफगानिस्तान के बीच संबंधों को बढ़ाने के लिए मीडिया, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं धार्मिक व संसदीय हस्तियों के बीच संबंधों को बढ़ाने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। भारत-अफगानिस्तान फाउंडेशन के द्वारा दोनों देश कला, साहित्य, कविता इत्यादि क्रियाकलापों के द्वारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ाने और एक-दूसरे की सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा देने के लिए सहमत हुए हैं। भारत-अफगानिस्तान संसदीय शिष्टमण्डलों का दौरा आयोजित करने और संसदीय मैत्री समूह स्थापित करके संसदीय ज्ञान के आदान-प्रदान पर भी सहमत हुए।[11] कुल मिलाकर 2001 से 2020 तक दोनों देशों के बीच संबंध अपने उच्चतम स्तर पर था।

वर्ष 2001 के बाद समूचे वैश्विक समुदाय के द्वारा अफगानिस्तान के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए बड़ी मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान की गई। वर्ष 2002 में टोकियो सम्मेलन के द्वारा विश्व समुदाय ने यह आश्वासन दिया कि वर्ष 2016 तक अफगानिस्तान को 16 बिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता दी जायेगी। इस सहायता के कारण अफगानिस्तान में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं संचार की बेहतर सुविधा उपलब्ध हुई तथा आधारभूत संरचना का विकास हुआ। अफगानिस्तान को बेहतर सड़कें तथा बिजली की सुविधाएं मिलीं और लोकतांत्रिक संस्थाओं की भी स्थापना हुई। इसलिए अफगानिस्तान में यह परिवर्तन अत्यधिक सकारात्मक थे, जिससे अफगानियों को सीधे आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ। इसके साथ यह भी सत्य है, कि अफगानिस्तान में सामाजिक एवं आर्थिक विषमताएं अत्यधिक गहरी थी और धार्मिक कट्टरवाद निरंतर बना रहा, जिसका लाभ आगे चलकर तालिबानियों उठाया।[12]

वर्ष 2014 में अमेरिकी सेनाओं की अफगानिस्तान से वापसी चरणबद्ध रूप में शुरू हो गई और अमेरिकी सेनाओं की अफगानिस्तान में युद्धक की भूमिका समाप्त होने लगी। परिणामस्वरूप

तालिबानी अफगानिस्तान में अपना प्रभाव पुनः स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। तालिबानियों के द्वारा अमेरिका को साम्राज्यवादी माना जाता है और इनके अनुसार, अच्छा तालिबान और बुरा तालिबान जैसा कोई विचार नहीं है, तालिबान केवल एक हैं तथा इनके द्वारा अफगानिस्तान के तत्कालीन संविधान एवं लोकतांत्रिक शासन का भी विरोध किया जाने लगा। इनके अनुसार शासन व्यवस्था इस्लाम धर्म के आधार पर संचालित होनी चाहिए। तालिबानियों ने कहा उनसे वार्ता के बिना अफगानिस्तान में शांति एवं स्थायित्व संभव नहीं है। इस दौर में चीन के द्वारा तालिबानियों के साथ बातचीत के लिए पाकिस्तान की सहायता की गई। इसी बीच तालिबान का मुख्य नेता मुला उमर अगस्त, 2015 में मार दिया गया, जिससे तालिबान की ताकत कमजोर हुई परन्तु तालिबानियों का दृष्टिकोण निरंतर भारत विरोधी ही रहा।

2016 आते-आते अफगानिस्तान में आत्मघाती दस्तों का निर्माण हो गया तथा कुछ क्षेत्रों में तालिबानियों ने समानांतर सरकार का निर्माण कर लिया। काबुल में भारतीय दूतावास पर बम विस्फोट हुआ, जिसमें आई.एस.आई. के सम्मिलित होने के स्पष्ट प्रमाण था। अफगानिस्तान में तालिबानियों के पुनरुत्थान का कारण आंतरिक और घरेलू भी हैं, जो निम्नलिखित हैं-

क) तालिबान के प्रभावी होने का बड़ा कारण प्रशासन में व्यापक भ्रष्टाचार पाया जाना।

ख) आम जनता के समक्ष दोहरी समस्या, क्योंकि वे सरकार से असंतुष्ट हैं तथा तालिबान के भी समर्थक नहीं।

ग) भ्रष्ट अधिकारियों की सहायता से अभी भी अफीम की खेती की जाती।

घ) औद्योगिकीकरण का अभाव, आर्थिक पिछड़ेपन और बेरोजगारी के कारण लोग अफीम के अवैध व्यापार में संलिप्त हैं।

30 जून, 2014 को भारत ने अफगानिस्तान के नागरिकों के लिए नई उदार वीजा की घोषणा की, जो 1 जुलाई, 2014 से प्रभावी हो गयी यह नीति अफगानी नागरिकों को एक समय में दो वर्ष की अवधि के लिए रहने का वीजा देती है तथा 12 वर्ष से कम या 65 वर्ष से ऊपर के अफगानी नागरिकों को पुलिस रिपोर्टिंग से भी छूट दी गई है। इस सुविधा के दुरुपयोग को रोकने के लिए बायोमैट्रिक नामांकन और फोटोग्राफी की व्यवस्था की गयी है। 10 सितम्बर, 2014 को भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज अफगानिस्तान की एक दिवसीय यात्रा पर गई थीं। भारत ने सैन्य हार्डवेयर आपूर्ति के अफगानिस्तान के आग्रह पर विचार करने पर सहमति प्रकट की। काबुल में भारतीय दूतावास का उद्घाटन सुषमा स्वराज ने किया तथा यह दूतावास समन्वित सुरक्षा प्रणाली से लैस है।

अफगानिस्तान में वर्ष 2001 में अमेरिका के 'आतंक के विरुद्ध युद्ध' के हमले के बाद अफगानिस्तान में नाटो के नेतृत्व में अंतर्राष्ट्रीय सैनिकों को तैनात किया गया था, जिनके द्वारा

 ISSN 0976-0849

अफगानिस्तान में विद्यमान आतंकी संगठनों के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई की गई। अमेरिका के द्वारा इन संगठनों पर ड्रोन विमानों से हमले किए गए और भारत की अफगानिस्तान में कोई सैनिक भूमिका नहीं थी, बल्कि भारत के द्वारा अफगानिस्तान में आधारभूत संरचना का विकास किया गया। 2014 से अमेरिकी सेनाओं की युद्ध में भूमिका अफगानिस्तान से समाप्त हो गई। अमेरिकी सैनिक केवल अफगानी सेनाओं को प्रशिक्षण देने लगे।

अशरफ गनी अहमदजई ने 19 सितम्बर, 2014 को अफगानिस्तान के नए राष्ट्रपति के रूप में शपथ ग्रहण की। अफगानिस्तान में वर्ष 2001 के बाद पहली बार लोकतांत्रिक तरीके से सत्ता का हस्तांतरण हुआ। 5 अप्रैल और 14 जून, 2014 को दो चरणों में राष्ट्रपति चुनाव सम्पन्न हुए, जिसमें स्वतंत्र उम्मीदवार अशरफ गनी अहमदजई ने 'नेशनल काउन्सिल ऑफ अफगानिस्तान पार्टी' के उम्मीदवार अब्दुल्ला को पराजित किया।[13]

प्रथम चरण के चुनाव में किसी भी प्रत्याशी को अपेक्षित 50 प्रतिशत मतदान प्राप्त होने के कारण दूसरे चरण का मतदान करवाया गया। दूसरे चरण के मतदान में अशरफ गनी अहमदजई ने 56.44 प्रतिशत मत प्राप्त करके अब्दुल्ला (43.56 प्रतिशत) को पराजित किया। राष्ट्रपति चुनाव में दोनों प्रमुख प्रत्याशियों द्वारा एक दूसरे पर धांधली का आरोप लगाने के कारण मतों का अंतर्राष्ट्रीय ऑडिट करवाया गया। अमेरिकी विदेश मंत्री जॉन कैरी की मध्यस्थता में दोनों पक्षों के बीच राष्ट्रीय एकता सरकार के गठन पर 21 सितम्बर, 2014 को समझौता हुआ। समझौते के अनुसार, अशरफ गनी अहमदजई को राष्ट्रपति और अब्दुल्ला को नवनिर्मित पद कार्यकारी अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया। राष्ट्रीय एकता सरकार द्वारा अफगानिस्तान में नृजातीय एकता निर्मित करने का प्रयत्न किया गया। अशरफ गनी पश्तून समुदाय से संबंधित हैं, जबकि मो. अब्दुल्ला ताजिक समुदाय से संबंधित हैं। नृजातीय समीकरण के द्वारा अफगानिस्तान में सरकार को स्थायी बनाने का प्रयत्न किया गया। समाज में सामंजस्य बनाए रखने के लिए सभी नृजातीय समूहों को अफगानिस्तान की सरकार में प्रतिनिधित्व दिया गया। नई सरकार के द्वारा पाकिस्तान के साथ संबंध को सुदृढ़ करने पर बल दिया जाने लगा जबकि अफगानिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति हामिद करजई के द्वारा भारत के साथ संबंधों को अत्यधिक महत्व दिया गया था। इसी बीच चीन का प्रभाव अफगानिस्तान में लगातार बढ़ने लगा तथा अफगानिस्तान के द्वारा चीन एवं पाकिस्तान के साथ संबंधों को सुदृढ़ करने पर अत्यधिक बल दिया जाने लगा।

पाकिस्तान के द्वारा अफगानिस्तान में सदैव पाकिस्तानी समर्थित शासन को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया। पाकिस्तान को अफगानिस्तान में भारत की उपस्थिति पर गहरी आपत्ति रही है, क्योंकि पाकिस्तानी हित अफगानिस्तान में अपने प्रभुत्व को बनाये रखने में हैं।

अमेरिकी सेनाओं की वापसी के बाद तालीबानी अफगानिस्तान में पुनः अपना प्रभाव बढ़ाने

का प्रयत्न कर रहे हैं तथा पाकिस्तान के द्वारा फिर से अफगानिस्तान में अपनी भूमिका को शक्तिशाली करने का प्रयत्न किया जा रहा है, जबकि भारत द्वारा अफगानिस्तान के साथ प्रभावी आर्थिक और सामरिक संबंधों को बनाए रखने पर बल दिया जा रहा है।[14] इसलिए पाकिस्तान ने भारत पर भी आरोप लगाया कि वह पाकिस्तान में अलगाववादी गतिविधियों को प्रोत्साहित कर रहा है, जबकि वास्तविक रूप से तालिबानी मूलत: आई.एस.आई. के ही भाग हैं तथा समस्या का मूल जड़ पाकिस्तान है। पाकिस्तान के द्वारा अफगानिस्तान में भारतीय दूतावासों पर हमले कराए गए। पाकिस्तान, अफगानिस्तान में भारत की उपस्थिति स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। अफगानिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति हामिद करजई के द्वारा यह कहा गया था कि भारत, अफगानिस्तान का मित्र है, जबकि पाकिस्तान, अफगानिस्तान का छोटा भाई है।[15] यद्यपि अफगानिस्तान के लोग भारत की भूमिका को अत्यधिक सकारात्मक मानते हैं। पाकिस्तान का अफगानिस्तान में बढ़ता प्रभाव तथा चीन के अफगानिस्तान में प्रभाव को स्वाभाविक रूप में बढ़ा देता है, जो भारत के लिए एक नवीन चुनौती है।

इसी बीच वर्ष 2020 में अमेरिका ने तालिबान के साथ (कतर की राजधानी दोहा में) एक समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसमें अफगानिस्तान से विदेशी सैनिकों की पूर्ण वापसी की परिकल्पना की गई थी। हालाँकि उस समझौते में प्रमुख दोष यह था कि इसमें अफगान सरकार को बाहर कर दिया गया था। इसके बाद अमेरिका के सारे प्रयास अपने सैनिकों की वापसी पर था। तालिबान के खात्मे के उद्देश्य के साथ शुरू हुए आपरेशन इनड्यूरिंग फ्रीडम में अमेरिका ने 20 वर्षों के दौरान दो ट्रिलियन डॉलर यानी लगभग दो लाख करोड़ डॉलर खर्च किए। इतना ही नहीं इस जंग में अमेरिका के 2400 और नाटो देशों के लगभग 700 सैनिकों की जान गई है।[16] वहीं, अफगानिस्तान की सेना के 60 हजार जवान और 40 हजार नागरिकों को भी जान से हाथ धोना पड़ा है। लेकिन फिर भी नतीजा ढाक के तीन पात ही रहे। तालिबान ने अफगानिस्तान में वापस पैर जमाना शुरू कर दिया। 82वें एयरबोर्न डिवीजन के कमांडर मेजर जनरल क्रिस डोनयू 30 अगस्त, 2021 को काबुल, अफगानिस्तान से आखिरी उड़ान में सवार होने वाले अंतिम अमेरिकी सैनिक रहे। इसके बाद सिर्फ एक सप्ताह के अन्दर तालिबानीयों ने सम्पूर्ण अफगानिस्तान पर कब्जा कर लिया। अफ़ग़ानिस्तान में तालिबान के आने से भारत पर क्या असर पड़ा? एक चिंता तो यह है कि लश्कर-ए-तैयबा और जैश-ए-मोहम्मद जैसे समूहों को भारत पर हमले के लिए अब पहले से कहीं अधिक अनियंत्रित स्थान मिल जाएगा, "अफगानिस्तान में तालिबान का नियंत्रण होने का यह भी मतलब है कि देश में अब पाकिस्तानी सेना और उसकी खुफिया एजेंसियों का प्रभाव निर्णायक हो गया है। ऐसे में, अफ़ग़ानिस्तान में पिछले दो दशकों से चलाई गई विकास और बुनियादी ढांचे की परियोजनाओं में भारत की भूमिका सिमट जाएगी। हालांकि अब तक वहाँ के विकास को लेकर भारतीय प्रयासों की

 ISSN 0976-0849

काफ़ी सराहना होती रही है।"

"यही नहीं, तालिबान के आने के बाद, अफ़ग़ानिस्तान से कारोबार कराची और ग्वादर बंदरगाह के जरिए हो सकता है। ऐसे में पाकिस्तान को दरकिनार करने के लिहाज से ईरान के चाबहार बंदरगाह को विकसित करने के लिए किया जा रहा भारत का निवेश अब अव्यावहारिक हो गया है। इसके अलावा, भारत के पड़ोस में कट्टरपंथ और इस्लामिक आतंकी समूहों के बढ़ने का खतरा पैदा हो गया है।" भारत का अफगानिस्तान में करीब 23 हजार करोड़ रुपए का निवेश है।

भारतीय विदेश नीति के अनुसार, अफगानिस्तान और पाकिस्तान में आतंकवादियों की उपस्थिति केवल भारतीय सुरक्षा के लिए ही नहीं अपितु समूचे विश्व के लिए सबसे बड़ा खतरा है। इसलिए भारत, अफगानिस्तान में एक लोकतांत्रिक और स्थायी सरकार का समर्थक है। अफगानिस्तान का सामरिक महत्व निर्विवाद है। भारत और अफगानिस्तान को स्वाभाविक सहयोगी माना जाता है। भारत अफगानिस्तान को एक मित्र राष्ट्र के रूप में बनाए रखने में रुचि रखता है क्योंकि यह भारत को पाकिस्तान की निगरानी करने और अफगानिस्तान को आतंकवादी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए आतंकी समूहों क्रियाविधि क्षेत्र बनने से रोकने में मदद कर सकता है।

30 अगस्त 2021 के बाद बदली हुई परिस्थितियों में भारत चाहता है कि–

- भारत काबुल में एक समावेशी सरकार की आवश्यकता को समझता है जो अंतरिम तालिबान शासन को प्रतिस्थापित कर समावेशी सरकार की स्थापना करेगा।
- इस्लामी कानून शरीयत के कठोर प्रवर्तन जिसके परिणामस्वरूप कई अफगानों के साथ क्रूर व्यवहार हुआ है, के लिए तालिबान की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निंदा की गई है, इस संबंध में, भारत अफगानिस्तान के अल्पसंख्यकों, महिलाओं और बच्चों के अधिकारों के लिए सहयोग करेगा।
- भारत इस मत पर अडिग है कि अफगानिस्तान शांति प्रक्रिया का नेतृत्व, स्वामित्व और नियंत्रण अफगान लोगों के हाथ में होना चाहिए।
- भारत के अनुसार अफगानिस्तान को अपनी धरती को आतंकी समूहों के लिए सुरक्षित पनाहगाह के रूप में इस्तेमाल नहीं करने देना चाहिए।

आगे की राह

- भारत सरकार को तालिबान के मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है, जो अफगानिस्तान के भीतर कई भारतीय विरोधी आतंकवादी संगठनों, विशेष रूप से जैश-ए-मोहम्मद और लश्कर-ए-तैयबा को समर्थन दे सकता है, जैसा तालिबान द्वारा पूर्व में भी किया जा चुका है।

- भारत को उन क्षेत्रीय शक्तियों की मदद लेनी चाहिए जिनका तालिबान पर कुछ प्रभाव है। उदाहरण के लिए, रूस ने हाल के वर्षों में तालिबान के साथ संबंध विकसित किए हैं। यह तालिबान के साथ किसी भी तरह के सीधे जुड़ाव में रूस का समर्थन ले सकता है।
- भारत को निरंतर विकास सहायता के बदले में समूह से सुरक्षा गारंटी लेने के लिए तालिबान के साथ बातचीत में शामिल होना चाहिए और पाकिस्तान से अफगानिस्तान की स्वायत्तता सुनिश्चित करने का एक मार्ग भी तलाश करना चाहिए।
- भारत को इस क्षेत्र में कट्टरपंथ, उग्रवाद, अलगाववाद और मादक पदार्थों की तस्करी के खतरे के खिलाफ सामूहिक सहयोग के लिए प्रयास करना चाहिए।

निष्कर्ष:

भारत अफगानिस्तान में नए अवसरों का लाभ तभी उठा सकता है जब भारत अपने मूल हितों पर ध्यान केंद्रित करे। अफगानिस्तान के विकास को सुनिश्चित करने के लिए इसकी सुरक्षा और दीर्घकालिक आर्थिक हितों की रक्षा अनिवार्य हैं। तालिबान शासन के साथ संबंधों के सामान्य होने के साथ, भारत को अब यह विचार करना चाहिए कि अफगानिस्तान के लोगों का सामाजिक आर्थिक विकास किस प्रकार होगा। क्योंकि शांत, समृद्ध और खुशहाल अफगानिस्तान में भारत का स्थाई हित है।

संदर्भ :

1. शुक्ला, पी.पी., इंडिया यू.एस. पार्टनरशिप, एशियन चैलेंज एण्ड बियोन्ड, विज्डम ट्री प्रेस, नई दिल्ली, 2014, पृ. 19
2. चन्द्र, आमिया, इण्डिया सेन्ट्रल एशिया रिलेशन्स, पेंटागन प्रेस, नई दिल्ली, 2015, पृ. 37
3. बेरी, रुचिता, इंडिया अफ्रिका, पेंटागन प्रेस, नई दिल्ली, 2014, पृ. 40
4. चन्द्र, विशाल, इन्डियाज नेबरहुड : द अरूमस ऑफ साऊथ एशिया, पेंटागन प्रेस, नई दिल्ली, 2013, पृ. 107
5. कुमार, सुरेन्द्र, इण्डिया एण्ड द वर्ल्ड, विज्डम प्रेस, नई दिल्ली, 2015, पृ. 89
6. नायक, निहार, स्ट्रेटेजिक हिमालयंस, पैंटागन प्रेस, नई दिल्ली, 2014, पृ. 77
7. दत्ता, बी.पी., इण्डियाज फारेन पोलिसी, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984, पृ. 133
8. खिलानानी, सुनील, चॉन आलइनमेंट 20, पेंगुइन प्रेस, नई दिल्ली, 2013, पृ. 219
9. दहिया, रूमेल, डवलपमेंट इन द गल्फ रिजन, पेंगुइन प्रेस, नई दिल्ली, 2014, पृ. 173
10. चन्द्र, विशाल, द अनफिनिश्ड वार इन अफगानिस्तान, पेंगुइन प्रेस, नई दिल्ली, 2015, पृ. 207
11. वैंकटस्वामी, कृष्णप्पा, प्रानी जार्ज, ग्रान्ड स्ट्रेटेजी फोर इण्डिया 2020 एण्ड बियोन्ड, पेंगुइन प्रेस, नई दिल्ली, 2012, पृ. 19

 ISSN 0976-0849

12. बन्धोपाध्याय, जे., द मेकींग ऑफ इण्डियन फोरन पोलिसी, एलाइंड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 301
13. पी. कान्त बाजपेयी एण्ड पंत हास, इन्डिया फोरन पोलिसी, आक्सफोर्ड प्रेस, नई दिल्ली, 2013, पृ. 73
14. दुबे, मचकुन्द, इंडियाज फोरेन पोलिसी, पीयरसन प्रेस, नई दिल्ली, 2013, पृ. 157
15. झा, पंकज, इण्डिया एण्ड चाइना इन साउथ ईस्ट एशिया, मानस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 185
16. स्टॉबडन, पी., इण्डिया रशिया, आई.डी.एस.एस. प्रेस, नई दिल्ली, 2010, पृ. 78

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 119-126
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

भारत-नेपाल रणनीतिक संबंधों पर एमसीसी का प्रभाव : एक विश्लेषण

डॉ. अभिषेक सिंह* एवं डॉ. हर्षवर्धन सिंह**

सारांश: नेपाल और संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएसए) के बीच राजनयिक संबंधों की स्थापना को 75 साल हो गए हैं। संक्षेप में कहें तो, यूनाइटेड किंगडम के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका दूसरा देश था जिसके साथ नेपाल ने 1947 में राजनयिक संबंध स्थापित किए थे। 1951 में प्वाइंट फोर कार्यक्रम पर हस्ताक्षर करने के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका नेपाल का प्रारंभिक द्विपक्षीय सहयोगी बन गया, जिससे नेपाली लोगों के प्रति समर्पण, पारस्परिक सम्मान और विश्वास के 70 साल लंबे रिश्ते की शुरुआत हुई। पिछले कुछ वर्षों में दोनों देशों के बीच जुड़ाव और भी अधिक स्पष्ट हो गया है। नेपाल में अमेरिकी राजनयिक दौरों में वृद्धि बढ़ती भागीदारी का प्रमाण है। जुड़ाव के विभिन्न कारक, जैसे कि आर्थिक, सुरक्षा और सांस्कृतिक, सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में बढ़े हुए अमेरिकी निवेश में परिलक्षित होते है। राज्य भागीदारी कार्यक्रम (एसपीपी) में शामिल होने से इनकार करने के बावजूद, नेपाल के साथ रक्षा और सैन्य सहयोग बढ़ाना और कई नेपालियों के संयुक्त राज्य अमेरिका में रहने और अध्ययन करने के साथ-साथ अमेरिकी सेना में सेवारत होने के कारण लोगों के बीच संबंध बढ़ रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बीच रणनीतिक प्रतिद्वंद्विता की तीव्रता तेजी से ध्यान देने योग्य हो गई है। हमारे मामले में, यह एमसीसी कॉम्पैक्ट 500+ मिलियन का अनुदान के अनुसमर्थन के दौरान सबसे अधिक स्पष्ट था। जबकि अमेरिका ने एमसीसी को एक "स्वतंत्र अमेरिकी विदेशी सहायता एजेंसी के रूप में प्रचारित किया जो वैश्विक गरीबी के खिलाफ लड़ाई का नेतृत्व करने में मदद कर रही है," चीनी इसे चीन के उदय का मुकाबला करने के साथ-साथ इस क्षेत्र में अमेरिकी सहयोगियों को मजबूत करने के एक उपकरण के रूप में देखते हैं। नेपाल-अमेरिका संबंधों के मित्रों और शुभचिंतकों की राय में, नेपाल और अमेरिका दोनों के व्यापक हित और एक-दूसरे के अनुकूल उनके लोगों के हित में आने वाले वर्षों में ऐसी यात्राएं जारी रहनी चाहिए। जबकि अमेरिका नेपाल के विकास

*सहायक आचार्य, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर;
**वरिष्ठ शोध अध्येता, महायोगी गोरखनाथ शोधपीठ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

 ISSN 0976-0849

प्रयासों के साथ-साथ इस देश की लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत करने में सक्रिय रुचि लेना और सहयोग करना जारी रखना चाहता है, नेपाल अमेरिका के साथ अपनी दोस्ती और सहयोगात्मक संबंधों को बहुत महत्व देता है, जो न केवल वैश्विक शक्ति है बल्कि जिम्मेदार देशों में से भी एक है।

बीजशब्द: एमसीसी, बीआरआइ, प्वाइंट फोर कार्यक्रम, एसपीपी, आईपीएस, एशियाई शताब्दी, ट्रैक-1 डिप्लोमेसी।

प्रस्तावना

एमसीसी और इंडो-पैसिफिक रणनीति अलग पहल हैं, लेकिन वे दोनों इंडो-पैसिफिक क्षेत्र में आर्थिक विकास और रणनीतिक सहयोग को बढ़ावा देने के अमेरिकी सरकार के व्यापक प्रयासों का हिस्सा हैं। नेपाल में एमसीसी का कार्यान्वयन एक विवादास्पद मुद्दा बना हुआ है, और यह देखना बाकी है कि यह संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य क्षेत्रीय शक्तियों के साथ नेपाल के संबंधों को कैसे प्रभावित करेगा। "जबकि भारत और चीन अधिनायकवाद और लोकतंत्रवाद में वृद्धि का अनुभव कर रहे हैं नेपाल मानवाधिकारों की सुरक्षा, प्रेस की स्वतंत्रता और अपने संविधान के कार्यान्वयन में चमक रहा है।" जबकि भारत और चीन अधिनायकवाद और लोकतंत्रवाद में वृद्धि का अनुभव कर रहे हैं, नेपाल विभिन्न सिद्धांतों को महत्व देता है। हमारे पड़ोसी देशों में इन चुनौतियों के बावजूद, नेपाल मानवाधिकारों की सुरक्षा, प्रेस की स्वतंत्रता और अपने संविधान के कार्यान्वयन में चमक रहा है। इसके अलावा, संक्रमणकालीन न्याय प्रक्रिया को सफलतापूर्वक पूरा करने से नेपाल अंतरराष्ट्रीय कानून के निर्माण के एक आदर्श उदाहरण के रूप में स्थापित हो सकता है। ये गुण नेपाल को दक्षिण एशिया के अन्य देशों से अलग करते हैं और इसकी नरम शक्ति में योगदान करते हैं और साथ ही आईपीएस द्वारा परिकल्पित सुशासन, लोकतांत्रिक मूल्यों और सुरक्षा और स्थिरता को मजबूत करने के लक्ष्य को आगे बढ़ाते हैं।

इंडो-पैसिफिक रणनीति (आईपीएस) नेपाल में एक गर्म विषय रहा है। हालाँकि, नेपाल ने स्पष्ट रूप से हिंद महासागर और पश्चिमी और मध्य प्रशांत महासागर तक फैले क्षेत्र में राष्ट्रों के बीच आर्थिक, राजनयिक और सुरक्षा सहयोग बढ़ाने के उद्देश्य से अमेरिकी भू-राजनीतिक अवधारणा का समर्थन नहीं किया है। फिर भी, कुछ अधिकारियों ने स्पष्ट किया है कि इंडो-पैसिफिक क्षेत्र और इंडो-पैसिफिक रणनीति अलग-अलग इकाइयाँ हैं। पूर्व प्रधानमंत्री ओली और वर्तमान प्रधानमंत्री पुष्प कमल दहल दोनों ने इस अंतर पर जोर दिया है। संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन जैसी महान शक्तियों के साथ नेपाल का जुड़ाव उसके राष्ट्रीय हित और विकास की खोज से प्रेरित है। नेपाल ने मिलेनियम चैलेंज कॉर्पोरेशन (एमसीसी) समझौते को मंजूरी दे दी, इस अटकल के बावजूद कि क्या यह चीन के उदय का मुकाबला करने का एक उपकरण है। नेपाल चीन के बेल्ट एंड रोड

इनिशिएटिव (बीआरआई) का भी हस्ताक्षरकर्ता है। नेपाल में अमेरिका की बढ़ती भागीदारी सरकारी और निजी क्षेत्र में उसके निवेश, रक्षा और सैन्य सहयोग और लोगों के बीच बढ़ते संबंधों में परिलक्षित होती है।

इंडो-पैसिफिक रणनीति और संयुक्त राज्य अमेरिका

बड़े वैश्विक क्षेत्र में सीमित आर्थिक और सैन्य प्रभाव वाले नेपाल जैसे देशों के लिए, निवेश, ध्यान और प्रभाव के लिए अमेरिका-चीन प्रतिस्पर्धा दोनों महाशक्तियों के हितों का लाभ उठाकर घरेलू सरकार को मजबूत करने का अवसर प्रदान कर सकती है। चूंकि आईपीएस में लोकतांत्रिक मूल्यों, प्रौद्योगिकी, डिजिटल, जलवायु, पर्यावरण और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों के संदर्भ शामिल हैं, ऐसी एक अच्छी तरह से विकसित रणनीति नेपाल में 360 डिग्री अमेरिकी भागीदारी की अनुमति देती है। नेपाल के लिए, भू-रणनीतिक तनाव वैश्विक मंच पर अपने महत्व को प्रदर्शित करने का मौका प्रदान करता है, विशेष रूप से नेपाल के व्यापार को आगे बढ़ाने और अपने युवाओं का समर्थन करने के लिए उत्सुक महाशक्तियों की उपस्थिति के साथ-साथ यूक्रेन में संघर्ष और मानवाधिकार संबंधी चिंताओं जैसे वैश्विक मुद्दों को संबोधित करने के लिए। यदि नेपाल राजनीतिक स्थिरता बनाए रख सकता है, एक सुसंगत विदेश नीति तैयार कर सकता है, और सुरक्षा पर एक सूचित और मजबूत राष्ट्रीय सहमति बना सकता है, तो यह देश के लिए प्रमुख शक्तियों के सामने अपनी जरूरतों और नीतियों की वकालत करने और खुद को एक उदाहरण के रूप में प्रदर्शित करने का एक महत्वपूर्ण क्षण हो सकता है।

बड़ी इंडो-पैसिफिक रणनीति में एमसीसी अनुदान के अलावा, अमेरिका नेपाल को अपनी रक्षा रणनीति में भी शामिल करना चाहता है, जिसका खुलासा 2019 में अमेरिकी रक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित इंडो-पैसिफिक स्ट्रेटजी रिपोर्ट (आईपीएसआर) से हुआ था। यह साझेदारी, जिसमें शांति स्थापना अभियान, रक्षा व्यावसायीकरण, जमीनी बल क्षमता और आतंकवाद विरोधी नीति शामिल हैं। अमेरिका बीआरआई से आशंकित है और उसने नेपाल से देश में चीनी निवेश की पारदर्शिता और स्थिरता का आकलन करने का आग्रह किया है। अमेरिका के अनुसार, नेपाल के चीनी ऋण जाल में फंसने का खतरा हो सकता है। जब अमेरिकी इंडो-पैसिफिक रणनीति के बारे में नेपाल के दृष्टिकोण की बात आती है, तो वह इसके बारे में, विशेष रूप से क्वाड के बारे में आशंकित दिखता है। खासकर अगर यह समूह क्वाड सदस्य के रूप में भारत के साथ नेपाल में अपने प्रभाव से अधिक मजबूत हो जाता है तो यह नेपाल के लिए चिंताजनक हो सकता है। नेपाल को चीनी वित्तीय मदद को देखते हुए, यदि अन्य शक्तियां उसे चीन से दूरी बनाने के लिए मनाती हैं तो नेपाल को समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

 ISSN 0976-0849

इंडो-पैसिफिक रणनीति और नेपाल

संयुक्त राज्य अमेरिका 75 वर्षों से नेपाल का एक मजबूत भागीदार रहा है। अमेरिकी सरकार आपदाओं से निपटने, भूकंप से पुनर्निर्माण और भविष्य की आपदाओं से जुड़े जोखिमों को कम करने में मदद करने के लिए नेपाल सरकार की कई अलग-अलग एजेंसियों के साथ साझेदारी करती है। मानवीय सहायता और आपदा राहत के मामले में नेपाल सेना और गृह मंत्रालय प्राथमिक भागीदार हैं। नेपाल के लोगों को पुनर्निर्माण में मदद करने के लिए राष्ट्रीय पुनर्निर्माण प्राधिकरण और भूकंप प्रौद्योगिकी के लिए राष्ट्रीय सोसायटी जैसे नागरिक समाज संगठनों के साथ साझेदारी की है। नेपाल द्वारा एमसीसी को शामिल करना एमसीसी के बारे में उसकी धारणा के बारे में कई कारकों पर निर्भर करता है– यदि यह रक्षा व्यवस्था का एक हिस्सा है, जिससे नेपाल को डर है, यदि इसमें एक सैन्य घटक है तो इसका मतलब है कि चीनी अतिक्रमण के उद्देश्य से अमेरिकी सेना की उपस्थिति है। चीन के साथ उसके घनिष्ठ संबंधों को देखते हुए यह स्पष्ट रूप से नेपाल के हित के पक्ष में नहीं है। नेपाल किसी भी मोर्चे पर चीन को परेशान नहीं करना चाहेगा और अमेरिकी इंडो-पैसिफिक रणनीति से जुड़े कार्यक्रमों को स्वीकार करना चीन के मुकाबले नेपाल के लिए हानिकारक हो सकता है। इसलिए, एमसीसी पर नेपाल का विश्वास जीतना अमेरिका के लिए एक चुनौती बनी रह सकती है और उसे अपनी इंडो-पैसिफिक रणनीति में शामिल करना एक बड़ी बाधा बन सकती है।

नेपाल वर्तमान में अपनी भू राजनीतिक स्थिति और एक नई वैश्विक व्यवस्था के गठन के कारण कठिन स्थिति में है जो नेपाल के उभरते पड़ोसियों को लक्षित करती है। चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच प्रतिद्वंद्विता ऐसी आर्थिक परियोजनाओं के माध्यम से एशिया या दक्षिण एशिया में ही नहीं, बल्कि नेपाल में भी प्रकट हुई है। दुनिया की दो सबसे तेज अर्थव्यवस्थाओं के रूप में, चीन और भारत में खुद को एशियाई शक्तियों के रूप में स्थापित करने की जबरदस्त क्षमता है, भले ही दोनों देश प्रतिद्वंद्विता और सहयोग साझा करते हैं, जिससे क्षेत्रीय विकास में काफी बाधा आई है। उनके बीच अनसुलझे सीमा मुद्दे और क्षेत्रीय विवाद जारी हैं। परिणामस्वरूप, जब तक इन आंतरिक चिंताओं का समाधान नहीं किया जाता, यह क्षेत्र एशिया के नेतृत्व वाली या चीन के नेतृत्व वाली अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था प्राप्त करने में असमर्थ होगा, जो "एशियाई शताब्दी" को साकार करने के लिए आवश्यक है। चीन और भारत विकसित एशिया को वास्तविकता बनाने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं। नेपाल ने दोनों पड़ोसियों और बढ़ती शक्तियों को एक साथ लाने में, अपने मतभेदों को किनारे रखकर साझा जमीन पर एक मजबूत संबंध स्थापित करने में भूमिका निभाई है, जिसे एशियाईपन कहा जा सकता है। अगर नेपाल को चीन, भारत और पश्चिम के वित्तीय संस्थानों से परियोजनाएं मिलती हैं तो वह समृद्धि हासिल कर सकता है। आर्थिक या विकास कूटनीति तब तक कार्य नहीं कर सकती जब तक कोई संप्रभु सरकार इन संगठनों में शामिल नहीं हो जाती। दुनिया की

तकनीकी प्रगति से अलगाव नेपाल को और भी अधिक अशांति में धकेल देगा। विकास भागीदार विकास कूटनीति के लिए शुरुआती बिंदु हैं।

यूएस-इंडो-पैसिफिक और चीन

एमसीसी ने बीजिंग को असहज कर दिया है क्योंकि वह इसे चीन को नियंत्रित करने के उद्देश्य से यूएस-इंडो-पैसिफिक रणनीति के एक हिस्से के रूप में देखता है। चीनी राजदूत होउ यांकी ने नेपाल को किसी भी विदेशी आर्थिक सहायता का स्वागत किया, लेकिन चीन को नियंत्रित करने के किसी भी कदम के खिलाफ चेतावनी दी है क्योंकि एमसीसी को अमेरिकी इंडो-पैसिफिक रणनीति के एक हिस्से के रूप में मान्यता दी गई है। हालाँकि, हाल के वर्षों में, नेपाल में बीजिंग के बढ़ते प्रभाव को लेकर चिंताएँ रही हैं, विशेषकर बुनियादी ढाँचे के विकास और निवेश के क्षेत्रों में। इससे इस बारे में कुछ अटकलें लगाई जाने लगी हैं कि क्या नेपाल अंततः खुद को चीन के साथ या भारत और अन्य इंडो-पैसिफिक देशों के साथ अधिक निकटता से जोड़ सकता है। यह देखते हुए, नेपाल के लिए चुनौती रणनीतिक स्वायत्तता को अपनाने और चल रही महान शक्ति प्रतिद्वंद्विता में किसी विशेष शिविर के साथ जुड़ने से बचने की है। भारत, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम या किसी अन्य देश के साथ नेपाल के रिश्ते विभिन्न कारणों से महत्वपूर्ण महत्व रखते हैं। हालाँकि, नेपाल को पक्ष लेने के लिए मजबूर करने का कोई भी प्रयास लोकतांत्रिक समाजों के बुनियादी सिद्धांतों के खिलाफ जाएगा जो बहुलवाद और विविधता को महत्व देते हैं। इन मूल्यों को कायम रखने वाले समाज के रूप में, नेपाल को उन्हें अपनी विदेश नीति के निर्णयों की जानकारी देने की अनुमति देनी चाहिए। हम मानवाधिकारों, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और एक मजबूत नागरिक समाज को महत्व देते हैं और इन सिद्धांतों से समझौता नहीं किया जाना चाहिए। हालाँकि हम समाज को संगठित करने के लिए चीन के सिद्धांतों को साझा नहीं कर सकते हैं, लेकिन चीन से आर्थिक अलगाव वास्तव में अकल्पनीय है, और हमारे दक्षिणी पड़ोसी, भारत के साथ हमारे संबंधों के लिए भी यही सच है। चीन और अमेरिका दोनों शक्तियों के बीच संघर्ष बढ़ने की स्थिति में, नेपाल को डर है कि एमसीसी के अनुमोदन से नेपाल के क्षेत्र में अमेरिकी सैनिकों का प्रवेश आसान हो जाएगा। इसके अलावा, एमसीसी के खिलाफ अन्य आपत्तियां भी हैं जैसे परियोजनाओं से अमेरिका को होने वाला छिपा हुआ आर्थिक लाभ और इसके अनुसमर्थन से चीन को नाराज होने का डर।

सॉफ्ट पावर

नेपाल और साफ्ट पावर महाशक्तियों की विदेश नीति औपचारिक कूटनीति को किसी राज्य का प्राथमिक शांति स्थापित करने वाला उपकरण माना जाता है। औपचारिक कूटनीति सरकार-दर-सरकार कूटनीति है– जिसे ट्रैक-I डिप्लोमेसी भी कहा जाता है जो विदेशी सरकारों (लिखित दस्तावेज,

 ISSN 0976-0849

बैठकें, शिखर सम्मेलन, राजनयिक दौरे इत्यादि) के साथ संवाद करने के लिए संचार के औपचारिक, पारंपरिक चौनलों के माध्यम से जाती है। इस प्रकार की कूटनीति एक राष्ट्र के राजनयिकों द्वारा दूसरे राष्ट्र या अंतर्राष्ट्रीय संगठन के राजनयिकों और अन्य अधिकारियों के साथ संचालित की जाती है। औपचारिक कूटनीति बातचीत और परिणामों की दिशा को प्रभावित करने के लिए राजनीतिक शक्ति का उपयोग कर सकती है। यदि कोई पार्टी अंतर्राष्ट्रीय संधियों के विरुद्ध जाने का निर्णय लेती है तो इस शक्ति में सैन्य बल की धमकी का उपयोग शामिल हो सकता है। यह सामग्री और वित्तीय संसाधनों तक पहुंच सकता है जो बातचीत में उच्च लाभ और लचीलापन देते हैं (बरकोविच और ह्यूस्टन, 2000), और विभिन्न खुफिया स्रोतों (स्टीन और लुईस, 1996) के उपयोग के कारण पार्टियों के हितों के बारे में गहन ज्ञान का उपयोग करते हैं। इस संबंध में, सॉफ्ट पावर महाशक्तियों के प्रति नेपाल की औपचारिक कूटनीति का अध्ययन नेपाल की विदेश नीतियों को लागू करने के लिए चर्चा का एक और आयाम है। नेपाल और सॉफ्ट पावर महाशक्तियों के बीच राजनयिक जुड़ाव, राजनयिक मिशन, द्विपक्षीय आदान-प्रदान, द्विपक्षीय समझौते, राजनीतिक यात्राएं, शिखर सम्मेलन और राजनयिक यात्राएं और विदेश नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति पर उनका प्रभाव बहुत महत्व रखता है। नेपाल जैसे छोटे देश के लिए राजनयिक संबंधों में कौशल उसकी विदेश नीति के लक्ष्यों, उद्देश्यों और रणनीतियों को प्राप्त करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। नेपाल को दुनिया की नरम शक्ति वाली महाशक्तियों के साथ उचित कूटनीतिक तकनीकों और सफल नियमों को अपनाना होगा और उचित लेन-देन की नीति अपनानी होगी और आर्थिक कूटनीति को बढ़ावा देना होगा और इसे लोगों और देश के अनुकूल बनाना होगा।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों, कूटनीति, राजनीति, अर्थशास्त्र और इतिहास का पर्याप्त ज्ञान रखने वाले उचित और योग्य व्यक्तियों की राजनयिक के रूप में नियुक्ति, नेपाल की स्थिति को बढ़ाती है और अंतरराष्ट्रीय मामलों में राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देती है। इस संबंध में, विश्व समुदाय के लिए नेपाल की राजनयिक भागीदारी और औपचारिक कूटनीति उसके विकास को बढ़ाने और विदेश नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति के माध्यम से राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने का एक अवसर है। एक सॉफ्ट पावर महाशक्ति की औपचारिक कूटनीति इंगित करती है कि विशेष देशों की व्यापक राजनयिक भागीदारी और औपचारिक कूटनीति की मात्र में व्यापक सॉफ्ट पावर क्षमताएं और सॉफ्ट पावर जुटाना है। इसलिए, सॉफ्ट पावर महाशक्तियों के साथ नेपाल के राजनयिक संबंधों का उसके सॉफ्ट पावर उपयोग के साथ भी एक मजबूत संबंध है। नेपाल जापान के साथ राजनयिक संबंधों की स्थापना के साथ सॉफ्ट पावर महाशक्तियों के साथ जुड़ रहा है।

इंडो-पैसिफिक रणनीतियां और भारत

भू-राजनीतिक और भू- कूटयोजनात्मक दृष्टिकोण से भारत की सुरक्षा में, नेपाल का एक

महत्त्वपूर्ण सामरिक महत्व है। चीन, नेपाल में पाँव पसारने में लगा हुआ हैं। नेपाल में अस्थिरता और घातक तत्वों का जमाव, भारतीय सुरक्षा की दृष्टि से, सजग रहने की जोरदार चेतावनी है, जिसे अब अनदेखा नहीं किया जा सकता है। भारत और नेपाल एक दूसरे से अनेक बन्धनों में जुड़े दो ऐसे राष्ट्र हैं, जिनके सम्बन्धों की विशेषताओं को, पूरी तरह समझने के लिए, इस क्षेत्र की भौगोलिक, राजनीतिक स्थिति को सदैव ध्यान में रखना पड़ेगा। धार्मिक सांस्कृतिक, भाषायी समरूपता के अलावा, दोनों राष्ट्रों की राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध भी इस घनिष्ठता का बोध कराती है। इस परिप्रेक्ष्य में, भारत एवं नेपाल के सम्बन्ध, दीर्घ काल से एक विशेष मित्रता का बोध कराते हैं, जिनका स्पष्ट परिदृश्य, दोनों राष्ट्रों के बीच, समय-समय पर सम्पन्न सन्धियों की लम्बी श्रृंखला में मिलता है। विभिन्न देशों के क्षेत्रीय समूहों की इंडो-पैसिफिक रणनीतियों की रूपरेखा काफी भिन्न होती है। एक चरम पर, इंडो-पैसिफिक का अमेरिकी दृष्टिकोण चीन को नियंत्रित करने के इर्द-गिर्द घूमता है। दूसरी ओर, आसियान और यूरोपीय रणनीतियों ने नेविगेशन की स्वतंत्रता के संबंध में चिंताओं को व्यक्त करने के बावजूद, एक समावेशी दृष्टिकोण अपनाया है जो चीन का समर्थन करता है। हालाँकि, कई मतभेदों के बावजूद, ये रणनीतियाँ कई बिंदुओं पर मिलती हैं।

इसके अलावा, भारत की आईपीओआई और अन्य देशों और ब्लॉकों की इंडो-पैसिफिक रणनीतियां कई कार्रवाई योग्य बिंदुओं पर तालमेल साझा करती हैं, जो भारत के लिए कई अवसर खोलती हैं। फिर भी संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति भारत के दृष्टिकोण में यह बदलाव, अन्य राजनयिक प्रयासों के अलावा, भारत के प्रति अमेरिकी नीति में बदलाव के साथ-साथ नई दिल्ली के अपने बदलते पड़ोस और सुरक्षा माहौल का एक संयोजन है, जो कि बढ़ती चीनी उपस्थिति और बढ़ते सहयोग के कारण हुआ है। इंडो-पैसिफिक क्षेत्र के कई देश खासतौर पर ऑस्ट्रेलिया, जापान, अमेरिका और इंडोनेशिया आदि भारत की भूमिका को इस क्षेत्र में काफी महत्त्वपूर्ण मानते हैं। ये सभी देश दक्षिण चीन सागर और पूर्वी चीन सागर में चीन का मुकाबला करने के लिये भारत को एक विकल्प के रूप में देख रहे हैं। हालाँकि भारत इस क्षेत्र में शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देने की दशा में कार्य करने को तत्पर है, भारत के लिये इंडो-पैसिफिक क्षेत्र का अर्थ एक मुक्त, खुले और समावेशी क्षेत्र से है। भारत हिंद महासागर और प्रशांत महासागर के सभी देशों और उन सभी देशों को इंडो-पैसिफिक क्षेत्र की परिभाषा में शामिल करता है, जिनके हित इस क्षेत्र से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार भारत इंडो-पैसिफिक क्षेत्र की अमेरिकी परिभाषा का अनुपालन नहीं करता है, जिसका एकमात्र लक्ष्य चीन के प्रभाव को सीमित करना अथवा समाप्त करना है।

निष्कर्ष

संयुक्त राज्य अमेरिका की एशिया प्रशांत रणनीति (एपीएस) ने बड़ी सफलता हासिल की है, और इसे आक्रामक रूप से इंडो-पैसिफिक रणनीति (आईपीएस) के रूप में फिर से लॉन्च किया

 ISSN 0976-0849

गया है, जो अधिक सैन्य-उन्मुख है। इस दावे के बावजूद कि वह एक स्वतंत्र और शांतिपूर्ण इंडो-पैसिफिक क्षेत्र बनाना चाहता है, संयुक्त राज्य अमेरिका की इंडो-पैसिफिक नीति चीन की बढ़त को रोकना चाहती है। भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के बावजूद, नेपाल ने एमसीसी की पुष्टि की यह BRI का हस्ताक्षरकर्ता भी है। इसका मतलब यह है कि नेपाल उचित रूप से महान शक्तियों के साथ जुड़ रहा है, और अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता को अपने राष्ट्रीय हित और विकास पर हावी नहीं होने दे रहा है। चूंकि तिब्बत, चीन और दक्षिण और मध्य एशिया क्षेत्र में एक भू-राजनीतिक हॉटस्पॉट बना हुआ है, नेपाल का रणनीतिक मूल्य इस तथ्य में निहित है कि यह हिमालयी भौगोलिक बाधा के माध्यम से प्रवेश बिंदु है। दुनिया का हृदय स्थल अब यूरेशिया नहीं, बल्कि एशिया प्रशांत है। संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिकारी इसे इंडो-पैसिफिक क्षेत्र के रूप में संदर्भित करते हैं। विश्व शक्तियों ने दुनिया पर शासन करने के लिए हिंद महासागर और दक्षिण चीन सागर को नियंत्रित करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। अमेरिका ने दक्षिण चीन सागर और हिंद महासागर में अपनी सैन्य उपस्थिति और अभ्यास को बढ़ाया है, जिसे बड़ी सैन्य भागीदारी के रूप में माना गया है। नेपाल ने परंपरागत रूप से एक तटस्थ विदेश नीति बनाए रखी है और क्षेत्रीय शक्ति गतिशीलता में शामिल होने के बारे में सतर्क रहा है। पिछले 70 वर्षों के दौरान उच्च स्तरीय यात्राओं के आदान-प्रदान ने नेपाल और अमेरिका के बीच द्विपक्षीय संबंधों को और मजबूत, समृद्ध और गहरा बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

* एस.डी. मुनि, "फॉरेन पालिसी ऑफ नेपाल", न्यू दिल्ली, 1973
* सम सामायिक, घटना चक्र, जून-2023
* राबर्ट ए लेविन और डोनाल्ड टी कम्पबेल, "इथनो सीटिज्म: थ्योरीज ऑफ कानफ्लीक्ट", कनाडा, 1972
* संजय कुमार, नेपाल एज ए फैक्टर इंडियन सिक्युरिटीज, अप्रकाशित प्रोजेक्ट वर्क, आई.सी.एस.एस.आर., 2008
* रमाकान्त, "हिन्दुस्तान सम्पादकीय", 27 अगस्त, 2008
* Strategic Digest Online,Jan. 2024 IDSA, New Delhi
* Hindustan Times, (New Delhi), 16 Dec. 2023
* Kathmandu Post (Kathmandu), 28 Feb. 2024
* Mofa Nepal. Mcc - Nepal Report, 2023

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 127-136

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

प्राकृत भाषा का विकास : एक अवलोकन

डॉ. विकास चौधरी*

सारांश: प्राकृत भाषा और साहित्य की एक विशाल परंपरा रही है, प्राकृत भाषा तीर्थंकर परंपरा से चली आ रही है। इस भाषा में अनेक शिलालेख, अभिलेख, स्तम्भ लेख एवं पांडुलिपियों आदि की रचना हुई है। प्राकृत भाषा वह भाषा है जो जन सामान्य के द्वारा प्रयोग में लाई जाती थी। इस भाषा में सामान्य जनमानस आपसी व्यवहार किया करते थे, परंतु इसका यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि प्राकृत भाषा प्राचीन ज्ञान-विज्ञान, तत्वज्ञान, संस्कृति और इतिहास तथा लोक परंपराओं आदि के ज्ञान से परिपूर्ण नहीं है। अपितु यह तो इनके विविध और विशाल साहित्य को अपने भीतर संजोए हुए हैं। यह प्राकृत भाषा कभी एक सी नहीं रही देशकाल, भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव से यह सदैव परिवर्तित होती रही, इसलिए इस भाषा के अनेक भेद-प्रभेद जैसे प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी, महाराष्ट्री, पैशाची, ढक्की आदि जैसे भेद पाए जाते हैं।

प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के संबंध में अनेक अनेक विसंगतियां है। विद्वतजन प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के संदर्भ में एकमत नहीं हैं, परन्तु फिर भी प्राकृत भाषा में निबद्ध साहित्य अपने भीतर संस्कृति और सभ्यता से अपने आप में परिपूर्ण है। यह अपना परिचय कराने में सक्षम है। इसीलिए भाषा शास्त्रियों की दृष्टि में प्राकृत भाषा सरल, सुबोध और माधुर्य गुणों के ओत-प्रोत होने से प्रजा और लोक की भाषा कही गई है।

इस प्रकार शोधपत्र में भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा को दृष्टिगत रखते प्राकृत भाषा में निबद्ध विपुल साहित्य, विलुप्त होती प्राकृत भाषा की महत्ता, उसके भेद-प्रभेद आदि को दर्शाने का यत्न किया गया है।

बीजशब्द: प्राकृत का अर्थ, प्राकृत की प्रकृति, अर्धमागधी, शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री, पैशाची

*सहायक आचार्य, प्राकृत विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), बी-4 कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110016

 ISSN 0976-0849

प्रस्तावना-

भारतीय भाषाओं के विकास में जितना योगदान संस्कृत भाषा का है उतना ही योगदान प्राकृत भाषा का भी है। संस्कृत भाषा जहाँ राजकार्य में प्रयुक्त होती थी वहीं प्राकृत भाषा को जन भाषा के रूप में जाना जाता था। इसका स्वरूप देशकाल, व्यक्तिगत उच्चारण आदि के भेद से परिवर्तित होता रहा है, परन्तु फिर भी यह भाषा अपने अस्तित्व को बनाए रखते हुए धर्माश्रय और लोकाश्रय के साथ-साथ राजाश्रय को भी प्राप्त हुई। जब भगवान महावीर और भगवान बुद्ध ने जन भाषा को अपने उपदेशों की भाषा बनायीं और उपदेश दिए फलस्वरूप प्राकृत भाषा का महत्व बढ़ा कभी प्राकृत भाषा को देववाणी, कभी ऋषि भाषा, कभी आर्ष भाषा तो कभी तीर्थंकर की वाणी से विभूषित किया गया। भगवती सूत्र में तो इसे **"देवाणं अर्द्धमागहीए भासाए भासंती"** अर्थात देवों की भाषा अर्धमागधी प्राकृत कहा है। इस कालक्रम के पश्चात् संस्कृतानुरागी विद्वानों और कवियों ने भी प्राकृत भाषा में अथाह लेखन किया संस्कृत ग्रंथों में भी प्राकृत भाषाओँ का उत्तरोत्तर विकास होने लगा और संस्कृत प्राकृत मिश्रित युग का पदार्पण हुआ। अतः इसी कारण भारतीय संस्कृति और सभ्यता को जानने के लिए जितनी आवश्यकता संस्कृत भाषा की है उतनी ही आवश्यकता प्राकृत भाषा की भी है।

संस्कृत भाषा परिमार्जित और परिष्कृत भाषा होने के कारण शिक्षित, श्रेष्ठजनों की भाषा कहलायी। संस्कृत भाषा सुसंस्कृत, शुद्ध और परिष्कृत स्वरूप में सदैव ही बनी रही, वहीं दूसरी ओर प्राकृत भाषा जनभाषा, जन बोली, प्रकृति से उत्पन्न सामान्य जन बोली के रूप में उपस्थित रही है। इस भाषा का प्रयोग आम बोलचाल की भाषा में होता था। प्राकृत भाषा की प्रकृति सदा परिवर्तनशील रही है। भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर यह भाषा मागधी, अवन्ती, प्राच्य, शौरसेनी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, पैशाची आदि भेदों के रूप में विद्यमान रही। यह भेद भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ही रहे हैं।

प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में नेमीचन्द शास्त्री जी कहते हैं– "व्यवहार रूप में देखा जाए तो जो भाषा, प्रकृति, अर्थस्वभाव सिद्ध हो और जन सामान्य द्वारा व्यवहार में लायी जाती हो वह प्राकृत है और संस्कारित कहीं जाने वाली संस्कृत भाषा से वह भिन्न है।"[1] हम जिसे वैदिक युग या छान्दस के नाम से जानते है उस समय भी निश्चित ही कोई न कोई भाषा ऐसी थी जो छान्दस से पूर्व या सामानांतर व्यव्हार में लायी जाती थी क्योंकि छान्दस तो शिक्षित लोगों की भाषा थी और अशिक्षित ग्राम्यजन की भाषा कुछ तो रही होगी। वह निश्चित ही प्राकृत रही होगी क्योंकि छान्दस में भी प्राकृत के अनेक शब्द ज्यों के त्यों पाए जाते है।

अथर्ववेद के पृथ्वीसुक्त में तत्कालीक पृथ्वी पर अनेक बोलियों के बोले जाने के उल्लेख है- **जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं** (12/1/45)। आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण में भी जनभाषा

का संकेत मिलता है– देवी सीता की खोज में कौन लंका जाये जब यह प्रश्न उठता है तो उस समय बुद्धिमान, सामर्थ्यवान, भाषाविद्, पराक्रमी एक मात्र हनुमान ही सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं। हनुमानजी देवी सीता को अशोक वाटिका में राक्षसियों के बीच घि रे देख वृक्ष की शाखाओं में छुपकर बैठ जाते हैं और विचार करने लगते हैं–

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृतम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥ (सुन्दरकाण्ड 30/18)

यदि मैं द्विज की भाँति संस्कृत वाणी का प्रयोग करूँगा तो सीताजी मुझे रावण समझकर भयभीत हो जाएँगी। ऐसी दशा में अवश्य ही मुझे उस सार्थक भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिसे अयोध्या और उसके आस-पास की सामान्य जनता बोलती है। इससे प्रतीत होता है कि लंका की सामान्य भाषा संस्कृत थी, जबकि अयोध्या की जन-साधारण की भाषा संस्कृत से भिन्न थी। निःसंदेह ही वह जनभाषा रही थी।

प्राकृत भाषा के सम्बंध में कुछ विद्वान प्राकृत को केवल स्त्रियों, बालकों, समाज के निम्नवर्ग के पात्रों की भाषा मानते हैं परन्तु प्राकृत भाषा केवल स्त्रियों, श्रमणों और निम्न वर्ग के पात्रों की ही भाषा नहीं थी अपितु वैदिक पण्डितों की भी भाषा थी।[2] भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है–

प्राकृतं संस्कृतं च अपि चातुर्वर्ण्य सम आश्रयम्।18/28

प्राकृत एवं संस्कृत दोनों भाषाएँ चारों वर्णों की भाषा है। इसीलिए महाकवि प्रवरसेन, वाक्पतिराज, शालिवाहन, राजशेखर, कालिदास, भास, भवभूति आदि वैदिक और संस्कृत के विद्वान कवियों ने प्राकृत भाषा में काव्य लिखे और वररुचि, लक्ष्मीधर, मार्कण्डेय आदि जैसे श्रेष्ट व्याकरणकारों ने प्राकृत के व्याकरण ग्रन्थ लिखे। इस तरह प्राकृत भाषा सामान्य जन से लेकर विद्वानों तक की भाषा थी। संस्कृत के स्वप्नवासदत्तम्, प्रतिज्ञायोगन्धरायण, चारुदत्त, प्रियदर्शिका, रत्नावली,[3] अभिज्ञानशाकुन्तलम्[4] आदि नाट्य ग्रन्थ तथा काव्यप्रकाश[5] साहित्य दर्पण आदि लक्षण ग्रन्थों में इसके प्रमाण उपस्थित हैं।

प्राकृत भाषा की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में दो विचारधारायें प्रचलित हैं–

पहला, प्राकृत की प्रकृति जनभाषा है।

(1) प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धं प्राकृतम्।

(2) प्राक् पूर्वं कृतं प्राकृतं बालमहिलादि सुबोधं सकल भाषा निबन्ध भूतं वचनमुच्यते। - पाणिन्यादि व्याकरणोदित शब्द लक्षणेन संस्करणात् संस्कृतमुच्यते।

(3) प्रकृतीनां साधारणजनानामिदं प्राकृतम्।

 ISSN 0976-0849

इन व्युत्पत्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राकृत की प्रकृति जनभाषा है और यह सभी भाषाओं की जननी है। जैसाकि वाक्पतिराजकृत गउडवहो में कहा गया है–

सयलाओ इमं वाया, विसन्ति एत्तो य णेंति वायाओ।
एन्ति समुद्द चिय, णेंति सायराओ च्चिय जलाइं॥[6]

सभी भाषाएँ इसी प्राकृत से निकलती हैं और इसी को प्राप्त होती है– जैसे सभी नदियों का जल समुद्र में ही प्रवेश करता है और समुद्र से ही बाहर निकल कर नदियों के रूप में परिणत हो जाता है। अतः कवि वाक्पतिराज के अनुसार प्राकृत भाषा की उत्पत्ति किसी भी भाषा से नहीं हुई है अपितु सभी भाषाएं प्राकृत भाषा से ही उत्पन्न है। प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में 11वीं शताब्दी में आचार्य नमिसाधू काव्यालंकार की टीका में प्रकृति का अर्थ 'लोक' अथवा 'प्रजा' कहते है[7]–

व्याकरण आदि के संस्कार से विहीन, स्वाभाविक वचन-व्यापार, उससे उत्पन्न भाषा प्राकृत है। अथवा जो पहले हो, उसे प्राकृत कहते हैं। जो बालक, महिला आदि को सरलता से समझ में आ सकती हो और जो समस्त भाषाओं की मूल हो, वह प्राकृत है। इस प्रकार प्राकृत **'लोक'** या **'प्रजा'** की बोली थी।

महाकवि कालिदास प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सप्तम अंक में राजा दुष्यन्त– राजा दुष्यन्त यदि आप और प्रिय करना चाहते हैं तो यह भरत वाक्य पूरा हो–

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः, सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः, पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः॥[8]

प्रकृतिहिताय- प्रजाजनों के कल्याण के लिए।

अनुवाद– राजा प्रजाजनों के कल्याण के लिए तत्पर हों, शास्त्रश्रवण से ज्ञानगरिष्ठ कवियों की वाणी पूर्ण सत्कार प्राप्त करे, सर्वशक्तिमान् स्वयम्भू भगवान् शिव मेरे भी पुनर्जन्म को नष्ट करें।

इसी प्रकार हाथी गुम्फा शिलालेख में सम्राट खारवेल लिखवाते हैं–

सवुयान पटिसंठपनं च कारयति (॥)
पनतीसाहि सतसह- सेहि पकतियो च रंजयति (।)

सभी उद्यानों का प्रतिस्थापन (सफाई, पौधे लगवाना व देख-रेख करवाना आदि) करवाया। (इन सब कार्यों के लिए) पैंतीस लाख स्वर्णमुद्राओं (खर्च करके) के द्वारा प्रजाजनों के कल्याण के लिए कार्य किए। यहाँ भी **'प्रकृति'** का अर्थ **'प्रजा'** से है। इस प्रकार प्रकृति का अर्थ **'लोक'** अथवा **'प्रजा'** से है और लोक या साधारण जन द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली बोली प्राकृत थी **'प्राकृत**

जनानां भाषा प्राकृतम्।

प्राकृतभाषा के सम्बन्ध में दूसरा पक्ष भी है जो प्राकृत की प्रकृति संस्कृत मानता है–

(1) प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्।[9]

(2) प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं प्राकृतमुच्यते।[10]

इस प्रकार यहाँ संस्कृत के बाद कही जाने वाली भाषा प्राकृत कही गई है। परन्तु ग्रन्थों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि संस्कृत व्याकरण के पश्चात् प्राकृत व्याकरण लिखा गया है और वह प्राकृत व्याकरण भी संस्कृत में ही लिखा गया है, इसलिए प्राकृत की प्रकृति संस्कृत है और उसके बाद लिखी गई है।

प्राचीन समय में धार्मिक विधियों और शास्त्रसभाओं में प्राकृत का प्रचलन नहीं था परन्तु जब प्राकृत भाषा को भगवान् महावीर और बुद्ध ने सम्मान दिया, सम्राट अशोक ने उसे राजभाषा का गौरव प्रदान किया तथा शिलालेखों आदि में उसका प्रयोग किया जाने लगा तब प्राकृत भाषा भी लोक भाषा से निकलकर साहित्यों में प्रयुक्त होने लगी। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है की इससे पहले प्राकृत भाषा का प्रचलन नहीं था। पाणिनि ने अपने व्याकरण ग्रथ में विभिन्न प्राकृतों का उल्लेख किया है साथ ही नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि अपने ग्रन्थ जिसे पंचम वेद[11] के रूप में स्वीकार किया जाता है उसमे विभिन्न प्राकृतों का निर्देशन किया है साथ ही कौनसा पात्र कौनसी प्राकृत बोलेगा इस पर भी विचार किया गया है। इससे यह बात स्पष्ट है हो जाती है कि भरतमुनि ने जिस समय इस ग्रन्थ की रचना की होगी उस समय में प्राकृत नाटकों का विस्तार हो चूका था। प्राकृत भाषा से रंगमंच सराभोर हो चुका था उस समय तक प्राकृत भाषा में नाट्यमंचन होता रहा होगा और भरतमुनि ने इन नाटकों का दिग्दर्शन (देखा) किया होगा। उसी के आधार पर ही उन्होंने अपने ग्रन्थ नाटयशास्त्र में प्राकृत नाटकों के निर्देशन के साथ-साथ प्राकृत भाषाओं के सम्बन्ध में, पात्रों के सम्बन्ध में भी लेखनी चलाई। संभव है कि उस समय तक प्राकृत भाषा में नाटक लिखे जा चुके हो यह मात्र अनुमान है ऐसे विषयों पर वर्तमान में शोध की आवश्यकता है।

प्राकृत भाषा मुख्यतः लोक जीवन, लोक संस्कृति, मुखसुख की भाषा है। इसमें भाषा साहित्य के मानव जीवन की स्वाभाविक वृत्तियों और नैसर्गिक गुणों की सहज सरल अभिव्यक्ति हुई है। यही कारण रहा है कि सम्राट अशोक, सम्राट खारवेल आदि अनेक प्राचीन शिलालेख प्राकृत भाषा में निबद्ध कराए जिससे जन सामान्य भली-भाँति उन्हें समझ सके।

प्राकृत भाषा वास्तव में सहज, सरल, सुबोध और माधुर्य के ओतप्रोत है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने इस भाषा की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। गाहा सत्तसइ में कवि हाल प्राकृत काव्य को **'अमिअं पाउअकव्वं'** अमृत काव्य कहकर उसकी प्रसंशा करते है–

 ISSN 0976-0849

अमिअं पाउअकव्वं पढिडं सोउं य जे ण आणन्ति।
कामस्य तत्त-तत्तिं कुणंति, ते कहँ ण लज्जति॥

प्राकृत भाषा के भेद प्रभेद

संस्कृत भाषा की भाँति प्राकृत भाषा के प्रयोगों में एकरूपता नहीं है। प्राकृत भाषा में भौगोलिक परिस्थितियाँ, व्यवहार रूप, क्षेत्र और व्यवहारिक दृष्टिकोण से प्राकृत भाषा में भेद-प्रभेद पाए जाते हैं, जिनका विवेचन इस प्रकार है–

अर्धमागधी प्राकृत –

जैन आगमों की भाषा के रूप में अर्धमगधी प्राकृत को जाना जाता है। प्राचीन काल में इस भाषा का बहुतायत रूप में प्रयोग मिलता था। यह मगध प्रदेश के अर्धांश में बोले जाने वाली भाषा होने के कारण अर्धमगधी कहलायी। इसमें मागधी भाषा की कतिपय विशेषताएँ होने के कारण इसे अर्धमगधी कहा जाता है।[12] इसे भगवान महावीर के उपदेशों की भाषा भी कहा जाता है। अर्धमागधी का मूल स्थान पश्चिमी मगध और शूरसेन (मथूरा) का मध्यवर्ती प्रदेश अयोध्या है। इसी कारणवश अर्धमगधी में कतिपय शौरसेनी के भी उदाहरण देखने को मिलते हैं।

शौरसेनी प्राकृत–

शौरसेनी प्राकृत शूरसेन अर्थात बृज मण्डल, मथुरा की भाषा थी। इस भाषा का प्रचार-प्रसार मध्यप्रदेश में भी हुआ।[13] दिगम्बर जैन आगम षट्खण्डागम आदि की रचना इसी भाषा में की गई है। शौरसेनी प्राकृत के स्वरूप को निर्धारित करते हुए वररूची ने कहा है– **'प्रकृति शौरसेनी'**।[14] इस प्रकार शौरसेनी भाषा का विकास भी बहुत अधिक हुआ है। जिसके कारण संस्कृत नाटकों में भी इसके प्रयोग होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।[15] प्राचीन नाटकों में शौरसेनी भाषा का अधिकतम प्रयोग मिलता है।

मागधी प्राकृत–

मागधी प्राकृत का सम्बन्ध वैदिक भाषा की प्राच्य विभाषा से माना जाता है।[16] मागधी प्राकृत कोई निश्चित भाषा नहीं थी वस्तुतः यह तो कई बोलियों का सम्मिश्रण थी।[17] यही कारण है कि मागधी भाषा के लिए प्रदेश निश्चित कर पाना कठिन है परन्तु फिर भी विद्वानों ने मगध क्षेत्र में बोले जाने वाली भाषा को मागधी प्राकृत का नाम दिया है।

इसकी प्राचीनता का बोध शिलालेखों के आधार पर होता है। सम्राट अशोक के अभिलेखों से भी यही सिद्ध होता है कि मागधी उस समय की राजभाषा थी।[18] 'कीथ' ने भी अशोक के अभिलेखों के आधार पर कौशल प्रदेश की भाषा (मागधी) को राष्ट्रभाषा कहा। मगध देश में बोली

जाने वाली तथा मगध को राजधानी बनाने के बाद अशोक ने इसे राष्ट्र भाषा कहा होगा। शकारी, चाण्डाली, शाबरी जैसी बोलियाँ मागधी प्राकृत की प्रशाखाओं के रूप में जानी जाती है।[19]

महाराष्ट्री प्राकृत-

महाराष्ट्री प्राकृत को साहित्यिक प्राकृत के नाम से जाना जाता है। महाराष्ट्री प्राकृत का ही अन्य प्रचलित नाम सामान्य प्राकृत भी है। कई विद्वानों ने महाराष्ट्री प्राकृत इसका यह नाम उत्पत्ति स्थल के कारण अधिक प्रचलन में माना है। महाराष्ट्री का मूल क्षेत्र महाराष्ट्र प्रान्त है। वररूचि ने प्राकृत प्रकाश में 'शेषं महाराष्ट्रीवत्'[20] कहकर महाराष्ट्री की विशेषता का उल्लेख किया। महाकवि दण्डी ने भी इसे उत्तम प्राकृत कहकर इसकी प्रसंशा की है-

महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्॥[21]

डॉ. हौर्नले के अनुसार महाराष्ट्री प्राकृत विशाल राष्ट्र की भाषा है। यह मरुप्रदेश तथा मध्यप्रदेश प्रभृति देश इसी विशाल राष्ट्र के अन्तर्गत है। महाराष्ट्र प्रदेश में जो प्राचीन प्राकृत प्रचलित थी, उसी प्रचलन के आधार पर काव्यों और नाटकों में महाराष्ट्री प्राकृत का जन्म हुआ। महाराष्ट्री प्राकृत की विशेषताओं में संस्कृत के वर्णों का अधिकतः लोप हो जाने की प्रवृत्ति पायी जाती है।[22]

महाराष्ट्री प्राकृत में विपुल साहित्य उपलब्ध है। महाराष्ट्री प्राकृत गीतिकाव्य (गाहासत्तसई) के रूप में विशेषरूप से जानी जाती है। महाराष्ट्री प्राकृत में प्रबन्ध अथवा महाकाव्य भी लिखे गये हैं। संस्कृत नाटकों के पद्य महाराष्ट्री प्राकृत के हैं और गद्य शौरसेनी प्राकृत के। 'हा' रचित 'गाहासत्तसई' सबसे प्रसिद्ध रचना है।[23] इसके अतिरिक्त सेतुबन्ध, वज्जालग्गं, गउडवहो, कुमारपाल चरित, समराइच्चकहा, पउमचरिय, उपदेशमाला आदि ग्रन्थ प्रचलित हुए। शौरसैनी में गद्य भाग और महाराष्ट्री में पद्य भाग सभी नाटकों में पाया जाता है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि महाराष्ट्री प्राकृत अपने समय की साहित्यिक प्राकृत थी, क्योंकि महाराष्ट्री प्राकृत में काव्यगत सभी विशेषताएँ देखी जाती थी। इसलिए आज भी इसे साहित्यिक प्राकृत के नाम से जाना जाता है।

पैशाची प्राकृत-

पैशाची प्राकृत को ही भूतभाषा के नाम से जाना जाता है।[24] इसे पिशाचों की भाषा भी कहते हैं। पैशाची प्राकृत का समय ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर पाँचवी शताब्दी तक माना जाता है। इसके पूर्व इस भाषा का कोई भी साहित्य अथवा उदाहरण उपलब्ध नहीं होता है। पैशाची प्राकृत किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं थी अपितु यह भिन्न-भिन्न प्रदेशों, जातियों आदि के द्वारा बोले जाने वाली भाषा थी।[25] इसका प्रचार-प्रसार कैकय, शूरसेन, पांचाल आदि जैसे प्रदेशों में हुआ है।[26]

 ISSN 0976-0849

पैशाची प्राकृत में निबद्ध गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' नामक ग्रन्थ संसारभर में प्रसिद्ध है। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अपभ्रंश इत्यादि सभी भाषाओं में यह ग्रन्थ अपनी प्रसिद्धि को प्राप्त है। जिसे आधार बनाकर अनेक कवियों, लेखकों ने अपने काव्यों का सृजन किया है। यह भारतीय कथा साहित्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जाता है। आचार्य बलदेव 'बृहत्कथा' के सन्दर्भ में कहते हैं- "मुद्राराक्षस, मृच्छकटिकम्, अविमारक, दरिद्रचारुदत्त, नागानन्द, दशकुमारचरित, कादम्बरी आदि जैसी अनेक कथा ग्रन्थों, नाटकों आदि में जो चमत्कारपूर्ण कथाएँ उपलब्ध होती हैं वे सब बृहत्कथा की ही देन है।"[27]

इनके अतिरिक्त प्राकृत भाषाओँ में शकारी, चाण्डाली, शाबरी, ढक्की, और अभीरी आदि भेद कहे गए है जो उपर्युद्र प्राकृतों की उपभाषाओं के रूप में जानी जाती है।

प्राकृत और संस्कृत का एक दूसरे पर प्रभाव -

प्राकृत जनभाषा के रूप में वैदिक काल में थी। विद्वान् ऋषियों ने उस समय की साहित्यिक भाषा को छान्दस् नाम देकर उसे जनभाषा से पृथक् किया होगा। परन्तु उसमें जनभाषा के प्रचुर तत्त्व विद्यमान रह गए होंगे। कालान्तर में पाणिनि आदि आचार्यों के द्वारा संस्कृत व्याकरणग्रन्थ लिखे गए, जिससे जनभाषा और संस्कृत दोनों समानान्तर रूप से चलने लगीं। समानान्तर भाषायें होने से दोनों पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। संस्कृत नाटकों को देखने से ज्ञात होता है कि राजा आदि सुशिक्षित लोग संस्कृत बोलते हैं और अशिक्षित निम्न पात्र तथा स्त्रियाँ विभिन्न प्राकृतों में व्यवहार करते हैं। राजा आदि प्राकृत -समझ लेते हैं और निम्नवर्ग के पात्रदि भी संस्कृत समझ लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत विद्वानों की साहित्यिक भाषा थी और अशिक्षित या अर्धशिक्षित जनसमुदाय की भाषा प्राकृत थी, परन्तु वे सभी प्रायः दोनों प्रकार की भाषायें समझते थे। परस्पर व्यवहार होने से दोनों भाषाओं पर एक दूसरे का प्रभाव निश्चित है।

प्राकृत साहित्य की विविधता -

संस्कृत की ऐसी कोई भी विधा नहीं है जिस पर प्राकृत में साहित्य न लिखा गया हो। जैसे- महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरितकाव्य, मुक्तक, चम्पू, कथा, सट्टक (नाटक), शिलालेख, व्याकरण, दर्शन, अध्यात्म, छन्द, कोश, अलङ्कार आदि। इसके अतिरिक्त संस्कृत के नाट्य साहित्य का तो अधिकांश भाग प्राकृत में ही निबद्ध है। नाट्य की सट्टकविधा केवल प्राकृत में है। भाषा की मधुरता तथा भावाभिव्यक्ति जितनी अधिक प्राञ्जल प्राकृत में है उतनी संस्कृत में नहीं। इसीलिए संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों में प्राकृत के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। कवि राजशेखर ने अपने सट्टक (कर्पूरमंजरी) में प्राकृत और संस्कृत की तुलना करते हुए संस्कृत को कठोर कर्कश और प्राकृत को रसपूर्ण सुकुमार कहा है-

परुसा सक्कअबंधा पाउअबंधो वि होइ सुउमारो।
पुरिसमहिलाणं जेतिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं।। [28]

निष्कर्ष-

भारत देश की प्राचीन चिन्तनधारा, सदाचार, संस्कृति, इतिहास, काव्यकला आदि की संवाहिक ये भाषायें प्राकृत और संस्कृत दोनों हैं। काव्य जगत और साहित्य की सांस्कृतिक, सभ्यतागत गहराई और कथ्य भाषा को जानने और समझने के लिए भाषायी अध्ययन नितान्त आवश्यक है। नई पीढ़ी के लिए इन भारतीय प्राच्य विद्याओं, साहित्यों और भाषाओं को पढ़ना, जानना आवश्यक और अनिवार्य है। इसके अभाव में ये प्राच्य विद्याएँ, प्राच्य भाषाएँ समाप्त हो जाएँगी। वर्तमान आधुनिक जनभाषा की कड़ी को बिना प्राकृत और संस्कृत के नहीं जोड़ा जा सकता है। भाषाओं के प्राचीनतम रूप भी इन्हीं के द्वारा खोजे जा सकते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. जैन, जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011, पृ. 9
2. जैन, सुदर्शनलाल, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 426,
3. जैन, जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. 523
4. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 3/13, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1999, पृ. 41
5. मम्मट, काव्यप्रकाश, 2.8, 3.14, 3.16, 3.18, 4.70, साहित्य भण्डार मेरठ, 2001, पृ. 121
6. वाक्पतिराज, गउडवहो, गाथा-93, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, अहमदाबाद, 1975, पृ. 93
7. प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शौरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः।। काव्यालंकार 2/12
8. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7/34, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1999, पृ. 163
9. हेमचंद्राचार्य, सिद्धहेम-शब्दानुशासन 8.1.1, आगम, अहिंसा संस्थान, उदयपुर, 2006
10. मार्कण्डेय, प्राकृतसर्वस्व 1.1, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1985, पृ. 27
11. संस्कृत साहित्य का इतिहास, रामदेव साहू, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1999, पृ. 94
12. शास्त्री, नेमीचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, 1988, पृ. 34
13. जैन, जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, तत्रैव पृ. 30
14. वररुचि, प्राकृत प्रकाश, 10/2, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1985
15. शास्त्री, नेमीचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 84
16. शास्त्री, नेमीचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 88
17. जैन, प्रेमसुमन, प्राकृत काव्य सौरभ, आगम, अहिंसा संस्थान, उदयपुर, 2006, पृ. 19
18. डागा, तारा, प्राकृत साहित्य की रूपरेखा, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2006, पृ. 9

 ISSN 0976-0849

19. पाइय सद्द महण्णओ, प्रस्तावना, पृ. 36
20. प्राकृत प्रकाश, 12/32
21. दण्डी, काव्यादर्श, 1/34, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1958
22. दास, हरगोविन्द, पाइय सद्द महण्णओ, प्रस्तावना, कलकत्ता, 1985, पृ. 38
23. जैन, जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. 34
24. शास्त्री, नेमीचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 90
25. बिहारी, हरदेव, प्राकृत और उसका साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1956, पृ. 29
26. शास्त्री, नेमीचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 90
27. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1996, , पृ. 435-436
28. राजशेखर, कर्पूरमंजरी 1.8, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1972, पृ. 27

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 137-142
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

विद्यार्थी जीवन में योग की महत्ता

डॉ. बलवान सिंह*

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज सप्त दिवसीय व्याख्यानमाला के छठे दिवस (26/08/2024) पर मुख्य वक्ता (डॉ. बलवान सिंह) द्वारा दिया गया उद्बोधन

सारांशः भारतीय संस्कृति में योग एक सनातन जीवन अनुशासन है, जिसकी जड़ें प्राचीन भारतीय दर्शन में परिलक्षित होती है। योग मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक अनुशासन से सम्बन्धित गतिविधियों में संतुलन स्थापित करता है। शरीर, सांस और मन के बीच एकता स्थापित करना योग का प्रधान गुण है। विद्यार्थी जीवन में योग का अपना विशेष महत्व है। यही वो कारक है जो विद्यार्थी जीवन की रीढ़ निर्मित करता है। विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास तथा जीवन शैली और नैतिकता का विकास योग के बिना सम्भव नहीं है। अतः प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी दैनिक दिनचर्या का कुछ समय योग को अवश्य देना चाहिए जिससे कि विद्यार्जन की दिशा में वो एकाग्र होकर अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ अपने भविष्य को भी बेहतर बना सके।

बीजशब्दः पतंजलि, श्रीमद्भगवद्गीता, योग, विद्यार्थी, आदत, योगदर्शन, यौगिक क्रियाएँ

जीवन की प्रत्येक अवस्था में योग का महत्व है। इस दृष्टि से विद्यार्थी जीवनकाल से ही योग का ज्ञान एवं अभ्यास हमारे जीवन का अंग होना चाहिए। प्राचीनकाल में गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य आश्रम के अन्तर्गत योग की शिक्षा के साथ-साथ जीवनोपयोगी अन्य अनेक शिक्षाएँ प्रदान की जाती थीं। विद्यार्थी जीवन में विद्यार्थी का मन एवं तन दोनों ऊर्जा से भरे हुए नमनीय एवं कोमल होते हैं। इस कालावधि में उसे जो भी ज्ञान दिया जाता है, वह उसे तीव्रता से ग्रहण करता है और यही ज्ञान उसके भविष्य के जीवन का आधार बनता है। जैसे-जैसे विद्यार्थी की अवस्था बड़ी होती जाती है, मानसिक एवं शारीरिक तन्तु कठोर होते जाते हैं। उस स्थिति में उसकी आदतों, संस्कारों को परिवर्तित करना तथा योग विद्या में प्रवीण बनाना कठिन होता जाता है। उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह कोई

*पूर्व एसो. प्रोफेसर-रक्षा अध्ययन, महाविद्यालय घटवली बाजार (उनवल), गोरखपुर।

 ISSN 0976-0849

आश्चर्य की बात नहीं है कि बड़े-बड़े ज्ञानियों एवं योगियों जैसे-शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, आचार्य रजनीश, महर्षि महेश योगी आदि के ज्ञान एवं योग की आधारशिला उनके जीवन के प्रारम्भिक काल में ही पड़ चुकी थी।

योग अपने अन्दर का विज्ञान है। आधुनिक मनुष्य का अपने अन्दर अर्थात् अपने अन्तःकरण, मन के विचार, उठते आवेग-संवेग तथा गहराई में चित्त की दशा, सुख-दुःख के भाव, इस ओर उसका कोई ध्यान नहीं जाता है, जबकि समस्त बाह्य उपलब्धियाँ जैसे-धनोपार्जन, नौकरी, मकान, गाड़ी, सम्पत्ति सब कुछ अन्तःकरण की शांति एवं सन्तुष्टि के लिए ही है।

विद्यार्थी को प्रारम्भिक काल से ही उसके अविभावक एवं शिक्षक समाज की बहती धारा के अनुरूप उसी ओर उसे अथक परिश्रम कर अग्रणी बने रहने की शिक्षा प्रदान करने में संलग्न रहते है। कठिन प्रतिस्पर्धा एवं भविष्य की चिन्ता के दौर से गुजरते हुए जब तक वह कोई नौकरी या पद प्राप्त करने में सफल होता है, तब तक उसका मन-सहजता, सरलता, प्रसन्नता, साहचर्य, दया, करूणा, मानवता जैसे महत्वपूर्ण गुणों से धीरे-धीरे बहुत कुछ वंचित हो चुका होता है।

महर्षि पतंजलि ने पातंजलि योगदर्शन में लिखा है कि "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"[1] अर्थात् योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है। चित्त की वृत्तियों (आदतों) के बन्धन से धीरे-धीरे मुक्त हो जाना, उनका दास न रहना, उनके वशीभूत होकर यंत्रवत् कार्य न करना योग है। हम जीवन में जो भी करते हैं, सीखते हैं, संस्कारों के रूप में वह सब चित्त में संग्रहीत होता जाता है। हर क्षण के कृत्य की छाप चित्त में पड़ती जाती है, उसी के अनुरूप हम क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। इन्हीं वृत्तियों के अनुरूप हमें कभी सुख होता है, कभी दुःख होता है। अर्थात् राग-द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, प्रेम, मान-अपमान आदि की अनुभूति इन्हीं चित्त की संग्रहीत वृत्तियों के अनुरूप होती है। धीरे-धीरे चित्त की ये आदतें इतनी मजबूत हो जाती है कि हम क्रोध नहीं करना चाहते, फिर भी अन्दर क्रोध उठता रहता है। हम दुःखी नहीं होना चाहते किन्तु इन वृत्तियों (आदतों) के कारण दुःख में डूबे रहते हैं। चित्त की इस दशा को ठीक करने का उपाय किसी डॉक्टर के पास नहीं है। चित्त को इन वृत्तियों (आदतों) से मुक्त करने का विज्ञान ही 'योग' है। जैसे-जैसे हमारा चित्त इन आदतों से मुक्त होता जाता है, बाहर भागता हुआ मन, शांत होने लगता है। इसी शांति की अवस्था में आनन्द की अनुभूति होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योग के सम्बन्ध में लिखा है कि "समत्वम् योग उच्यते"[2] अर्थात् समत्व (सबके प्रति समदृष्टि होना) ही योग है। जितना-जितना हम विषम होते है, उतना-उतना हमारा सम्पूर्ण शरीरतंत्र एवं मन विकृत होने लगता है। इसी को भेद दृष्टि कहते हैं। जैसे-जैसे हम भेद-भाव से मुक्त होकर सम होने लगते हैं, हमारी मानसिक एवं शारीरिक विकृतियाँ दूर होने लगती हैं। समस्त भेद-भाव से मुक्त हो जाना योग में स्थित हो जाना कहलाता है। गीता में आगे कहा गया है कि,

"योग: कर्मसु कौशलम्"[3] अर्थात् योग में स्थित हुए मनुष्य का कर्म पूर्ण कुशल अर्थात् श्रेष्ठ होता है, उसमें कोई त्रुटि नहीं होती है। इसीलिए गीता में कृष्ण कहते हैं कि "योगस्थ: कुरू कर्माणि, संगम् त्यक्त्वा धनंजय।" अर्थात्, हे धनंजय (अर्जुन)! तुम आसक्ति को त्यागकर योग में स्थित होकर अपने कर्त्तव्य कर्म को करो।

श्रीमद्भगवद्गीता को योग शास्त्र कहा जाता है। भारत ही नहीं विश्व के अनेक महापुरुषों ने गीता के ज्ञान से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सफल बनाया। अभी ताजा उदाहरण पेरिस ओलम्पिक 2024 में भारत के लिए दो कांस्य पदक जीतने वाली निशानेबाज मनु भाकर का है, जिनकी इस उपलब्धि में गीता के ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है। मनु भाकर ने टोक्यो ओलम्पिक के अपने खराब अनुभव के बाद 'श्रीमद्भगवद्गीता' को पढ़ना शुरू किया। गीता का श्लोक "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"[4] उन्हें प्रेरित करता है। इस श्लोक का अर्थ है कि हमें सिर्फ कर्म करने का अधिकार है, लेकिन फल की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जिनका मन कर्म के साथ-साथ फल पर लगा रहता है उनके अन्दर यह चिन्ता एवं घबराहट सदैव बनी रहती है कि कहीं परिणाम प्रतिकूल न आ जाए। इससे कर्म करने में उनका चित्त स्थिर एवं शांत नहीं रह पाता, जिससे परिणाम प्रतिकूल होने की संभावना अधिक हो जाती है। विद्यार्थियों को उक्त उदाहरण से प्रेरणा लेनी चाहिए।

अष्टांग योग:- पातंजलि योगदर्शन में योग के आठ अंग बतलाए गये हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

1. **यम:** बाह्य जीवन की शुद्धता के नियम, यम कहलाते हैं। योग घटित होने के लिए हमारा सामाजिक जीवन शुद्ध होना आवश्यक है। सत्य बोलना, हिंसा न करना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और जितनी आवश्यकता है, उससे अधिक संग्रह न करना, यह यम कहलाते हैं। जितना हम बुरे कार्यों से बचेंगे, उतना हमारा मन शांत एवं आनन्दित रहेगा तथा हमारी ऊर्जा अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में संलग्न होगी। साथ ही साथ अनावश्यक तनाव-चिन्ता से भी मुक्त रहेंगे।

2. **नियम:** यह व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता के नियम हैं। शौच, स्वाध्याय, ध्यान-साधना, संतोष, ईश्वर के प्रति समर्पण आदि नियम कहलाते हैं। योग के मार्ग में अग्रसर होने के लिए हमारी दिनचर्या ठीक होनी चाहिए। स्वाध्याय का अर्थ स्व का अध्ययन है। प्रतिदिन संभव हो तो कभी-कभी एकान्त में मौन बैठकर हमें अपने अन्दर झाँक कर देखना चाहिए कि हमारे अन्दर किस प्रकार की चिन्तनधारा चल रही है तथा हमारे चित्त की भाव दशा कैसी है? इस प्रकार हमें गलत चिन्तन की पहचान करने तथा उससे मुक्ति प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। हमें सदैव सकारात्मक चिन्तन का प्रयास करना चाहिए तथा नकारात्मकता से बचना

 ISSN 0976-0849

चाहिए। मानसिक तनाव एवं चिन्ता का एक बड़ा कारण मनुष्य का नकारात्मक चिन्तन का शिकार हो जाना है।

3. **आसन:** शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि रक्त का प्रवाह शरीर के प्रत्येक अंग-उपांग तक ठीक से हो। इसके लिए योग में विभिन्न प्रकार के आसनों का विधान किया गया है। स्वस्थ रहने के लिए हमें प्रतिदिन कुछ आसनों का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। सूर्य नमस्कार एक ऐसी विधि है, जिसमें शरीर के सभी अंगों का व्यायाम हो जाता है।

4. **प्राणायाम:** हमारे चारो ओर वातावरण में प्राणवायु विद्यमान है। प्राणायाम के माध्यम से हम उस प्राण शक्ति का शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में संचार करते हैं। श्वांस के माध्यम से प्राणवायु को जितना अधिक हम अपने फेफड़ों में भरते हैं तथा निष्कासित करते हैं, उतना हमारा रक्त शुद्ध होता है, जिससे हममें नवीन ऊर्जा का संचार होता है तथा विभिन्न मानसिक एवं शारीरिक रोगों से मुक्ति मिलती है। प्राणायाम की विभिन्न विधियाँ हैं, जैसे अनुलोम-विलोम प्राणायाम, जिसमें हम नासिका के एक छिद्र से धीरे-धीरे श्वांस भरते हैं तथा दूसरे छिद्र से निष्कासित करते है। तत्पश्चात् जिस छिद्र से श्वांस निष्कासित करते हैं, उसी छिद्र से पुनः धीरे-धीरे श्वांस भरते हैं तथा दूसरे छिद्र से श्वांस को निष्कासित करते हैं। इस प्रकार बीस से पच्चीस बार यह प्रक्रिया करना चाहिए। यह सबसे सरल एवं लाभदायक प्राणायाम है। इसके अतिरिक्त भस्त्रिका, कपालभाति, भ्रामरी आदि प्राणायामों का भी अभ्यास किया जा सकता है।

5. **प्रत्याहार:** इन्द्रियों की बहिर्मुखता का अन्तर्मुख होना प्रत्याहार है। हमारा मन विचारों के माध्यम से सदैव बाहर संसार की ओर उन्मुख रहता है। बाहर भागते हुए मन को अपने अन्दर केन्द्र की ओर उन्मुख करना प्रत्याहार कहलाता है। मन जितना बाहर की ओर दौड़ लगाता है, वह उतना ही कमजोर, चंचल एवं अशांत होता है। जैसे-जैसे मन अपने अन्दर केन्द्र की ओर मुड़कर स्थिर होने लगता है, उतना वह शांत एवं आनन्द की अनुभूति करता है।

6. **धारणा:** मन को शरीर के भीतर अथवा बाहर किसी आलम्बन में स्थिर करना धारणा है। जैसे हम ऊँ ध्वनि पर मन को स्थिर करते हैं अथवा आती-जाती हुई श्वांस पर मन को टिकाते हैं, इस अवस्था को धारणा कहते हैं।

7. **ध्यान:** अष्टांग योग का सबसे महत्वपूर्ण अंग ध्यान हैं। ओशो ने कहा है कि, 'ध्यान चेतना की विशुद्ध अवस्था है, जहाँ कोई विचार नहीं होते, कोई विषय नहीं होता। सामान्यतः हमारी चेतना विचारों से, विषयों से, कामनाओं से आच्छादित रहती है। जब विचार शांत हो जाते हैं, कामनाएँ सिर नहीं उठाती, समस्त उहापोह समाप्त हो जाते है– वह परिपूर्ण मौन ध्यान है।[16] ध्यान को दर्शन के सांख्य मत द्वारा 'ध्यानम् निर्विषयम् मनः[17] के रूप में परिभाषित

किया गया है। अर्थात् 'मन का निर्विषय हो जाना' ध्यान हैं। यह ध्यान की अन्तिम अवस्था है। ध्यान के विभिन्न प्रयोगों द्वारा हमारे विचार धीरे-धीरे शांत होने लगते हैं तथा चित्त निर्मल होने लगता है। ध्यान की एक सामान्य एवं सरल विधि विपस्सना ध्यान है, जिसमें हम आराम से बैठकर सहज भाव से आती-जाती हुई श्वांस को होशपूर्वक देखते हैं। शरीर को शिथिल छोड़ देते हैं तथा धीरे से आँखें बन्द कर लेते हैं एवं सहज स्वाभाविक आती-जाती श्वांस पर मन को लगाते हैं। बीच-बीच में विचार आयेंगे तो कोई बात नहीं किन्तु जैसे ही हमें यह ज्ञात होता है कि श्वांस से ध्यान हट गया है और हम विचारों में खो गए हैं, तब पूर्ण सहजता से पुनः श्वांस पर ध्यान ले आना है। सहजता ध्यान की सफलता की कुंजी है। विचार आयेंगे, जायेंगे, हमें सजगता के साथ श्वांस पर मन को लगाए रखना है। चेहरे एवं मन में तनाव नहीं होना चाहिए। पैरों अथवा शरीर में यदि कहीं दर्द की अनुभूति हो तो बैठने की मुद्रा को धीरे से परिवर्तित कर लेना चाहिए। प्रतिदिन लगभग बीस मिनट, आधा घण्टा अथवा एक घण्टा, जितना सम्भव हो ध्यान करना चाहिए। इससे आपका मन शांत एवं चित्त निर्मल होने लगेगा तथा अनेक प्रकार की मानसिक एवं शारीरिक विकृतियों से मुक्ति मिलेगी। विद्यार्थियों का इस ध्यान विधि के प्रयोग से अध्ययन में मन एकाग्र होने के साथ उनको जीवन में अपने लक्ष्य प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होगी।

8. **समाधिः** चित्त में किसी प्रकार की हलचल न होना, स्मृतियों, कल्पनाओं, संस्कारों से मुक्त होकर अपने मूल केन्द्र में अथवा अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाना समाधि है। यह अष्टांग योग की अन्तिम अवस्था है।

योग सभी के लिए उपयोगी है:- योग मुक्ति की विद्या है। व्यक्ति एवं समाज के दुःखों, मन एवं चित्त की विकृतियों को दूर करने में योग महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करता है। विष्णुपुराण में कहा गया है कि "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या वही है, जो मुक्ति प्रदान करे।

आधुनिक युग में अनेक प्रकार के तनाव, चिन्ता, बीमारियाँ, परेशानियाँ, युद्ध की विभीषिका, इन समस्याओं के समाधान में योग महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर सकता है। स्वस्थ तन एवं स्वस्थ मन से स्वस्थ मनुष्य तथा स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। योग तंत्रिकातंत्र एवं अन्तःश्रावी तंत्र में सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान जहाँ मनुष्य को पूर्ण स्वस्थ करने में सफल नहीं हुआ, वहाँ योग लाभकारी सिद्ध हुआ है।

सन्दर्भ सूची:-

1. पातंजल योग दर्शन, समाधिपाद, सूत्र-2, पृष्ठ-1, गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-2, श्लोक-48, पृष्ठ-34, गीताप्रेस, गोरखपुर।

 ISSN 0976-0849

3. तत्रैव, श्लोक-50, पृष्ठ-35, गीताप्रेस, गोरखपुर।
4. तत्रैव, श्लोक-47, पृष्ठ-34, गीताप्रेस, गोरखपुर।
5. पतंजलि योगसूत्र, (साधनापाद, अष्टांग योग, सूत्र-29), बी.के.एस. आयंगार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
6. ध्यान विज्ञान, ओशो, ताओ पब्लिशिंग प्रा.लि., 50-गोरेगाँव पार्क, पुणे, पृष्ठ-11
7. ध्यान, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, 68-अशोक रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ-2

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 143-149

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

From Stone to Thread: Odisha Sculptures Inspiring Sambalpuri Ikat Motifs

Chitta Ranjan Sahoo* & Adyasha Dash**

Abstract: The 11th and 12th centuries in Odisha witnessed a golden age of temple construction, characterized by exquisite sculptural artistry. These sculptures adorned the temples of Bhubaneswar, Konark, and Puri, among others. They depicted various deities, celestial beings, mythological narratives, and intricate architectural details, showcasing the skill and devotion of the artisans. Sambalpuri Ikat, an ancient weaving tradition of Odisha, dates back several centuries. It involves a meticulous dyeing and weaving technique where patterns are resist-dyed on the yarns before weaving. The resulting motifs are vibrant, geometric, and highly intricate, often drawing inspiration from nature, mythology, and cultural symbols.

Through a meticulous examination of primary and secondary sources, this study delves into the historical context and artistic influences that have shaped both the temple sculptures and the Sambalpuri Ikat motifs. It highlights the intertwining of religious beliefs, mythology, and craftsmanship, establishing a comprehensive understanding of the creative process behind these art forms.

Keywords: Odisha sculptures, Sambalpuri Ikat, motifs, temple art, weaving, cultural heritage, mythology, artistic adaptation, textile medium, heritage preservation

INTRODUCTION

Temple construction advancements have enabled artists to create stunning edifices. Beautiful sculptures of various sorts are added to enhance the temples' beauty and purpose. The temples are emblems of Hindu spiritualism and religious identity. They are intended to evoke concepts about spiritual existence. The architectural designs of Odisha's significant temples are stunning. However, they are also embellished with diverse images of various types of stones. Odia sculptors make animals, birds, demi-gods, divinities, dancers, drummers, servants, maids, consorts, kings, queens, and soldiers. The sculptors were also working with or under the supervision of the temple's senior architects.

*Assistant Professor, Department of Fashion Communication, National Institute of Fashion Technology, Bhubaneswar, Email: chittaranjan.sahoo@nift.ac.in
**Research Scholar, Utkal University of Culture, Bhubaneswar, Email: adyashadash31@gmail.com

 ISSN 0976-0849

For millennia, temple sculptures have influenced Odisha textile themes. The state is home to some of India's most gorgeous and ornate temples and the expert weavers who crafted these marvels were also excellent sculptors. They used their textile skills to develop motifs that were both visually pleasing and meaningful. The Sambalpuri ikat saree is a traditional handloom saree from the Odisha region of Bargarh and Sambalpur. It's famous for its exquisite weaving and bright colours. The themes are influenced by a wide range of sources, including temple art, nature, and mythology.

To quote Judith Livingstone's succinct description of ikat's multiple cultural connotations, these fabrics have been worn as a costume, exchanged as gifts, acquired as items of status and prestige and utilized for ceremonial and ritual purposes. They have also served as a medium of communication between members of social groups, as much as between the physical and spiritual world'[1].

There are similarities between the motifs found in Odisha textiles and the sculptures found in Odisha temples. The motifs on Odisha textiles are not simply decorative but have profound symbolic meanings. The motifs often represent religious figures, animals or plants found in Hindu mythology. They can also illustrate abstract concepts such as fertility, abundance or eternity.

The similarities between Odisha textile motifs and Odisha sculptures are not a coincidence. The weavers of Odisha textiles were inspired by the sculptures that they saw in the temples. The weavers would often use the same motifs in their textiles but would also adapt them to fit the medium of fabric. For example, a motif that might be depicted in three dimensions on a sculpture might be depicted in two dimensions on a textile.

A trained painter understands the emotions that are emitted by these Hindu temples and sculptures. Gurudev Rabindranath Tagore in his book '*Art and Aesthetics*'[2] says that the Indian artist has a tendency to search for the soul not only in human beings and he tries to have a glimpse of it even in the inanimate world. Different art products are also the reflection of their social developments. According to Nihar Ranjan Roy[3], Art cannot be detached from the stream of social ethos. "Social and moral values in fundamental human universals was, indeed, the essence of social content, and they are the artist's main concern."

REVIEW OF LITERATURE

In 1954, a team of exploration headed by Despande along with Sridhara Dash, Ghanashyam Dash[4], N.K. Sahu[5] and Narayan Tripathy visited various sites in the valley. In 1954, N. Sarkar wrote a paper on the Varahi temple at Chaurasi located in the Parchi

valley. In the same year, Gangadhara Bala wrote an article entitled *Prachi Kular Saiva Dharma*. Devala Mitra published a paper on the Gangeswari temple at Bayalisbati. Jitendra Nath Banerjee[6] also presented a report on the Varahi temple at Chaurasi in 1965.

Radha Charan Panda[7], though a physician by his profession, travelled throughout the valley and made a detailed investigation and published a book entitled *Prachi Nadira Aitihasika Vibhava* in Odia language. He mentioned the Dvadasasambhu, Dvadasamadhava, Buddhist, and Jain relics, the Mangala temple at Kakatpur, the Varahi temple at Chaurasi, monasteries, port sites and forts, sacred tirthas, various fairs and festivals celebrated in the valley. This is undoubtedly a pioneer work of the Prachi Valley but it lacks the details of art, architecture and iconographical study along with the historical background.

The clothing of the exquisite statues in Konark Temple bears a resemblance to Odishan ikat. The pleasantly patterned curtains imitating the ikat cloth on Ganga and Jamuna figures may also be found in Saintala's Chandi Mandir. The sculptures in Baidyanath Temple in Sonepur district have also served as an inspiration towards the development of ikat motifs. T.N. Mukherjee, in his book Art Manufacturers of India[8] (Mukherjee 1888), has described and highly appreciated the art of matha saree in Barpalli.

COMPARISON BETWEEN SCULPTURE AND TEXTILE ART

In his *Natya Shastra*, Bharat Muni, the profound scholar of creative art, talks about the theory of Rasa. He says that any creative artist, may he or she be an actor, painter, sculptor, architect, writer or from any form of art, will have to understand the use of eight Bhavas and emotions and eight corresponding Rasas or flow of feelings.

Natyashastra is a scientific depiction and portrayal of theatre. The Natyashastra discusses the nature of drama, its origins and purposes, linguistic structure, method, characters, types and dialogue composing for theatre. Representation is concerned with theatrical building, stage construction, performance structure and performance style. He defines eight *rasas* which are *Sringara, Hasya, Karuna, Rudra, Vira, Bhayanak, Bibhistsa and Adbhuta*[9]. He classifies dramatic content on the basis of emotions. All these rasa have something in common i.e. they have some emotional content. Yet they have their points of differences on the basis of those points they establish their own identities.

Textile art could also be considered visual art like sculpture. The motifs of Sambalpuri ikat draw inspiration from 11th and 12th-century sculptures. Ikat in the western part of Odisha is weaved with intricacy and it is famous throughout the world.

 ISSN 0976-0849

The ikat technique is practised in a lot of countries, each place has its own adaptive motifs, colours and designs. This tie-dye technique is employed by the Bhulia community in Sambalpur and Bargarh regions.

There is a marked difference between a figure shown in sculpture and in textile art. The figures in the sculpture resemble reality in form, shape and appearance. It has its hardness, density and 3-D effects, while as a textile motif (Sambalpuri Ikat) the form is more adaptive and altered to suit the design of the textile.

The temples of the 11th and 12th centuries serve as the golden period of temple architecture. The sculptures are exquisite and have been a source of inspiration for many forms of visual art. The Sobhanesvara Mahadev temple is located on the left bank of the river Prachi in the village of Niali in the Cuttack district. The temple is under worship and the enshrined deity is a *patalaphuta Sivalinga* within a circular black chlorite *yonipitha* with the *pranala* on the northern side. The temple belongs to the mature phase of the *Kalingam* style and is richly decorated on the exterior walls. Scholars like P.K. Ray identified it as a *Saptaratha* temple[10].

The *Madhava* temple is located at Madhava under Niali tehsil of Cuttack district. The Vishnu image here stands in *sambhanga* pose and holds a conch in the major right, full-blown lotus in the uplifted right, mace in the corresponding uplifted left and the disc in the major left hand. This is also a unique feature of Odishan *Vaishnavism*. At the Mangala temple at Kakatpur, The initiation of Mangala worship may be traced back to the 9th century. The Goddess Mangala is considered to be the Ista-devi of the people of Prachi Valley. Similarly, the Varahi temple at Chaurasi is an important Sakti Pitha in the Prachi valley. This is a protected monument of ASI.

The textile motifs of Odisha have been inspired by temple sculptures for centuries. The state is home to some of the most beautiful and intricate temples in India, and the sculptors who created these masterpieces were also master weavers. They used their knowledge of textiles to create motifs that would be both visually appealing and symbolically significant.

Some of the most common motifs found on Odisha textiles are:

- Temple spires: These motifs represent the sacredness of the temple and the divine power that resides within it. They are often found in the centre of the fabric, as a reminder of the wearer's connection to the divine.
- Animals and birds: Animals and birds are often used as symbols in Hindu mythology. For example, the elephant represents strength and wisdom, while the peacock represents beauty and royalty. These motifs can be found on Odisha

textiles as a way to invoke the blessings of these auspicious creatures.

- Floral motifs: Flowers are a symbol of fertility and abundance in Hindu culture. They are often used in textiles as a way to celebrate the beauty of nature and the bounty of the land.
- Geometric patterns: Geometric patterns are another common motif found in Odisha textiles. These patterns are often used to represent the cyclical nature of life and the interconnectedness of all things.

I. LINE DRAWING OF TEMPLE SCULPTURES AND SAMBALPURI IKAT

Fig. I.i, *Gajavidala* Lion overpowering an Elephant, south bada, Sobhanesvara temple, Niali

Fig I.ii, Fish motif with lotus leaf, Madhaba Temple, Niali

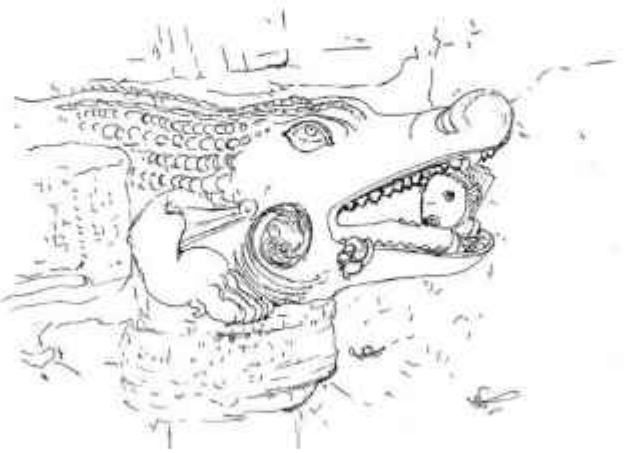

Fig I.iii, Magar (Crocodile catching a fish), Konark Temple

 ISSN 0976-0849

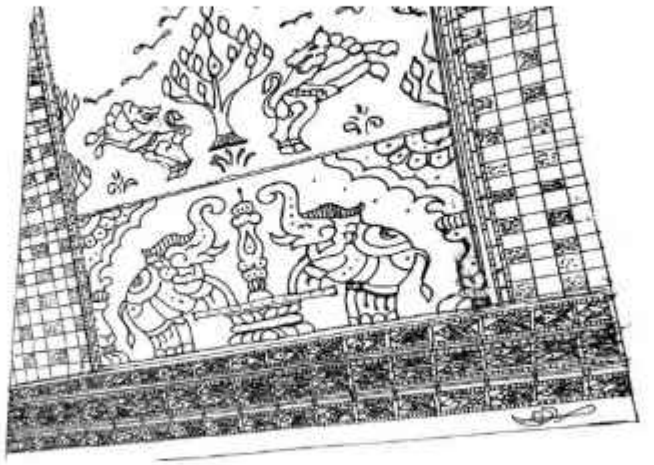

Fig Liv, Motif of Lion, Elephant, Fish and Nature in Sambalpuri Ikat

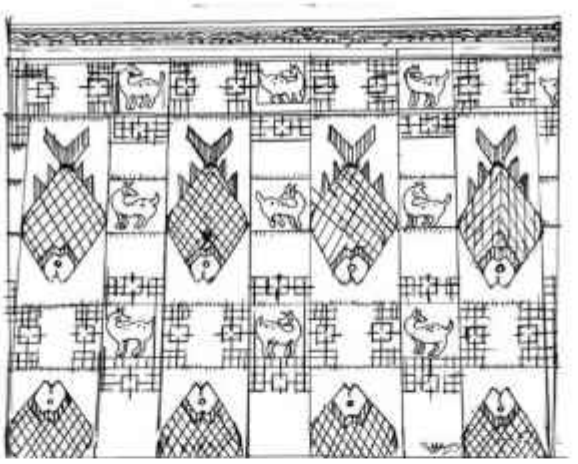

Fig Lv, Fish motif, Sambalpuri Ikat

CONCLUSION

Tie and dye art is distinctive due to the handcrafted synchronisation and balancing. The design possibilities of this painting are limitless. A small amount of thread may be used to create a variety of detailed patterns, including life-like portraits. The influence of 11th and 12th-century Odisha sculptures on the motifs of Sambalpuri Ikat is a testament to the enduring artistic traditions and cultural interconnectedness of the region.

Through a detailed exploration of the historical context, motifs, technical challenges, and cultural significance, this report has highlighted the remarkable fusion of sculpture and weaving in Odisha's artistic heritage. The study concludes by

emphasizing the cultural significance of the motifs inspired by temple sculptures in Sambalpuri Ikat. It highlights how these motifs not only reflect the deep-rooted spiritual and artistic traditions of Odisha but also contribute to the preservation and promotion of the region's cultural heritage on a global scale.

REFERENCE

1. Livingstone, H. Judith. '*Ikat Weaves of Indonesia and India: A Comparative Study.*' India International Centre Quarterly, Kolkata, 1994, p. 113
2. Rabindranath Tagore, On *Art and Aesthetics: A selection of lectures, Essays and Letters*, (Ed) Prithwish Neogy, Kolkata, 2005, p. 78
3. Ray, Nihar Ranjan, *An approach to Indian Art*, Oriental Press, Chandigarh, 1974, p. 11
4. Das, G.S., *Exploration of the Prachi Valley*, Modern Publication, Bhubaneswar, 1958, p. 17
5. Sahu, N.K., *Buddhism in Orissa*, Utkal University, Bhubaneswar, 1958, p. 139
6. Banerjee, J.N., *"The Varahi Temple at Chaurasi"*, Felicitation Volume presented to Mahamohopadhyaya; Dr V.V. Mirashi, in G.T. Despande, A.M. Shastri & V.W. Karambelkar (eds.), Nagpur, 1965, p. 349-354
7. Panda, R.C., *Prachi Nadira Aitihasika Vibhava* (o), Orissa Sahitya Academy, Bhubaneswar, 1969
8. Mukherjee, T.N., *Art Manufacturers of India*. Kalinga Publication, Puri, 1988, p. 337
9. Gupta, Shyamala, *Art, Beauty and Creativity-Indian and Western Aesthetics*, Priya Publication, New Delhi, 1999, p. 22-30
10. Ray, P.K., *Archeological Survey Report 1974-75*, Prachi Valley, Orissa State Archeology, Bhubaneswar, 1975, p. 11

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 150-164
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

The role of Diet that promote distinctive ways to maintain healthy skin from aging skin

Dr. Deepshikha Nagvanshi*

Abstract: People of all ages have long been interested in and concerned about their search for healthy, youthful-looking skin. Although there are many skincare products and treatments on the market, there is an increasing focus on how nutrition may support healthy skin and fight aging indications. In order to better understand the connection between nutrition and skin health, this descriptive study will highlight specific dietary elements that can assist in preserving healthy skin and reduce the signs of aging on the skin. To provide a comprehensive grasp of the topic, the study uses a thorough examination of pertinent literature to compile findings from numerous scientific investigations. According to the findings, eating a balanced diet high in particular nutrients, antioxidants, and anti-inflammatory substances can considerably support youthful-looking skin and prevent the onset of indications of aging. The study also emphasises the value of eating from particular food categories and staying well hydrated having healthy skin. The results of this study can act as a starting point for further investigation and can help people choose their diets wisely to maintain healthy and youthful-looking skin.

Keywords: Skin, Eating habits, healthy skin, aging, antioxidants, anti-inflammatory, hydration etc.

Introduction

The health, look, and functions of the skin should all be fully considered. Therefore, it is important to be aware of every relevant detail. The importance of a healthy diet cannot be overstated. Vitamins, minerals, proteins, and other nutrients should be used appropriately, and attention should be paid to both the positive and negative impacts of particular meals. In addition to enabling optimal function, a healthy diet also provides the chance for improved self-esteem and communication. To maintain healthy and attractive skin, we should exert effort. The appropriate nutritional supplements, when taken in conjunction with a healthy diet, can help you maintain years of youth in your skin.

*Assistant Professor, Home Science (Food & Nutrition), Maharana Pratap P.G College, Jungle Dhusan, Gorakhpur

The value of sound nutrition cannot be emphasised in the quest for a long and fulfilled life. A nutritious diet has a key role in not just improving general wellbeing but also in aging gracefully and preserving youthful, healthy skin. We may unleash the transformational power of healthy food and learn the keys to a more youthful appearance and glowing skin by nourishing our bodies with a variety of nutrient-rich foods.

The provision of a rich source of antioxidants by whole food is one of the main ways by which it promotes healthy aging and skin. Phytochemicals, vitamins A, C, and E, as well as other potent antioxidants, are abundant in fruits, vegetables, whole grains, and legumes. These substances serve as a protective barrier, fending off dangerous free radicals that can injure our cells, including skin cells. Antioxidants lessen oxidative stress by scavenging these free radicals, which helps to slow down aging and encourages a more youthful appearance.

The most prevalent protein in the body, collagen, gives our skin its strength, suppleness, and structure. Collagen production naturally decreases with age, resulting in wrinkles, drooping, and loss of firmness. The preservation of healthy, youthful skin can be aided by a diet high in particular nutrients, which can help drive collagen formation. Amino acids, vitamin C, and zinc are crucial elements for collagen formation and can be found in foods like bone broth, fish, soy products, and leafy green vegetables. Vitamin C functions as a co-factor in the synthesis of collagen fibres, which requires amino acids, the fundamental components of proteins. On the other hand, zinc supports the enzymes involved in the production of collagen. By including these foods in our diets, we can provide the body with the resources it needs to encourage the best collagen formation, which will lead to skin that is firmer and more resilient. In addition to being important for overall health, maintaining appropriate hydration is also important for maintaining healthy skin. Adequate water consumption aids in detoxification, circulation enhancement, and internal skin hydration. Consuming foods high in water content like cucumbers, watermelon, and celery will also help you stay properly hydrated and create a youthful appearance. Skin that is properly moisturised looks plumper, smoother, and younger, which lessens the visibility of fine lines and wrinkles. Varied arrays of vital nutrients that have a direct impact on skin health are provided by a balanced diet. Omega-3 fatty acids, which are present in foods like fatty fish, walnuts, and flaxseeds, support healthy skin by lowering inflammation and promoting a supple, luminous complexion. Vitamin E, which is present in large quantities in nuts, seeds, and vegetable oils, helps the skin repair and protects it from oxidative damage. Vitamin A, which is frequently present in orange and yellow fruits and vegetables, aids in regulating skin cell turnover, which results in a complexion that is smoother and healthier.[1]

 ISSN 0976-0849

In addition to providing fuel, a nutritious diet can help you age gracefully and keep your skin looking young. Our natural beauty can be enhanced and a youthful appearance can be encouraged by adopting a diet high in antioxidants (apple, grapes, red cabbage, blueberries, etc., promoting collagen formation, staying hydrated, and ingesting a variety of necessary nutrients. Emphasising how our diet affects how we age gives us the capacity to make educated decisions that nourish our bodies from the inside out, resulting in both inner and outer brilliance. Therefore, let's start on this path to bright healthy and radiant skin one scrumptious and nourishing bite at a time.

The skin serves as a barrier between the human body and the environment and it has the biggest surface area of any organ in the human body. It provides some cosmetic benefits in addition to shielding the body from environmental harm and preventing water loss. All during our lives, our organs age. Being the largest organ in the body, the skin ages most visibly as a result of UV radiation exposure, aging, and chemical pollution. People are becoming increasingly aware of and interested in learning more about skin aging as a result of advances in science, technology, and human living standards. A large percentage of daily spending for numerous individuals, particularly women, is spent on cosmetics and medications for the management and prevention of skin aging. This enormous demand continues to fuel research into skin aging prevention and therapy.

The physiology of the skin must first be understood; it has three layers: the epidermis, dermis, and subcutaneous tissue. Skin epidermal cells quickly differentiate into the stratum corneum, granular layer, spinous layer, and basal layer throughout development. The base layer's stem cells (SC) and transient amplification cells (TA) encourage the renewal of the epidermis on human skin. External signalling networks including the Wnt signalling pathway system (*The Wnt signalling system controls key aspects of cell fate determination, cell migration, cell polarity, neural patterning, and organogenesis throughout embryonic development. It is a long-established and evolutionarily conserved mechanism.*)[2] control SC behaviour and epidermal renewal. The dermis is the connective tissue that is composed of fibroblasts and is located above the subcutaneous fat beneath the epidermis. It is responsible for the synthesis and secretion of collagen and other matrix proteins (such as fibronectin, elastin, and glycans) into the extracellular environment, which gives the skin its elasticity, strength, and resistance to external interference. Skin aging, carcinogenesis, wound healing, fibrosis, and other pathological processes are also affected by fibroblasts. The fat layer directly below the dermis layer, which covers the hair follicles and is essential for tying the skin to the muscles and bones, storing energy, secreting hormones, and maintaining body temperature, is referred to as the subcutaneous layer. Additionally, subcutaneous adipose tissue regulates the rate of hair regrowth, maintains a healthy interior environment for

the skin, and encourages skin recovery from injury and infection.

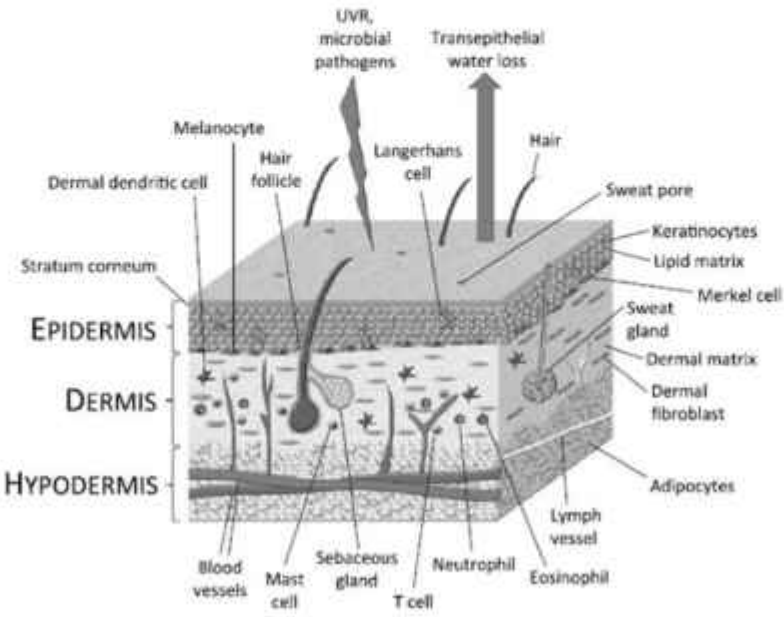

Figure- 1 Schematic representation of skin structure

Source: Neil Lagali.

The multiple functions of the skin, including its role as a barrier, mechanical organ, immunological system, sensory organ, endocrine organ, thermoregulatory organ, and producer of vitamin D, make it an essential organ. It impacts social and sexual communication and plays a role in respiration. The way the skin appears, which is determined by its elasticity, perspiration, sebum, and smell, is quite important. This mostly influences ones feelings as well as other people's responses. There are several factors that influence the function and appearance of the skin. The first thing to keep in mind is to minimize exposure to strong UV radiation, smoking, and being around people who smoke. You should also try to keep stress to a minimum. This is due to the production of free radicals that cause skin tissue damage, water loss, collagen degradation, and accelerated skin aging. Free radicals are produced when molecules are destroyed and damaged in the skin. Skin dryness and redness, elasticity loss, and wrinkles are the effects. Approximately 20% of aging is thought to be influenced by genetics. Smoking, sun exposure, and, most importantly, food all contribute to the remaining 20%.

A healthy diet that is balanced and contains a variety of foods is essential. Many skin illnesses and rapid aging are symptoms of specific problems, such as a lack of nutrients, vitamins, and minerals, because skin reflects systemic processes. Eat a diet that is well-balanced and rich in protein-rich foods, fresh fruits and vegetables whenever

 ISSN 0976-0849

possible, and liquids to maintain the health of your skin. In addition, physical activity is important.[3]

The significance of healthy skin goes beyond its aesthetic appeal, as the skin serves as a vital protective barrier against external factors and helps maintain overall well-being. The aging process often leads to various skin-related concerns, such as wrinkles, sagging, dryness, and dullness. While genetics and external factors play significant roles in skin aging, emerging research suggests that dietary habits can influence skin health and the aging process. This descriptive study aims to examine the impact of diet on maintaining healthy skin and explores distinctive ways to combat skin aging through dietary interventions.

Nutrients aret responsible for healthy skin, numerous vitamins (vitamins C, E, A, K, D, and B complex), minerals (selenium, copper, and zinc), proteins, and other nutrients have an impact on the skin's quality, health, and appearance. Alpha lipoic acid, DMAE (dimethylamino ethanol), hyaluronic acid, and vital fatty acids are also present. With a balanced, healthy diet, adequate hydration is required.

Sl.	Vitamins	Effect
1	Vitamin C (Ascorbic Acid)	Exposure to the sun causes the generation of free radicals, which harm the collagen and elastin fibres that support of the skin and give it its firmness and tightness. The results include wrinkles, stains, pre-cancers, and aging indicators. Strong antioxidants like vitamin C have an impact on free radicals and lessen their damaging effects. It reduces acne inflammation by boosting the immune system. Vitamin C Supplements of 500 to 1000mg can be helpful.
2	Vitamin E (Tocopherol)	The most significant lipid-soluble antioxidant in tissues is thought to be vitamin E. Additionally, vitamin E is a powerful antioxidant that helps to lessen the harm caused by carcinogens and sun exposure. 400 IU of vitamin E should recommend.
3	Vitamin A (Retinol)	For the regeneration of skin tissue, vitamin A is required. Without it, skin becomes flaky, dry, and harsh. There is no need for supplements because a healthy diet provides an adequate dose of vitamin A.

4	Vitamin K	It is crucial for halting bleeding. Less bruising and under-eye circles are affected by it.
5	Vitamin B complex	The most crucial member of this group for skin is biotin (B7), which serves as the building block for the skin, nails, and hair. Lack of this vitamin can lead to skin irritation, itching, peeling, and even probable hair loss. Niacin (vitamin B3) keeps skin hydrated and has anti-inflammatory properties. It can be produced by the body and is found in many foods. The B5 nutrient pentothenic acid benefits dry damaged skin.
Sl.	**Minerals**	**Effect**
1	Selenium	Selenium plays a crucial part in the synthesis of elastin, which is crucial for the structure of the skin, and protects skin from UV damage.
2	Zinc and copper	Elastin development is supported by zinc and copper. Rarely is the lack of copper noticed. Oral consumption or creams reduce fat formation. It works well to treat acne and stop the development of fresh outbreaks. Poultry, red meat, and oysters all contain it.
3	Alpha-lipoic acids	They are potent antioxidants that slow down the aging process of the skin while defending cells from the harm that free radicals inflict. They can be applied topically or as supplements. Additionally, DMAE functions as an antioxidant. It makes it possible to stabilise cell membranes, reducing the harm caused by pollutants and sun exposure. Additionally, it stops the production of lipofuscin, the pigment that causes black spots on the skin. Both in creams and as a mesotherapy additive, it is employed.
4	Hyaluronic acid	This is a natural material found in all living things that acts as an intercellular lubricant, holds cells together like glue, lubricates joints, and gives skin its fullness and smoothness. Hyaluronic acid is a

 ISSN 0976-0849

		potent antioxidant that protects the skin from the free radical damage that causes wrinkles and maintains the skin's natural level of hydration. First, it is supplied locally because it is absent from a natural diet.

Skin Aging Modifications and Molecular Mechanisms

Skin Aging's Visible Changes that Macromolecular damage builds up within cells over time, stem cells are less able to support tissue regeneration and restore physiological integrity, and these factors all contribute to aging. Though they are related, the clinical symptoms and path physiology of chronological aging and photo-aging are two separate skin-aging processes. Chronological aging typically starts to show after a specific age and is influenced by things like ethnicity, individual, and skin site. Dry skin, dullness, a lack of suppleness, and fine wrinkles are its key distinguishing features. The two main causes are: first, the SC dysfunction in keratinocytes, which results in a decrease in stem cell regenerative capacity in the basal layer of the epidermis, ultimately leading to a decline in skin renewal and repair ability, and second, the accumulation of damage and aging skin dysfunction, which causes fibroblasts to lose the capacity to reshape the extracellular matrix or have a reduced capacity to synthesise and secrete collagen or viscous proteins. Thirdly, aging fibroblasts change intracellular homeostasis by particular paracrine pathways.

The principal signs of photo-aging, which are capillary enlargement, pigmented spot formation, skin wrinkles, relaxation, roughness, and yellow or greyish tones, are produced by prolonged exposure to ultraviolet light. The wavelength of ultraviolet light has an impact on the photo-aging site. The wavelength of UV radiation, which can be categorised into A, B, and C categories depending on the wavelength, has an impact on the photo-aging site.

Increased intracellular ROS is the primary characteristic of oxidative stress, which plays a significant role in skin aging and skin damage processes.[4] The oxidative metabolism of the skin and UV exposure causes ROS to be produced. The buildup of ROS results in DNA damage triggers an inflammatory response in the skin, lowers antioxidant enzyme levels, activates NF-kB and AP-1 to inhibit collagen production, and raises matrix metalloproteinases to break down collagen and binding proteins in the dermis, all of which contribute to skin aging.

Gene mutation and DNA damage. Prior research analysed UV-induced DNA damage processes and divided them into direct damage and indirect damage. The

nucleotide sequence of DNA is altered when it absorbs a UV-B photon, causing direct damage such as DNA strand loss or mutation.

Accumulation of AGEs (advanced glycation end products). AGEs are byproducts of excessive protein and sugar binding that are often produced by the body and eaten. Numerous academics have acknowledged the no enzymatic glycosylation aging theory. AGEs build up in photoaging skin as the result of a non enzymatic glycosylation process, which affects protein function in the dermis and speeds up skin aging.[5]

Inflammation accelerates aging. Continuous exposure to UV radiation causes oxidative stress in epidermal cells, which in turn damages cells, causes fat to burn, and ultimately causes cell inflammation. To exceed inflammation and injury, macrophages also start secreting pro-inflammatory chemicals and ROS when the level of inflammation surpasses their capacity to clear it up. Methods like stem cell transplantation, hormone therapy, telomerase modification, and usage of antioxidants and retinoic acid have been encouraged to address skin aging as a result of dermatology's constant improvement over the past 20 years.[6] Some of these therapy options, meanwhile, have drawbacks and negative side effects. For instance, retinoic acid may result in osteoporosis, hormone therapy raises the risk of breast cancer, and telomerase modification raises the risk of skin cancer. As a result, individuals are accepting of enhancing skin conditions through food control.

Diet Management

The purpose of this work is to review the literature already in existence and provide insight into the subject of whether nutrition genuinely affects how quickly our skin ages.

Skin that glows is always in! Strict skincare routines, stress management, and exercise are only the beginning of this search for clear skin. The majority of people also neglect good dietary practices. We adore junk food so much that switching to healthier alternatives might be challenging. However, this one habit can cause several facial issues, including acne, early aging, and even overly oily skin.[7]

But first, let's start with a short list to get you started.

1. In the morning, drink water on an empty stomach.
2. Before leaving the house, eat a nutritious breakfast.
3. Include a variety of vegetables and proteins in every meal.
4. Snack time should include fruit juice, almonds, or coconut water.
5. Stop eating meals at a late hour.

 ISSN 0976-0849

1. Consume fruits and vegetables in season.

When fruits and vegetables are eaten out of season, preservatives are added or they are chilled to lengthen their shelf life. This significantly reduces its nutritional value. Eating fruits and vegetables in season not only prevents them from getting processed but also aids in resolving seasonal ailments. Consuming summer time fruits and vegetables like watermelon, cucumbers, and oranges is advantageous because they are not only hydrating but also high in antioxidants, which delay the onset of aging and other skin issues.

2. Avoid artificial sweeteners

Stop using artificial sweeteners in your diet; this is the second healthy eating practice. They disrupt blood sugar levels and stimulate appetite, which results in weight gain, acne, and neck pigmentation. Unbalanced hormones might also result from it, which is bad for the skin. Give up sugary meals and aerated drinks if you want clear, healthy skin that is free of pigmentation and acne, as research linked these things to having unhealthy skin. Consider substituting honey for sugar because, aside from this, sugar has no nutritional value.

3. Consume good fats.

Especially to individuals who wish to be fit or who are attempting to lose weight, fats sound like the worst thing ever. However, did you know that certain types of fats might really be good for your skin? "There are two different kinds of healthy fats, and both are crucial for radiant skin. Omega-6 fatty acids come first because they are essential for the formation of cell membranes. They shields it from dehydration and maintain its health. Omega-3 fatty acids come in second because they hydrate and soften the skin. The skin is kept soft, supple, and luminous by these fatty acids, which also preserve the skin's natural oil barrier. These fats can be found in foods like dark chocolate, avocados, fatty seafood, nuts, olive oil, and chia seeds.

4. Avoid hot spicy food

Spicy food can aggravate acne, enlarge blood vessels, and produce significant skin irritation. Due to the disruption of the skin's pH balance caused by eating a lot of hot and spicy food, acne and pimples worsen. So, if you want healthy, glowing skin, it's best to stay away from spicy foods like chaat and pickles, it's best to avoid them if you want healthy and glowing skin.

 ISSN 0976-0849

5. Have some herbal tea

For centuries, people have utilised herbal tea to get glowing skin and maintain it clear and attractive. Herbal tea increases metabolism and protects the skin from free radical damage. Stock up on herbal tea and green tea because they are both full of antioxidants that can help prevent the visible symptoms of aging and keep the skin moisturized. Skin that is well hydrated, supple, and smooth is said to have glowing skin. Additionally, by chilling the tea bags and placing them on your eyes for a short period, you can use them again to get rid of puffy eyes and under-eye circles.

6. Keep hydrated

Aside from maintaining a healthy diet, it's important to drink enough water. If you desire radiant, clear skin, it's crucial to keep the body hydrated. You can always drink beverages, juices, coconut water, etc. if you don't like simple water. Hydration nourishes the skin and aids in toxin removal from the body. Healthy hydration maintains the skin well hydrated, moist, and bright while also having anti-aging properties. Additionally, it maintains the flexibility of the skin, making it appear supple, youthful, and radiant.

7. Consume dark chocolate

Admirers of chocolate, rejoice! Dark chocolate is the final but most cherished food to include in your diet. The flavonoid in dark chocolate shields the skin from the sun's damaging rays and prevents sunburn and skin cancer, among other skin-friendly effects. It prolongs skin hydration and aids in skin smoothness. The skin is known to look firm and smooth when hydrated with cocoa.

Avoid certain foods and eating habits.

To maintain youthful and vibrant skin, it's important to pay attention to your diet. Here are 20 foods you should avoid to prevent premature aging and dull skin:[8]

1. **Sugar**: Excessive sugar intake can lead to gyration, a process that damages collagen and elastin, causing wrinkles and sagging skin.
2. **Processed foods**: These often contain additives, preservatives, and unhealthy fats that can contribute to inflammation and accelerate aging.
3. Trans fats: Found in fried and processed foods, trans fats can promote inflammation and damage cell membranes, leading to premature aging.
4. **High-glycemic foods**: Such as white bread, pastries, and sugary cereals, can cause blood sugar spikes, which can contribute to wrinkles and dull skin.
5. **Excessive alcohol**: Alcohol dehydrates the body, leading to dry skin, and can also cause inflammation and break down collagen.
6. **Saturated fats**: These fats commonly found in red meat and full-fat dairy products, can contribute to inflammation and clogged pores.
7. **Artificial sweeteners**: Some studies suggest that artificial sweeteners can disrupt the skin's natural balance and contribute to wrinkles.
8. **Soda and sugary drinks:** These beverages can dehydrate the body and contain

high amounts of sugar or artificial sweeteners.

9. **Salty foods**: Consuming excessive amounts of salt can cause water retention, leading to puffiness and under-eye bags.
10. **Highly processed meats**: Processed meats contain high levels of sodium, unhealthy fats, and preservatives that can be detrimental to skin health.
11. **Fried foods**: Foods that are deep-fried are typically high in unhealthy fats and can cause inflammation, leading to dull and acne-prone skin.
12. **High-mercury fish**: Large predatory fish, such as swordfish and king mackerel, can contain high levels of mercury, which can damage collagen and elastin.
13. **Caffeine**: While moderate consumption is generally fine, excessive caffeine intake can dehydrate the body and contribute to dull and dry skin.
14. **Refined grains**: Foods made with refined grains, like white bread and white rice, have a high glycemic index and can cause inflammation.
15. **Excessive dairy**: Some people may be sensitive to dairy, which can lead to inflammation and skin issues such as acne.
16. **Artificial additives**: Food additives, such as artificial colors and flavors, can cause allergic reactions and skin irritations in some individuals.
17. **High-sodium condiments**: Condiments like soy sauce, ketchup, and salad dressings can be high in sodium, contributing to water retention and puffiness.
18. **Excessive red meat**: Consuming large amounts of red meat can promote inflammation and oxidative stress, accelerating the aging process.
19. **Refined vegetable oils**: Vegetable oils like soybean, corn, and sunflower oil are high in omega-6 fatty acids, which can contribute to inflammation.
20. **Fast food:** Typically high in unhealthy fats, sodium, and additives, fast food can negatively impact your skin's health and contribute to premature aging.

Remember, maintaining a balanced diet rich in fruits, vegetables, whole grains, lean proteins, and healthy fats are key to promoting youthful and glowing skin.

Conclusions of the Study

The results of this descriptive study highlight the critical role that diet plays in protecting against skin aging and preserving good skin. Adopting a healthy diet high in anti-inflammatory, essential fatty acids, and antioxidants can help maintain youthful-looking skin and prevent the onset of aging symptoms. Additionally, including particular dietary groups—including those that increase collagen, like fruits and vegetables—can

improve skin health.[9]

The maintenance of youthful, bright skin and the promotion of healthy aging are both significantly influenced by nutrition. Our diet's nutrients have a direct impact on the condition and appearance of our skin. Fruits and vegetables include antioxidants that work to fend off free radicals, prevent cellular damage, and lessen the appearance of aging.[10] Essential fatty acids nourish the skin and preserve its hydration, elasticity, and suppleness. They can be found in foods like fish, nuts, and seeds. Adequate hydration, which may be attained through drinking enough water and eating meals high in water content, maintains the skin moisturised and plump, which lessens the visibility of fine lines and wrinkles. A varied diet rich in nutrients makes sure the body gets the vitamins, minerals, and phytochemicals required for healthy skin. A healthy diet, along with other good practices like frequent exercise, and stress management, can help us age gracefully while maintaining radiant and healthy skin.

Another side, in order to understand the multiple roles that the skin performs as an organ of the human system, it is important to focus on skin health. The skin serves as a barrier to the environment, protecting the body from mechanical stimuli, various harmful substances, microorganisms, and radiation. It is also crucial for regulating fluid loss and body temperature, the immune system, and the perception of pain and temperature. Additionally, the psychological state is influenced by the appearance of the skin. It is crucial to safeguard skin from harmful elements like UV radiation, different chemicals, tobacco smoke and infections, as well as to provide all the nutrients required in the diet and the proper care. Corporating varied meals of animal or plant origin, that contain vitamins, minerals, proteins, and vital fatty acids, while also taking into account the kind of skin, is necessary to ensure the regular functioning of the skin.[11] The biological process of skin aging is intricate and protracted, and it is influenced by both inherited and environmental factors. Hyaluronic acid injection, retinoic acid injection, and stem cell transplantation all offer therapeutic benefits but also drawbacks.[12] Skin aging prevention and relief through dietary management has become an unavoidable trend as people's expectations for the effectiveness, safety, and durability of treatment approaches have increased. People still don't have enough knowledge about diet to slow down the aging process of their skin. Even though the public is aware of the link between nutrition and skin aging, it is challenging for them to alter their current lifestyle and diet, despite our best efforts to define and quantify what constitutes a healthy diet. The functional anti-aging components in food primarily treat some aspects of skin aging. First, after digestion and absorption, anti-aging substances (such as protein peptides and essential fatty acids) enter the skin as a precursor and take part in the synthesis and metabolism of skin components. Second, by eliminating cellular ROS and boosting antioxidant

enzyme activity, anti-aging substances reduce skin oxidative damage. Third, the anti-aging substance functions as an enzymatic factor, controlling the expression of enzymes which prevents the breakdown of skin components and preserves the structural integrity of the skin.

References

1. Cao C, Xiao Z, Wu Y, Ge C., 2020. Diet and Skin Aging-From the Perspective of Food Nutrition. Nutrients. Mar 24;12(3):870.
2. Veltri A., Lang C., Lien W.H., 2018. Concise review: Wnt signaling pathways in skin development and epidermal stem cells. *Stem Cells.*
3. Rome Declaration on Nutrition. Second International Conference on Nutrition. Rome: FAO/WHO;2014.
4. Fuchs E., 2016. Epithelial skin biology: Three decades of developmental biology, a hundred questions answered and a thousand new ones to address. *Curr. Top. Dev. Biol.* 2016;116:357–374.
5. Blanpain C., Fuchs E., 2006. Epidermal stem cells of the skin. *Annu. Rev. Cell Dev. Biol.* 2006;22:339373. doi: 10.1146/annurev.cellbio.22.010305.1043
6. Zhang S., Duan E., 2018 Fighting against skin aging: The way from bench to bedside. *Cell Transplant.*
7. Hamdani. S., 2022. *ADOPT THESE HEALTHY EATING HABITS FOR CLEAR AND GLOWING SKIN.* Be Beautiful.in.
8. Guideline: Sugars intake for adults and children. India : World Health Organization; 2015.
9. Krutmann J., Bouloc A., Sore G., Bernard B.A., Passeron T., 2016. The skin aging exposome. *J. Dermatol. Sci.* 2017;85:152–161.
10. Orioli D., Dellambra E., 2018. Epigenetic regulation of skin cells in natural aging and premature aging diseases. *Cells.*
11. Paravina, M., 2018.The role of diet in maintaining healthy skin. J Dermat Cosmetol . 2018;2(6):122 125.
12. Murphree R.W., 2017 Impairments in skin integrity. *Nurs. Clin.* 2017;52:405–417.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 165-173

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

Studies on Photoactive TiO_2 Nanomaterials for Applications in Solar Cells

KishorNand[#], Firoz Hassan*, Md. Rashid Tanveer[§] and S. K. Vernwal[$]

Abstract: Scientific interest in TiO_2-based materials has exponentially grown in the last few decades. The main physicochemical properties of TiO_2 are the basis of its applications in various fields. Now titanium dioxide has emerged as a promising material for solar cell applications due to its abundance, environmental friendliness, and desirable electronic properties. It is currently being utilized in energy consumer materials, devices and catalytic applications. The various applications identified include: photocatalysis, catalysis, optics, electronics, energy storage and production, ceramics, pigments, cosmetics, sensors and heat transfer. The present investigation aims to explore and optimize the utilization of TiO_2 nano-materials in solar cell technology to enhance efficiency and reduce manufacturing costs. The study will involve the synthesis of TiO_2 nanoparticles with controlled size, morphology, and crystalline phase to improve light absorption and charge carrier mobility. Furthermore, various strategies such as surface modification, doping, and heterostructuring will be investigated to tailor the electronic band structure and enhance charge separation and transport properties. Additionally, the research will focus on developing scalable fabrication techniques for TiO_2-based solar cells, including solution processing, printing, and low- temperature deposition methods, to enable large-scale production at reduced costs. Through a combination of material synthesis, characterization, device fabrication, and performance evaluation, this research seeks to contribute to the advancement of TiO_2 based solar cell technology, making significant strides towards cost-effective and efficient photovoltaic devices for renewable energy applications.

Keywords: photovoltaic, solar cell, titanium dioxide, nanomaterials

Introduction:

In the trade of sustainable energy solutions, solar photovoltaic (PV) technology has emerged as a front runner due to its abundant source, inexhaustible nature, and

[#]Department of Chemistry, Integral University, Lucknow-226026, UP (INDIA); *Department of Chemistry, V.B.S. Govt Degree College, Campierganj, Gorakhpur-273158, UP (INDIA); [§]Department of Chemistry, St. Andrew's College, Gorakhpur-273001, UP (INDIA); [$]Department of Chemistry, Maharana Pratap Mahavidyalay, Jungle Dhusan, Gorakhpur-273014, UP (INDIA)

 ISSN 0976-0849

minimal environmental impact. Among various materials employed in solar cell fabrication, titanium dioxide nanomaterials have garnered significant attention for their unique properties that can enhance solar cell efficiency while reducing costs.TiO_2, a widely studied semiconductor, exhibits desirable attributes such as high electron mobility, chemical stability, and biocompatibility, making it an ideal candidate for photovoltaic applications. Moreover, its abundance and low toxicity further contribute to its appeal in large-scale solar cell manufacturing. This paper explores recent advancements in TiO_2 nanomaterials tailored specifically for enhancing the efficiency and cost-effectiveness of solar cells. By leveraging nanotechnology, researchers have devised innovative strategies to manipulate the properties of TiO_2, thereby overcoming limitations associated with conventional solar cell materials. One of the key advancements lies in the synthesis of TiO_2 nanostructures with precise control over size, morphology, and crystallinity. Nanostructuring not only enhances light absorption and charge separation but also facilitates electron transport within the solar cell device, leading to improve overall efficiency[1].

Furthermore, the development of novel TiO_2-based heterojunctions and composite materials has revolutionized solar cell design. By integrating TiO_2 with complementary semiconductors or functional materials. researchers have achieved synergistic effects. such as enhanced light harvesting, reduced recombination losses, and improved stability.In addition to efficiency improvements, efforts have been directed towards cost reduction through the optimization of fabrication techniques and the utilization of inexpensive raw materials. Innovative approaches, including solution processing, chemical vapor deposition, and scalable printing methods, have been explored to minimize production costs while maintaining high performance.Moreover, advancements in TiO_2-based perovskite solar cells have gained prominence due to their potential for surpassing the efficiency limits of conventional silicon-based photovoltaics[2]. TiO_2 serves as a critical component in the electron transport layer of these devices, contributing to their remarkable photovoltaic performance. The continuous advancements in TiO_2 nanomaterials represent a promising avenue for achieving high-efficiency and cost-effective solar cell technologies. By harnessing the unique properties of TiO_2 and leveraging nanotechnology-driven innovations, researchers aim to accelerate the transition towards a sustainable energy future powered by sunlight.

Fundamentals of TiO_2 Nanomaterials:

Titanium dioxide nanoparticles are a type of nanomaterial that has garnered significant attention due to their unique properties and various applications. Titanium dioxide is a naturally occurring oxide of titanium. It exists in three main crystalline

forms: rutile, anatase, and brookite. Among these, anatase and rutile are the most commonly studied forms for nanoparticle applications due to their unique properties[3]. TiO_2 nanoparticles typically have dimensions ranging from 1 to 100 nanometers. Their small size imparts distinctive properties such as large surface area to volume ratio and quantum size effects.

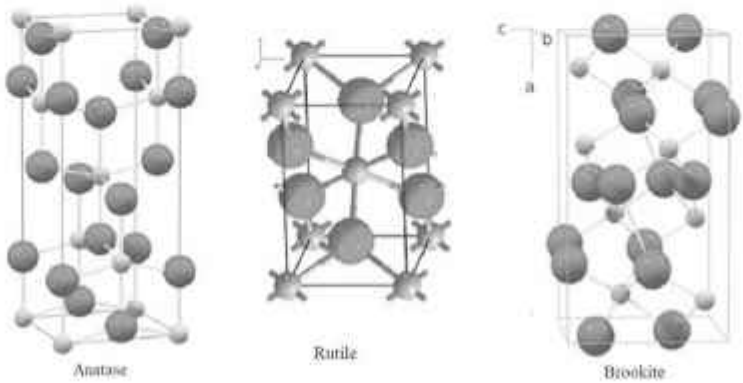

Fig. 1 Deferent types Crystal structure of TiO2

Properties of TiO_2 Semiconductor:

Titanium dioxide nanoparticles exhibit photocatalytic activity, meaning they can accelerate chemical reactions under light irradiation. This property finds applications in environmental remediation, water purification and self-cleaning surfaces[4]. TiO_2 nanoparticles possess optical properties such as high transparency in the visible region and strong UV absorption, making them useful in sunscreen formulations and UV-blocking coatings. TiO_2 nanoparticles have been studied for their antibacterial properties, which have potential applications in medical devices, textiles, and packaging materials. TiO_2 nanoparticles have been exploited for genetic and tissue engineering, bioimaging, manufacturing healthcare products, and the treatment of certain diseases like cancer. In this chapter, the advance properties of TiO_2 nanoparticles that are responsible for their usage in numerous applications. TiO_2 nanoparticles can exhibit semiconducting behaviour, making them useful in electronics, sensors, and solar cells.

Synthesis method of TiO_2 nanoparticles:

1- By hydrothermal method:

Dissolve 0.1 N titanium tetra isopropoxide in 20 mL of ethanol solution and stir continuously for 30 min. Then add a few drops of distilled water to get a medium dispersion. Put the product in an ultrasonic bath for 20 minutes. After ultrasonic treatment,

 ISSN 0976-0849

the solution was transferred to an autoclave at 150°C for 3 hours. The solution was then cooled to room temperature, washed with deionized water, and centrifuged to remove impurities. Then filter Whatman No. 1 filter paper[5]. The filtered samples were dried in an oven at 110 °C for 5 hours and heated at 500 °C for another 2 hours. The resulting TiO_2 NPs were collected.

2- By sol-gel method:

TiO_2 nanopowders were prepared by the sol-gel method. Synthetic TiO_2 was obtained primarily using titanium (IV) isopropoxide (TTIP) and isopropyl alcohol. In a typical procedure, 100 mL of isopropyl alcohol is added to 15 mL of TTIP. Stir the entire mixture for 25 minutes. using magnetic stirrer. 10 ml of deionized water was added to the solution to act as the hydrolysis reaction. The mixture is then turned into a gel by stirring continuously for 2 hours. After a 24-hour holding period, the gel was filtered and dried in a vacuum oven at 80°C for 3 hours. TiO_2 was calcined at 550°C for 4 hours. Finally, TiO_2 nanoparticles were produced using the sol-gel technique[6]. In this way, titanium dioxide nanoparticles were prepared.

3- By green synthesis:

Separate the aloe- vera leaves from the plant, wash them thoroughly and cut them into small pieces. Put 50 grams of leaves in 200 mL of distilled water and cook at 90°C for 2 hours. Use filter paper to filter the extract. The filtrate was saved for nanoparticle synthesis. 225 mL Millipore water and 1.0 N titanium chloride ($TiCl_4$) are mixed each other[7] for the preparation of TiO_2. The leaf extract was added drop wise with constant stirring to bring the pH of the solution to 7. The mixture was stirred continuously for 4:15 hours. Nanoparticles are produced through this process and then filter paper is used to separate the nanoparticles and the product is backwashed with water to remove by products. The nanoparticles were dried at 100°C overnight and calcined at 500°C for 4 hours.

Efficiency of Photovoltaic Cells Based on Nanomaterials:

Photovoltaic cells based on nanomaterials hold significant promise for enhancing the efficiency of solar energy conversion[8]. Nanomaterials offer unique properties such as high surface area, tunable bandgaps, and enhanced light absorption, making them suitable candidates for improving photovoltaic performance. Nanomaterials can be engineered to have a high absorption coefficient across a broad spectrum of wavelengths, including those outside the visible range. Quantum dots, nanowires, and nanocrystals can be precisely synthesized to capture a larger portion of the solar spectrum, thereby increasing the overall efficiency of the solar cell. Nanostructured surfaces can minimize

light reflection by effectively trapping incident photons through mechanisms such as light scattering or anti-reflective coatings. This reduces the loss of photons that can escape the cell without contributing to electricity generation. Nanomaterials with tailored electronic properties can facilitate the efficient transport of charge carriers (electrons and holes) within the photovoltaic device. For example, nanowires and carbon nanotubes possess high electron mobility, enabling rapid charge transport and reducing recombination losses.

Certain nanomaterials exhibit the phenomenon of multiple exciton generation (MEG), wherein a single absorbed photon generates more than one electron-hole pair. This process can significantly enhance the photocurrent in solar cells, leading to higher efficiency. Quantum dots are particularly known for their potential to exhibit MEG[9]. Nanomaterials enable the fabrication of flexible and lightweight solar cells, which can be integrated into a variety of applications, including wearable electronics and portable power sources. This versatility expands the potential for solar energy utilization in both traditional and emerging markets. Some nanomaterials are abundant, inexpensive, and easy to synthesize, offering a cost-effective alternative to traditional solar cell materials. Additionally, the use of nanomaterials in thin-film and solution-processing techniques can reduce manufacturing costs and energy consumption. Certain nanomaterials exhibit excellent stability against environmental degradation, such as corrosion and photodegradation. This durability enhances the longevity and reliability of photovoltaic devices, contributing to their overall efficiency over their operational lifespan. Perovskite organometal halide solar cells are considered an important component of photovoltaic systems due to their high power conversion efficiency (PCE) and low consumption. While the PCE of solid-state perovskite solar cells was 9.7% in 2012, it was reported to be as high as 19.3% in 2014. In the following Table lists the performance of photovoltaic cells.

Material (cell configuration)	**Voc(V)**	**PCE**	**FF**	**Jsc (mA/cm^2)**
$MAPbI_3$ ($MAPbI_3$/PCBM)	0.62	4.00	0.65	10.35
$MAPbBr_3$ (mp-Al_2O_3/$MAPbBr_3$/PDI)	1.34	0.60	0.5	1.09
$MAPbI_3$ (ZnOnanorod/$MAPbI_3$/spiro-MeOTAD)	1.04	8.9	0.53	16.95
$MAPbI_3$"xClX (MAPbI3"xClX/P3HT)	0.923	10.7	0.546	21.2
MASn0.5Pb0.5I3 (mp-TiO_2/MASnxPb(1"x)I3/P3HT	0.44	4.16	0.53	20.07

Table-1 Photovoltaic performance depending on cell configurations and material types of perovskite solar cell.

Renewable Energy Integration in Everyday Life:

Cost-effective solar cell applications are crucial for expanding the adoption of solar energy across various sectors and regions. Here are several applications where cost-effective solar cells can make a significant impact. Installing solar panels on residential rooftops enables homeowners to generate their own electricity, reducing reliance on grid power and lowering utility bills over time. Cost-effective solar cells make residential solar installations more affordable, accelerating the transition to clean energy at the household level. Large- scale solar installations on commercial and industrial buildings provide an opportunity to offset energy costs and demonstrate corporate social responsibility[10-11]. Cost-effective solar cells make these projects financially viable, offering attractive returns on investment for businesses while reducing their carbon footprint. Solar power is often the most practical solution for electrifying off-grid and remote areas where extending traditional grid infrastructure is prohibitively expensive. Cost-effective solar cells enable the deployment of affordable standalone solar systems, providing reliable electricity for lighting, communication, healthcare, and education in underserved communities.

Solar-powered water pumping systems offer a sustainable solution for irrigation in agriculture, livestock watering, and water supply in remote areas. Cost-effective solar cells make these systems economically viable, improving water access and agricultural productivity while reducing dependence on fossil fuels and manual labour. Solar-powered street lights and infrastructure such as bus shelters, parking meters, and signage provide cost- effective lighting and services without the need for grid connections. Using affordable solar cells lowers the upfront costs of these installations and eliminates ongoing electricity expenses, making them financially attractive for municipalities and urban planners.Solar chargers and power banks equipped with cost-effective solar cells offer convenient solutions for charging mobile devices, outdoor equipment, and emergency backup power. These portable solar products are particularly useful for camping, hiking, boating, and disaster response, providing reliable energy access in remote locations[12-14]. Community-based solar projects and microgrids allow multiple users to share the benefits of solar energy generation, lowering costs through economies of scale and collective investment. Cost- effective solar cells enable the development of community-owned solar installations, empowering local communities to control their energy production and consumption. Cost- effective solar cells play a crucial role in accelerating solar energy adoption in emerging markets and developing countries where energy access is limited, and traditional grid infrastructure is inadequate. Affordable solar solutions contribute to economic development, poverty alleviation, and environmental sustainability in these regions.

Current Challenges in TiO_2 Based Solar Cell Technologies:

Titanium dioxide based solar cells have been extensively studied for their potential application in photovoltaics due to their abundance, low cost, and stability. However, several challenges still exist in the development of TiO_2-based solar cell technologies. One of the primary challenges is the relatively low efficiency of TiO_2-based solar cells compared to other materials like silicon-based cells[15]. Enhancing the efficiency of these cells remains a significant research focus.Efficient charge carrier transport is essential for high-performance solar cells. In TiO_2-based solar cells, ensuring rapid transport of electrons to the electrode while minimizing recombination losses is crucial. TiO_2 has a wide bandgap, which limits its absorption of sunlight to the ultraviolet (UV) range. Enhancing light absorption in the visible spectrum is crucial to improve overall efficiency. TiO_2-based solar cells often require compatible electrodes for efficient charge extraction. Finding suitable electrode materials that are cost-effective, stable, and compatible with TiO_2 is a challenge.

Stability and durability are crucial for the long-term performance of solar cells, especially in outdoor environments. TiO_2-based solar cells may suffer from degradation due to environmental factors such as moisture, temperature variations, and UV exposure. Developing cost-effective and scalable synthesis and fabrication methods for TiO_2-based solar cells is essential for commercial viability. Solution-based fabrication techniques, such as spray pyrolysis and doctor-blade coating, are being explored to simplify production processes. TiO_2-based solar cells are often used in dye-sensitized solar cells (DSSCs), where dyes are employed to enhance light absorption. Improving the stability and efficiency of dye sensitizers while maintaining compatibility with TiO_2 is a challenge[16]. Hybrid perovskite- TiO_2 solar cells have shown promising efficiency improvements. However, challenges remain in optimizing the interface between the perovskite layer and the TiO_2 electron transport layer to minimize defects and improve charge extraction. Transitioning laboratory- scale TiO_2-based solar cell technologies to large-scale production faces challenges related to cost, scalability, and maintaining performance consistency. While TiO_2 is abundant and non- toxic, the manufacturing processes and materials used in TiO_2-based solar cells may still have environmental impacts. Developing sustainable manufacturing practices and materials is essential to minimize environmental footprints.

Conclusion:

The exploration of titanium dioxide nanomaterials has illuminated a path toward highly efficient and cost-effective solar cell applications. Through meticulous research and development efforts, scientists have unlocked the potential of TiO_2 to revolutionize

 ISSN 0976-0849

the landscape of photovoltaic technology. The advancements in TiO_2 nanomaterials have been multifaceted. Researchers have achieved precise control over TiO_2 nanostructures, optimizing their morphology, size, and crystallinity to enhance light absorption, charge separation, and electron transport within solar cell devices. This meticulous engineering has led to significant improvements in solar cell efficiency. Furthermore, the integration of TiO_2 with complementary semiconductors and functional materials has propelled the development of innovative heterojunctions and composites, unlocking synergistic effects that further enhance solar cell performance. These advancements not only boost efficiency but also contribute to the stability and longevity of solar cell devices. Moreover, the quest for cost-effective solar cell technologies has been advanced through the optimization of fabrication techniques and the utilization of inexpensive raw materials. Scalable production methods and innovative processing techniques have been explored to minimize manufacturing costs while maintaining high performance, paving the way for widespread adoption of solar energy. The emergence of TiO_2-based perovskite solar cells represents a particularly promising avenue for achieving unprecedented levels of efficiency. By leveraging TiO_2's unique properties in electron transport layers, researchers have propelled perovskite solar cells to the forefront of photovoltaic technology, with the potential to surpass the efficiency limits of traditional silicon-based solar cells.

Acknowledgements:

The authors are grateful to the Head, Department of Chemistry, Integral University, Lucknow, for library and other necessary facilities Thanks are also due to the Principal, St. Andrew's College, Gorakhpur, for their encouragement and help. One of the authors (KishorNand) is thankful to Principal. V.B.S. Govt. Degree College, Campierganj. Gorakhpur for necessary discussion in the preparation of this manuscript.

Reference:

1. Kumar, R.K., K.U. Kumar, D. Haranath, (2022), '9 - Synthesis, characterization, and applications of ZnO–TiO2 nanocomposites', A Text Book of Nanoscale Compound Semiconductors and their Optoelectronics Applications 271-314.
2. Rashad, M.M., A.E. Shalan, M.L. Cantú, M.S.A. Mottaleb, (2013), 'Synthesis and characterization of mesoporousanatase TiO2 nanostructures via organic acid precursor process for dye-sensitized solar cells applications', Journal of Industrial and Engineering Chemistry , 19(6) : 2052-2059 .
3. Yu, Y.Y., W.C. Chien, Y.H. Ko, C.H. Chen, (2011) , 'Preparation and characterization of P3HT:CuInSe2: TiO2 thin film for hybrid solar cell applications', Thin Solid Films 520(5):1503-1510 ,
4 Akakuru, O.U., Z.M. Iqbal & A. Wu, (2020). TiO2 nanoparticles: properties and applications. TiO2 Nanoparticles: Applications in Nanobiotechnology and Nanomedicine, 1-66.
5 Clement, N., Ogbonda, C.J. Amaechi, (2021), 'Synthesis and optical characterization of perovskite layer

and TiO2 layer for solar cell application', International Journal of Innovations in Science and Technology, 11 :1-10.

6. Akhlaq, M., Z.S. Khan, (2020), 'Synthesis and characterization of electro-spun TiO2 and TiO2-SnO2 composite nano-fibers for application in advance generation solar cells', Materials Research Express, 7 (1) : 1-19.
7. Rao, K.G., C.H. Ashok, K.V. Rao, C.H.S. Chakra, P. Tambur, (2015). Green Synthesis of TiO2 Nanoparticles Using Aloe Vera Extract, International Journal of Advanced Research in Physical Science (IJARPS) 2(1A) :P 28-34.
8. Kanta, A.F., M. Poelman, A. Decroly, (2015), 'Electrochemical characterisation of TiO2 nanotube array photoanodes for dye-sensitized solar cell application', Solar Energy Materials and Solar Cells, 133: 76-81
9. Kanwal Akhtar, Naveed Akhtar Shad, M. Munir Sajid, Yasir Javed, Muhammad Asif, Khuram Ali, Hafeez Anwar, Yasir Jamil and S.K. Sharm (2020), e-book of Solar cells Photovoltaic-Based Nanomaterials: Synthesis and Characterization Springer. pp. 139-158.
10. Meng, L., H. Chen, C. Li, M.P.D. Santos, (2015), 'Preparation and characterization of dye-sensitized TiO2 nanorod solar cells Thin Solid Films, 577: 103-108.
11. Rashad, M.M., A.E. Shalan, M.L. Cantú, M.S.A. Mottaleb, (2013), 'Synthesis and characterization of mesoporousanatase TiO2 nanostructures via organic acid precursor process for dye-sensitized solar cells applications', Journal of Industrial and Engineering Chemistry, 19(6) : 2052-2059.
12. Mamun, Md. R., K.T. Hossain, S. Mondal, A.M. Khatun, M.S. Islam, Dr. Md. Z.H. Khan, (2022), synthesis, characterization, and photocatalytic performance of methyl orange in aqueous TiO2 suspension under UV and solar light irradiation, South African Journal of Chemical Engineering, 40 : 113-125.
13. Bhogaita, M., S. Yadav, A.U. Bhanushali, A.A. Parsola, R.P. Nalini, (2016), 'Synthesis and characterization of TiO2 thin films for DSSC prototype' Materials Today: Proceedings 3(6) 2052-2061.
14. Mahmood, A., J.L. Wang, (2021), 'Machine learning for high performance organic solar cells: current scenario and future prospects', Energy Environ. Sci., 14: 90-105.
15. Chen, C., P.C. Chen, C.H. Chen, Shih, (2017), 'A Review on Production, Characterization, and Photocatalytic Applications of TiO2 Nanoparticles and Nanotubes', Bentham Science Publishers, 13(21) : 373-393.
16. Unal, F.A., O.K. Semih, M. Unal, S. Topal, K. Cellat, Şen F, (2020), 'Synthesis, characterization, and application of transition metals (Ni, Zr, and Fe) doped TiO2 photoelectrodes for dye-sensitized solar cells', Journal of Molecular Liquids, 299:112177.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 174-178

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

Buddhism in Vietnam

Dr. Mahesh Kumar Sharan*

Abstract: Vietnamese Buddhism was originally brought in from China, but later also received the influences of the Hinayana Buddhism of Burma and Thailand. Mahayana thought was unable to plant deep roots in Vietnam. As in the other South East Asian countries, in Vietnam, the understanding of the concepts of Mahayana Buddhism was always somewhat unclear. Buddhist temples and Buddhist monks in Vietnam did not follow the Chinese monastic system.

During the second half of the 19th century, Vietnam was invaded and occupied by the French. From this point on, the religious situation no longer remained simple. Before Vietnam regained its independence, the ancient Buddhist faith, which had relied on the protection of the royal family, had fallen into the gap between the new and the old eras and had run its natural course. At present, Vietnamese Buddhists have declared their struggle for independence. There have been several waves of this struggle that have risen up and overthrown governments. Monks and nuns have even immolated themselves in this struggle to demonstrate their adamant resistance to anti-Buddhist measures, and this has already attracted the attention of the whole world. At present, it is very difficult to judge whether this movement will succeed or not, and we must leave this for future historical judgement.

Keywords: Hinayana, Mahayana, Monks, Nuns, Chinese Buddhism.

In the 18th and 19th centuries in Vietnam as well as in other Buddhist nations, Buddhism could not spread for want of proper organisation and it's further development almost came to a stop. When East Asia began its intercourse with the western civilisation, Asian people suffered from inferiority complex in comparison to the west in aspects. Thus the Asian races, especially the popular nations like China and India forgot the precious spiritual heritage of their ancestors and pursued the powerful material learning and civilisation of the west. Buddhism as well as other religions in Asia had nothing left except rites and traditions and their essence became buried deeply in neglected dust of time.

The eye was indeed, dazzled to see the glittering aspects of western civilization,

*Former Professor and Head, P.G. Deptt. of Ancient Indian & Asian Studies, Gaya College, Gaya-Magadh University, Bodhgaya (Bihar), Mob. 6393771493

but the Asians gradually came to know that this western civilisation was not yet perfect. All thinkers, philosophers, leaders of religions and virtuous persons, after having learned the methods of reasoning, analysis and research with scientific precision, returned to dig and find out the treasure of ancestral spiritualism forgotten by them. The great scholars, archaeologists, ethnologists discovered many documents speaking of the true value of the Asian civilisation, the moving force of which is Buddhism.

Therefore, Buddhism particularly attracted their attention. And the more we try to enter into Buddhist culture deeply, the more we (the Western era as well as the Eastern era) are surprised to see its perfect nature and nobility. From the time a new epoch begins which

The Van Monh Buddhist ..... stupendous progress. At present there are more than five thousand students and scholars in this University. In time, one would like to say that though practically war is going on in Vietnam since 1941, the Buddhist followers of this country are making enormous efforts to maintain not only their faith, but also to develop and give a vitality to the fundamental of Buddhism, i.e. the compassion. Buddhism now is so intimately bound up with the Vietnamese citizens that it has become a vital necessity for their existence and daily life.[1]

History (The Theravada sect)

In order to fix the date when the Theravadin Buddhism was introduced into Vietnam, one has to go across the history of the county.[2] Similar as the Champa desha, the Cochin China (middle Vietnam), S.Vietnam, formerly was a part of Cham Lap (Cambodia)

Through several dynasties and emperors, the history of ancient Cambodia and Annan went on sometimes in war and sometimes in peace. Lastly, this part of Cambodia was occupied by the Annam people. Here is a short account of the conflict between these two.

The Achievement of the Nguyen in South

In their expansion southward the Nguyen came up against the resistance of Champadesha and Chan Lap. In 1611 A.D., King Nguyen Hong set up Phu Yen province which had been a part of Champadesha territory and in 1653 A.D. he went as far south as the Phan Pang River and constituted the present province of Khanh Hoa. The organisation of two other provinces, Thuan and Phus in 1693 A.D. and of the prefecture of Yen Phuc 1697 A.D. and submission of the province of Birh Thuan in the same year marked the end of the Champadesh as a nation.[3]

The present territory of South Vietnam was then a part of Chan Lap. The Cambodian people lived in South Vietnam from the 7th century A.D. They occupied the Funan and made the Chan Lap country.[4] The struggle made many people to emigrate southward to the areas of Ba-Ria and Bien Hoa to avoid famine and other sufferings of war. Following disorders occasioned by the death of the Chan Lap King, the Nguyen intervened in 1658 A.D. and their interventions became from then on more and more frequent.[5] This forced the Chan Lap King to pay them tributes and to accept the migration of Annam people into the Chan Lap territory. In 1674 A.D. King Nguyen took Saiçon (modern Saigon).[6]

In 1679 A.D., some three thousand Chinese who had remained faithfully to the king, when the Thanh took the throne from them, came in fifty boat and caught refuge with the Nguyen. These Chinese refuges were sent to colonise the region of Bong Pho, the province of Gia Dinh and gradually spread out in the areas now known as Bien Hoa and My Tho.

In 1700 A.D. a Chinese named Mac Cun came to the present province of Ha Tien as the head of a group of cantonese. They soon colonized the province of Ha Tien and in 1708 A.D. Mac Cun declared himself a vassal of the Nguyen. The Nguyen continued to intervene in the affairs of Chan Lap between 1700 A.D. and 1760 A.D. in response to the requests from rival families in this kingdom and finally, slowly but surely took all of the territory which now constitutes that was commonly known as the six provinces of the south viz. Gia Đình, Dinh Tuong, Bien Hoa, Vinh-Long, An Giang and Ha Tien.[7]

According to Samantapasadika, a commentary on the Pali Vinaya Pitaka, it is reported that after the 3rd Buddhist council held in Jambudvipa i.e. India, in the third century B.C. Mahamoggaliputtatissa Mahathera under the auspices and patronage of Emperor Dharmasoka sent two monks namely Sonathera and Uttarathera from India to Suvannabhumi in order to promulgate the teachings of Buddha there.[8] The whole of south east Asia including Cambodia, was they called Suvarnabhumi.[9] On the other hand, according to the Chinese chronicles in ancient days Champadesha had as neighbour in the west a state which was known as Funan.[10] It was a great empire which had the centre of its power in the territory of modern Cambodia and extended its suzerainty from the lower Cochin China to the Gulf of Bengal and from upper Laos down to the Malay Peninsula. It counted among its vassals, the Mons of Dvaravati (Siam)[11] and the Khmers, then established on the Mekong in the region of Bassak. Its history occupies the first five centuries.[12]

At present the Theravada sect of Buddhism is the prominent sect in Vietnam. They have more than 20,0000 Bhikkhus and Samaneras in the country. About more

than 500 monasteries and a large number of the Chaityas and Stupas have been found there. Almost every village of the above areas has more than one monastery and more than one chaityas or stupas. There are about 105 Pali Primary Schools for training the Buddhist monks and novices. For higher studies the Theravadin Buddhist have two Pali Higher Schools. The original Vietnamese people always want their children should follow the elders and observe the Theravadin Buddhist traditions, the old customs and manners. Keeping this in mind they guide their children from the very beginnings. They send their children to receive education in schools located in the monasteries. The children of all classes have to go to school of the monasteries. The monastery is regarded as the best place for training the children in the beginning stage. In addition to the general subjects of the official education, Buddhism too is taught to the children in these schools. When it is found that their children have become able to understand the teachings of Buddha well have developed keen interest in it. They are regarded as fit to become Samaneras or Bhikkhus. This tradition is still in the blood of the Vietnamese people. When they attain the age of 12, usually they become Samaneras. They believe that by becoming Samanera they pay their fulfil duties to their mothers and when they are 21 years old, they become Bhikkhus in order to fulfil their duties towards their fathers.

For high ordination they are required to possess a thorough knowledge of Pali and the teaching of Lord Buddha. If one disrobes oneself from monkhood as permitted in Buddhism people call him a Pandita (a wise man) because then his conduct is regarded a very noble after the ordination. If a person does not enter into order, he is considered ignorant man. It is the ordination which makes their people learn the auspicious manner, nobility of mind and sincerity of heart through Buddhism.

Some Buddhist Practices and Customs

In all kinds of ceremonies such as the Buddhist ceremonies, royal ceremonies etc. people from all classes of society participate which are performed in the temples. They get many such occasions to assemble and as such this get together provides them with great opportunity to discuss dharma and to understand further the important points of Buddhism. These assemblies of them enable them to find out suitable ways and means for the all round growth of their community.

The five moral precepts of Buddhism held in very high esteem. They are a regarded as very precious and it is the private percussion of their people that the observance of these moral precepts leads to complete eradication of all the corruptions, offering alms to Buddhist monks as one of the most important and noble duties of the society, since it does sway with avarice and pettiness. Buddhists always prefer to go to temple in order

to discuss the doctrine of Buddha and also the different problems of the society. The result is that all matters are settled peacefully.

A good number of ancient customs and traditions are prevalent in their society. They are as follows:-

The act of offering alms to Buddhist monks (Sanghadana), Buddha's bathing, Vassavasa, Abhisheka of Buddha's image, Kathina ceremony etc. general ceremonies like marriage, funeral and new year etc. All these are comprehended as Buddhist ceremony. On all there ceremonies the Buddhist Sangha is invited with high esteem to participate.

The Bhikkhus and Samaneras following the Theravada feet of Buddhisn follow these two main observances viz. Candhadhura and Vipassanadhura. They fulfil these observances according to their ages. If they are young, they have to study dhamma and vinaya and the general knowledge and so it is called Candhadhena, But those who are old, they practice Vipasanadhura i.e. meditation. They have to learn these thoroughly and try their level best to spread them amongst the people of the world with a view to maintain the wisdom and compassion taught by Lord Buddha.

References

1. Mung, N.V. A Short History of Vietnam, The Times Publication Company, Saigon, 1958, p. 327
2. Hammer, Ellen. Vietnam Yesterday and Today, Holt Rinchart and Winstone Publication, New York, 1966, p. 77
3. Selmon. Focus on Indoching, Foreign Languages Publishing House, Hanoi, 1961, p. 228
4. Lien, Quang. A Short Introduction of Buddhism in Vietnam, Lord Buddha Publishing House, Saigon, 1968, p. 49.
5. Naguen Noga Linh. Vietnam Magazine, Vol. I, No. 11, Saigon, 1971, p. 8
6. Breggs, L.P. Ancient Khmer Empire, The Americal Philosophical Society, Philadelphia, 1951, p. 157
7. Eliot, C. Hinduism and Buddhism, 3 Vols., London, 1921, p. 215
8. Law, B.C. The History of Buddha's Religion, Luzac and Company, London, England, 1952
9. Hardy, Spencer. A Manual of Buddhism in its modern development. Translated from Singhalese MSS, Varanasi, 1967, p. 212
10. Jan_Yun_Hun. A chronicle of Buddhism China, Bharti Research Publication, Calcutta, 1966, p. 115
11. Cady, J.F. South East Asia : Its historical development, McGraw-Hill, New York, U.S.A., 1964, p. 77
12. Jan_Yun_Hua. op.cit, p. 147

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 179-186
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

Tribal Entrepreneurship

Dr. Meetu Singh*

Abstract: Entrepreneurial activity among the tribal people is regarded as the key indicator for the economic development of the country. It does not only provide earnings to the owners but also provide employment opportunities to others. Entrepreneurship plays pivotal role in accelerating the economy, generating employment, eradication of poverty and exploitation of natural resources for the economic development of the country. After the emergence of **Liberalisation, Privatisation and Globalisation (LPG)** concept the government has shifted its role from job provider to a facilitator of job creator. With this more and more younger people get attracted to undertake entrepreneurial activities for self employment and employment to others also. Entrepreneurial qualities and skills are essential for industrial development as well as eradication of poverty by means of creating self employment and employment to others. The Central and the State governments are trying their best for promotion of entrepreneurship among the economically backward castes, particularly in scheduled tribes through policy measures and institutional network. Keeping in view the need and importance of the entrepreneurship development among underprivileged communities, the present study is taken up to explore about schemes available to support the entrepreneurship development and challenges and opportunities faced by the tribal entrepreneurs and guidelines provided by the government recently to setup tribal entrepreneurship.

Keywords: Tribal society, agriculture, farming, business, MFP

Introduction

Tribal entrepreneurship refers to business activities and initiatives led by number of Tribal communities. Tribal people coming together having strong bonds between them, that act for joint benefits. They have win/win activities, work together for the benefit of all. No one gains more - some may gain this week, while others gain at other times, but overall all gain more than teams or groups. Understanding how to engage your tribe can really charge your business or organisation as you engage the tribes of your tribal members.

"I have defined a tribe is a group of people or actors, that have a unique bond between each other, that they act in the best interest of each of them. In some cases they

*Assistant Professor, Department of Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

 ISSN 0976-0849

have been through some action that strengthen those bonds between them." **Park Tony, (2016). *Business Tribes.***

After the pandemic the Tribal entrepreneurship is looking forward to boom up to pull up the economy of India. Returning back to their places was the only option left out for them who were working as migrants for years. Laborers who were earning on regular wages had to return back home to their native states and villages. The only mode of survival was though their agricultural property and the home to live.

Though the tribal population constitutes 8% of India's population, they represent an enormous diversity of groups in regards to language, linguistic traits, ecological setting, physical attributes, modes of livelihood, level of development, etc. This wide heterogeneity gives rise to both opportunities and challenges for their overall socio-economic development. The tribal segment has a huge potential that still remains untapped due to different reasons, one of them being a lack of awareness about tribal heritage and ignorance about the range and diversity they produce across the country.

Historically, the tribal society is a victim of exploitation through land lords and money lenders. They reside in the remote corners of every state of the country detached from the common stream of the society. Traditionally, their means of livelihood has been forest collections and hunting. Regardless of the region, their sub castes and the local dialects they speak, all the tribes live in extreme poverty with little resources to fall back upon. Of course, some remedial measures are now being adopted to improve the socio-economic condition of tribal population but much more is yet to be done. Present study is an attempt to understand potentiality and the hurdle of tribal entrepreneur in Joida Taluk.

The word 'entrepreneur' is derived from French word 'entrepreneur'. In earlier 16th century, it was applied to those who were engaged in military expedition. In 17th century the word entrepreneur was used for civil engineering activities such as construction and fortification. It was applied to business for the first time in 18th century, to designate a dealer who buys and sells goods at uncertain prices.

Smith and Miner (1983) have classified entrepreneurs in two types-

i. Craftsman entrepreneur are those who are characterized by narrowness of education and training, low social awareness and involvement a feeling of incompetence in dealing with the social environmental and have a limited time horizon.

ii. Opportunistic entrepreneurs are those characterized by a certain degree of education and training, high social awareness and involvement confidence in

their ability to deal with social environment and have a limited name horizon.

Tribal Entrepreneurship

- The procedure of utilization of utility of traditional knowledge, expertise by utilizing available, supportive resources and infrastructure in new or different way to generate wealth, employment and welfare by Tribal is known as Tribal entrepreneurship
- The **Ministry of Tribal Affairs (MOTA),** Government of India along with the apex industry body, **The Associated Chambers of Commerce and Industry of India (ASSOCHAM),** will work for the upliftment of our tribal communities through the joint initiative of the **Centre of Excellence (CoE).**
- More than 4.5 lakh SMEs are directly or indirectly currently associated with ASSOCHAM. Through this Centre of Excellence, value addition, technology advance and marketing of tribal products would be facilitated to the tribal communities in a more effective and efficient manner.
- 1000 tribal artisans would be identified under this initiative and would be helped to create a unique brand identity with a differentiated value proposition and connect with the potential customer base through exhibitions, virtual road shows and explore the participation of the entrepreneur's in major events across the country and internationally.

Tribals Prone to Forest Livelihood

Tribals have less or no connectivity to the technologies and progress. Their survival was in the forests cutting trees, eating fruits and vegetables. Few were able to come out from the forests for education and exposure to the modern world. Mostly are suffering due to poverty and cannot provide education generations after generations. They have seen the lowest progress and neglected parts in India. But, after severe hits of pandemic there is a change. The initiative for progressing as **"Atmanirbhar Bharat"** and **NITI Aayog** accelerated. The remote and indigenous people are now into focus for developing and ensuring entrepreneurship for betterment of the sectors.

Sectors of Tribal Entrepreneurship

The main scopes of improvement to remove from the poverty are possible from the three main sectors:

- **Agriculture:** Agriculture is the main occupation for the tribal people. The development in their agricultural work with new types of equipment and training

 ISSN 0976-0849

is showing new rays of hope to contribute to the economic growth in India. Vocational training and education are provided specifically for the proper implementation of equipment, fertilizers, and new techniques. Majorly India depends on farming and agriculture so it is a great support to the economy. But due to the ignorance in the tribal areas, being remote the exposure to entrepreneurs was less which is now developing.

- **Forestry:** The tribal people of India are a large community that has a population of approximately **10 crores.** So, it is easy to understand the importance of forestry. Bamboos trees are the main attraction of the northeastern part of India, elephants, peacocks, and hornbills are the common animals that roam around the forests. Tourist from different parts of the world comes to visit the farms and hotels to enjoy the beautiful forestry and the animals. Similarly, Jharkhand has the beautiful closeness with nature that tourists love to enjoy.
- **Handicrafts:** Tourist from different parts of the world comes to visit the farms and hotels to enjoy the beautiful forestry and the animals. Similarly, Jharkhand has the beautiful closeness with nature that tourists love to enjoy. Tribal entrepreneurship is serving equally for both males and females. Handicrafts and handlooms are another mainstream for success for both genders. The forestry is close to their livelihood and agriculture the requirement that is providing a great zone to explore as an entrepreneur and participate in India's development.

Making Tribal Entrepreneurs

Appropriate policies and practices for skills development currently occupy a dominant place in development discourse. But the focus is more on skills development for employability. Equally important is that we train our youth in a manner that they become capable to manage the natural resources in their areas and become entrepreneur and subsequently offer jobs instead of seeking jobs. This need is perhaps more appropriate in the tribal areas which are endowed with rich and varied forest resources.

The forest occupies a central position in tribal culture and economy. For numerous forest dwellers across India, particularly people from scheduled tribes, **Minor Forest Produce (MFP)** has significant economic and social value. In India, the MFPs over the years have been playing an important role in the viability and survival of tribal households because of the importance of forests in their social, cultural and economic survival. According to a World Bank estimate, the **MFP** economy is fragile but supports close to **275 million** people in rural India. These people comprise the poorest, including **54 million tribals.** It is ironical that the poorest people in India are living in the areas of

richest natural resources.

Forest Rights Act, 2006 (FRA) and the **Panchayat Act (PESA), 1996,** however, render state trading of MFP illegal. Regarding MFP, the central PESA provides "While endowing panchayats in the Scheduled Areas with such powers and authority as may be necessary to enable them to function as institutions of self-government, a state legislature shall ensure that the panchayats at the appropriate level and the Gram Sabha are endowed specifically with the ownership of minor forest produce.

- Tribes India Contest by TRIFED: The TRIFED (Tribal Cooperative Marketing Development Federation Limited), Ministry of Tribal Affairs and the Government of India have launched two interesting competitions for the tribal people. They are "Be the Brand Ambassador of Tribes India" and "Be a Friend of." Empowering Tribals • Minor Forest Produce (MFP) • Tech For Tribal • Tribal Cooperative Marketing Development Federation Of India (TRIFED) • TRIBES INDIA
- Tribes India E-Market Place: On October 2, 2020, the Union Minister of Tribal Affairs Arjun Munda is to launch the largest handicraft and organic product market place called "Tribes India E-Market Place". The market place is an initiative of TRIFED (Tribal Cooperative Marketing Development). Pradhan Mantri Van Dhan Yojana • Tech for Tribal • Tribal • Tribal Market
- TRIFED launches Digital Communication Strategy in Collaboration with UNICEF: The Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India in collaboration with UNICEF has launched Digital Communication Strategy for the Tribal Gatherers to work safely. The programme highlights the importance of social distancing.

  Tech for Tribal • Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India (TRIFED) • UNICEF • Van Dhan Kendras • Van Dhan Scheme
- 500 officials of TRIFED Van Dhan Yojna unleash power of Webinars to Work from Home: On March 29, 2020, around 500 officials of TRIFED (The Tribal cooperative Marketing Development federation of India) operating under Ministry of Tribal Affairs unleashed the power of Webinars. Corona Virus • COVID-19 • E-Commerce • Lock Down • Ministry of Power
- Tech for Tribals Launched by TRIFED to develop Tribal Entrepeneurship: On March 19, 2020, TRIFED, the Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India launched "Tech for Tribal" initiative. The initiative aims at providing entrepreneurship skills to the tribal people. The initiative is to benefit 3 lakh people.

SHGs • Tech for Tribal • Tribal Communities • Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India (TRIFED) • Tribal Development.

Challenges of Tribal Entrepreneurship

- Financial Challenges
- Policy Changes
- Lack of Technical Knowledge
- Low Motivation Level
- Marketing of Product
- Lack of Infrastructure
- Developing the Vision and Business Idea
- Dealing with Competition

Opportunities of Tribal Entrepreneurship

- Herbal Products
- Handicraft Products
- Tourism Business
- Minor Forest Product Business
- Mineral Mining
- Horticulture
- Beverages and Alcohols
- Social and Cultural Development
- Encouragement of Innovations and Inventions

Government Schemes for Tribal Entrepreneurship

- Setting up of National Tribal Research Institutes
- Online monitoring of progress of projects through dedicated portal.
- Repository of research work monitoring shifted from Manula to Online.
- Improve amenities in health, education, agriculture, finance and skill development.
- ADP has a major impact on India's progress in localizing the **Sustainable Development Goals (SDG).**

- Out of 112 Aspirational Districts, 42 districts have significant tribal populations.
- Below 42 districts have been allocated over **250crore rupees** to prepare project proposals.
- Setting up of 10 museums to commemorate the contribution of tribal's in the freedom struggles.

Van Dhan Yojana

- 1205 Van Dhan Vikas Kendras and 18000 self help groups are formed in 22 states.
- Provided employment opportunities to 3.6 lakh gathers in 22 states.
- Aim to treble the coverage to 10 lakh tribal gathers through the COVID 19 relief plan.
- Catalyst in increasing the MSP for Minor Forest Produce of tribal gathers.

Conclusion

The Tribal entrepreneurs facing several challenges to survive or being exist in the market of competitions. They have not infrastructural facilities to liquid their business idea or expand existing enterprise. They are facing financial challenges to initiateor circulate their production process.

The Tribal entrepreneurs have traditional skill and expertise that should be update by new innovative technique of production. They continuously are facing marketing & management challenge. To market their production and manage for traditional organization structure uses own principle but for expansion of enterprise they have to know modern tools & techniques of marketing and management.

Now the Aadhar linked plan of financing could be helpful to financing Tribal entrepreneurs because prior to this plan they were facing complexities of formalities by financial institution to avail the financial assistance for initiating or continuing their enterprise. Tribal entrepreneurs have to train internet marketing and internet promotional technique of their enterprise because internet is currently has been chief and worldwide source of marketing and promotion. So there is need to create the right environment for success of Tribal entrepreneurs.

The government should insure that Tribal entrepreneur have access to update entrepreneurial skills. The access of smart capital for Tribal entrepreneurs is also compulsory. A networking and exchange system should be promoted by government or Tribal entrepreneurs for exchanging their services and consultancies among them. Both the Central and state government will take more interest for promotion and

 ISSN 0976-0849

development of Tribal entrepreneurship. A separate Tribal chamber of commerce should be established by government or Tribal entrepreneurs in the country.

References

1) https://www.researchgate.net/publication
2) https://www.academia.edu
3) https://www.governancenow.com
4) https://www.youngisthan.in
5) https://www.assocham.org
6) Bogaert M.V., Training Tribal Entrepreneurs - An Experiment in Social Change, Blockman Publication, London, 1975.
7) Verma, R.C., Indian Tribes: Through the Ages, Sumit Publication, Kanpur, 1990.
8) Patil R.R., Tribal Development in India, Kalinga Publication, New Delhi, 2020
9) https://www.dcmsme.gov.in/SAMACHAR/eBook%20of%20Schemes%20for%20MSMEs.pdf
10) Tony, P., Business Tribes, Vikas Publishing House, New Delhi, 2016
11) Komaraiah J.B., Economic Reforms and Tribal Entrepreneurship, Hopeman Publishers, Bangluru, 2008.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 187-196
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

Mental Health Disparities Among Tribal Communities: A Gender-based Analysis

Piyush Kr. Tripathy[1], Dr. Lalit Kr. Mishra[2], Dr. Pragyesh Kr. Mishra[3]

Abstract: This Research explores the impact of Baiga , panika and gond tribe and Gender on mental health in different tribal communities. The study used purposive sampling method to select n- 250 people from different popular tribal communities (Baiga, Panika & Gond) randomly selected from ten villages in Anuppur District, Madhya Pradesh, India. The villages included Bhejri, Pharishemar, Lanka Tola, Lalpur, Amarkantak, Chhapani, Sasaniyan, Umarguhan, Farishemar, and Basahi. Mental health of participant were assessed with the help of 12-items questionnaire.

Two-way ANOVA were used to evaluate the data. The study found that two independent variables (types of tribes and Gender) Types of Tribes and gender had a significant difference on mental health of the participants; though, interaction of these two variable was not found significant. Cultural practices, societal structures, and historical backgrounds all have an effect on tribal people's mental health, with tribal identity.

Keywords: Tribes, Gender & Mental Health.

Introduction

Mental health, an essential aspect of overall well-being, is influenced by many factors, including cultural, social, and economic causes (Ali, et. al, 2024). Tribal communities make up a sizable proportion of the Indian population and have their own cultural customs, lifestyles, and challenges. (Roy & Roy, 2024). Among these cultures, the Baiga, Panika, and Gond tribes in central India stand out for their different social structures and traditional ways of life, making it possible to develop culturally sensitive mental health therapies (Devarapalli, et. al, 2020). Mental health is a state of mind characterized by emotional well-being, relative freedom from anxiety and disabling symptoms, and coping with ordinary demands and stresses of life (Goldenson, 1984). It may also include an individual ability to enjoy life and balance life activities and efforts to achieve psychological resilience (Snyder, 2014). World Health Organization (2004) describes mental health as a state of well-being in which every individual realises his or

[1]PhD Scholar, Dept. of Psychology, IGNTU, Amarkantak, M.P., [2]Associate Professor, Dept. of Psychology, IGNTU, Amarkantak, M.P., [3]Assistant Professor, Dept. of Psychology, IGNTU, Amarkantak, M.P

her potential, can cope with the normal stresses of life, can work productively and fruitfully, and can contribute to her or his community (Afifi, 2007).Mental health is a highly neglected area, particularly in low and middle-income countries (LMIC). Data from community-based studies showed that about 10% of people suffer from common mental disorders (CMDs) such as depression, anxiety, and somatic complaints (Gururaj et al., 2005). The scheduled tribes (ST) population is a marginalised community living in relative social isolation with poorer health indices than similar nontribal populations (Tewari et al., 2017). India has an estimated 90 million STs or 'Adivasis'. The ST communities are identified as culturally or ethnographically unique by the Indian Constitution. They are populations with poorer health indicators and fewer healthcare facilities compared to non-ST rural populations, even when within the same state, and often live in demarcated geographical areas known as ST areas (Ministry of Tribal Affairs, 2014).

The Baiga Tribe

The Baiga tribe, predominantly found in Madhya Pradesh, is known for its deep connection with nature and traditional practices of shifting agriculture. Historically marginalized and often facing socioeconomic hardships the Baiga community experiences unique stressors that impact their mental health. Gender roles within the Baiga tribe are distinct, with men and women having clearly defined responsibilities (Jain & Sharma, 2009). Additionally, the Baiga tribes vulnerability is highlighted by their low socioeconomic status and limited access to basic health facilities, leading to high levels of malnutrition, morbidity, and mortality. (Devarapalli, et. al, 2020)

The Panika Tribe

The Panika tribe in Madhya Pradesh, traditionally involved in weaving and agriculture, faces cultural and economic challenges despite being more integrated into mainstream society than the Baigas (Kumar, 2024). Gender dynamics within the Panika community are intricate, with women balancing household responsibilities and economic contributions, impacting their mental health. At the same time, men experience pressure related to financial provision and societal expectations (Devarapalli, et. al, 2020). The mental health status of tribal communities, including the Panikas, is often compromised due to limited access to appropriate mental health services, highlighting the urgent need for psychosocial care programs to promote overall well-being (Devarapalli, et. al, 2020). Additionally, the Panika tribes' economic struggles, as seen in the poverty among fisher folk in other communities, can perpetuate a cycle of cultural poverty and mindset that hinders economic progress and future investments.

The Gond Tribe

Gond is India's second most numerous tribes, after the Bhils (Singh & Sharma, 2019). The Gondavana region, often known as the country of Gonds, is the easternmost district of Madhya Pradesh, historically known as India's Middle Region. The Gond tribe is concentrated in Madhya Pradesh and Chhattisgarh, particularly in Betul, Hoshangabad, Chindwara, Balagahat, Shahdol, Mandla, Dindori, Sagar, and Damoh districts. The Gond tribe speaks a Dravidian language. (Singh & Sharma, 2019).

Background of the Study

Many elements, including cultural, socioeconomic, and environmental conditions specific to these cultures influence the mental health of individuals in tribal communities. Additionally, Gender impacts the mental health experiences of tribal members.

Tribes and Mental Health

Yadav et al., 2012 found that the study discovered a high prevalence of depression among underweight people in three tribal cultures in India (Baiga, Gond, and Panika tribes), and it showed a link between depression and low BMI (Body mass index). Tribal cultures like the Baiga, Panika, and Gond tribes in India have substantial issues surrounding mental health (Devarapalli, et. al, 2020). Studies have indicated that tribal populations are sensitive to different mental health difficulties, such as alcohol use disorders, anxiety, sadness, and suicide attempts. (Verma, et.al. 2022).) Understanding the sociocultural determinants influencing mental health within these tribal groups is critical for designing effective interventions and encouraging positive well-being among these marginalized populations (Devarapalli, et. al, 2020) Research on mental health among tribal people, particularly Scheduled Tribes (STs), is sparse and of poor to moderate quality, indicating the critical need for more studies in this field (Devarapalli, et. al, 2020).

Gender and Mental Health

Gender influences mental health outcomes in tribal communities. In the Baiga, Panika, and Gond tribes, traditional gender roles frequently govern labor division (Kapungu, 2017), societal obligations, and resource availability. Women, in particular, may face mental health concerns related to reproductive health, domestic violence, and a lack of access to education and treatment. Men, on the other hand, may encounter mental health issues as a result of economic insecurity, societal expectations of masculinity, and the responsibility of being primary cares. The World Health Organization has recognized gender-related risk factors as important determinants of mental health, well-being, and resilience. (Kapungu, 2017).Social variables, such as gender inequities,

have been found to have an impact on women's mental health in India throughout their lives. (Malhotra, 2015). Poor diet and early marriage contribute to this risk (Norris, et al. 2022). Girls aged 14 to 19 in rural and underdeveloped India are particularly vulnerable. *(National Family Health Survey-4 (2015-16).*

Research shows that types of tribes and Gender have a significant impact on mental health. Very few researchers have examined in this area, especially in these area (as selected by the researcher). This study aims to assess the impact of types tribes and Gender on mental health.

Objective

1. To investigate the effect of types of tribes (Baiga, Panika, and Gond) on the mental health.
2. To investigate the effect of Gender on the Mental health among.
3. To investigate the interaction effect of types of tribes (Baiga, Panika, and Gond) and Gender on the Mental Health.

Hypothesis

1. There will be no significant difference between Baiga, Panika and Gond tribes on the mental health.
2. There will be no significant difference between male and female on the mental health.
3. There will no significant interaction effect of types of tribes and Gender on the Mental Health.

Method

Research Design

The present study was conducted to investigate the impact of types of tribes and gender on mental health. The present study was following in 3x2 factorial designs; three levels of tribal group (i.e., Baiga, Panika and Gond.) and two level of Gender (i.e., Male and Female). Thus, there were 6 combinations in total.

Variable

The data were collected descriptively. Types of tribes and Gender were considered independent variables, and mental health as the dependent variable.

Participants

A total of 250 individuals was drawn using purposive sampling method from ten

villages of Anuppur District, Madhya Pradesh, including Bhejri, Pharishemar, Lanka Tola, Lalpur, Amarkantak, Chhapani, Sasaniyan, Umarguhan, Farishemar, and Basahi. A purposive sample is expected to be representative of the population. A study was done on three prominent tribes in Anuppur District: Baiga (Total n=69, 32 male and, 37 female), Panika (Total n=100, 48 male and 52 female), and Gond (Total n=81, 37male and 44 female), with ages ranging from 18 to 60. After receiving responses from all of the items on the Scale and thanking the participants, they were promised that their information would be kept confidential.

Research Instrument

The Mental Health Questionnaire for Tribes Perspective was used to measure the mental health of tribes. The scale was developed by the researchers. This 12-item questionnaire includes 6 positive and 6 negative items. Participants were ask to rate every items based on things happened in their life in past few weeks. While negative items included feeling related to continually stressed. Items were grouped based on wording, with positively affect items numbered 1, 3, 4, 7, 8, and 12. The rest are negative affect items. Responses were categorized on a five-point Likert type rating scale, with 1 representing strongly disagree, 2 representing disagree, 3 representing cannot say, 4 representing agree, and 5 representing agree. The tool's dependability was determined using Cronbach's alpha reliability approach, and the internal consistency reliability was found to be 0.70. This is equivalent to the suggested value of 0.70, the values showed that the Questionnaire is reliable, and all test items assessed mental health. Researchers used the content validity ratio (CVR) for item validation. Ten experts did this process in three phases. The final CVR was calculated and found to be 0.79, higher than the suggested value of 0.75, (Ayre, & Scally, 2014).

Research Procedure

The mental health questionnaire for the tribal community was distributed to 250 tribal participants from several areas in Anuppur District, Madhya Pradesh, India. Each person was approached at their own home, and they were informed about the study's goal. Following verbal consent and volunteer participation in the study, participants were asked questions one by one, and based on their responses; researchers selected a proper response on a five-point rating scale.

Result

This section describes the findings of an analysis done to better understand mental health inequalities among indigenous cultures, with a focus on gender-based variances.

 ISSN 0976-0849

Table1: Mean and SD of mental health of different type of tribes and Gender.

Descriptive Statistics

Dependent Variable: - Mental health

Caste	Gender	Mean	Std. Deviation	N
Baiga	Male	33.47	4.8	32
	Female	35.70	4.1	37
	Total	34.67	4.5	69
Panika	Male	36.73	4.1	48
	Female	36.73	4.1	52
	Total	36.73	4.1	100
Gond	Male	34.84	4.9	37
	Female	36.16	3.5	44
	Total	35.56	4.2	81
Total	Male	35.24	4.7	117
	Female	36.26	3.9	133
	Total	35.78	4.3	250

Table 1 indicates the descriptive statistics of each Tribe group (gender wise); here, it shows the mean, and SD of Mental Health. The bar chart distinctly illustrates the variations among these groups based on the overall mean value of mental health. The first groups' total mean is 34.67 and SD is 4.578, the second group's total mean is 36.73 and SD 4.11, and the third group's total mean is 35.56 and SD 4.28. Panikas' mean score on mental health in all three groups was 36.73, which is higher than other groups, which shows that Panika's mental health is good. (See Figure1)

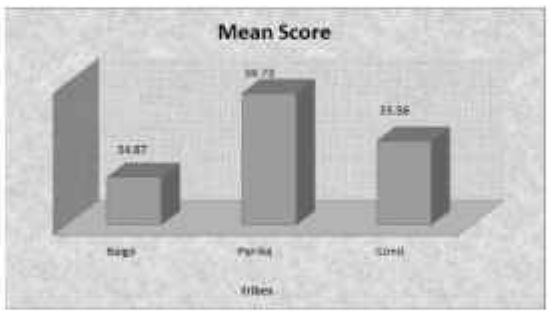

Figure1. Total Mean Score of Tribes (Baiga, Panika & Gond)

Figure 2 displays descriptive statistics of mental health of male and female mean value of Mental Health. The bar chart clearly shows the differences between groups based on the overall mean value of mental health. The first group's total mean is 35.24;

whereas the second group's is 36.24. Based on the mean score, women's mental health seems slightly better than men's mental health (See Figure 2).

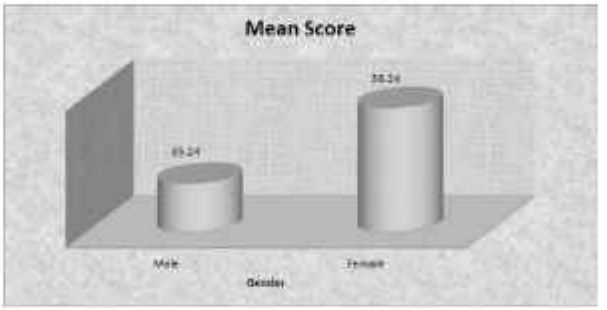

Figure 2. Mean Score of Mental health of male and female.

Table 2 shows an F-ratio of 5.327 for the effect of types of tribes on mental health, which is statistically significant at the 0.005 level. The differences in the score of a mental health was found significant is three different tribal groups (F- 5.32, P- 0.005, df- 2). Similarity, it is also found that there was a significant difference in the score of mental health of male and female participants (F- 4.69, P- 0.031, df- 1). However, the interaction between type of tribes and gender was not found significant. This indicates that gender and types of tribes does not make any change in the score of mental health.

Table 2. Summary of ANOVA to find the Effect of type of Tribes and Degree of Gender on Mental Health

Source of Variance	Sum of Squares	Df	Mean Square	F	Significance Value	Remarks (at 0.05 level)
Tribes (A)	193.986	2	96.993	5.327	.005	Significant
Gender (B)	85.424	1	85.424	4.692	.031	Significant
Tribes*Gender (A*B)	52.964	2	26.482	1.455	.236	Not Significant
Error	4442.322	244	18.206			
Total	324795.000	250				
Corrected Total	4742.900	249				

Figure 3 shows that tribes and Gender do not intersect at and are statistically not significant. The results indicate no significant interaction between tribes and gender effect on mental health.

 ISSN 0976-0849

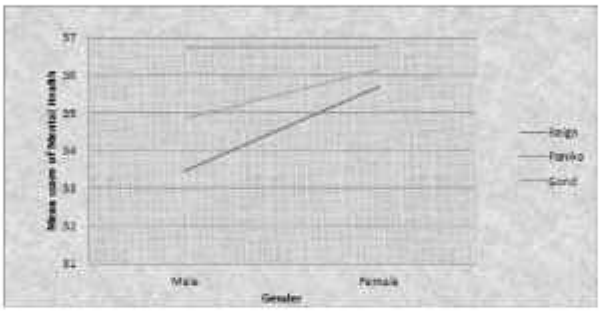

Figure 3. Interaction effect of types of tribe and gender on mental health.

Discussion

In this research area, three tribal communities dominate. These communities coexist in many villages, leading to potential cultural mixing. However, they remain distinct in their cultural norms. The Baigas tend to be shy and seek comfort, whereas the Panikas are more progressive and inclined toward modernization. The Panikas also seek medical help more readily than the Baigas and Gonds, who prefer natural therapies within the village, often utilizing the services of guniya.

The study also found differences in mental health between male and female participants. Females exhibited slightly better mental health overall. These communities generally belong to the lower middle to poor socio-economic levels, where lack of facilities and money is common. Men, as the leaders and primary caregivers of the households, are more affected by these challenging circumstances, leading to significant stress. Conversely, women mainly stay at home, performing household tasks that are well-distributed among family members. This clear division of responsibilities results in less stress for women compared to men.

Conclusion

The interplay of tribal identity and Gender has a profound impact on individuals' mental health in tribal societies. Cultural practices, social structures, and historical settings impact tribal people's mental health experiences, with tribal identity and Gender playing important roles. Tribal affiliation frequently gives a strong feeling of identity and community, which can benefit mental health. However, the legacy of colonization, displacement, and ongoing socioeconomic struggles can worsen mental health issues among tribes. The availability and accessibility of mental health resources are sometimes limited in tribal areas, exacerbating the situation. Gender dynamics within tribes offer an extra element of complexity. Traditional gender norms and expectations might shape how mental health is seen and treated. Women in tribal communities may have significant

mental health stresses as a result of gender-based violence, limited access to education, and economic possibilities. Men, on the other hand, may suffer from challenges associated with traditional masculinity, resulting in underreporting of mental health disorders and a reluctance to seek treatment. Efforts to promote tribal members' mental health must take into account both tribal and Gender differences. Culturally sensitive mental health therapies that honor and include tribal norms and practices are critical. Furthermore, addressing gender-specific issues and fostering gender equality in these communities can help to improve mental health outcomes. Collaboration among tribal leaders, mental health practitioners, and politicians is critical to fostering supportive environments that promote mental health for all tribe members, regardless of Gender.

References

Afifi, M. (2007). Gender differences in mental health. *Singapore Medical Journal, 48*(5), 385.

Ali, A., Gujar, N. M., Deuri, S. P., & Deuri, S. K. (2024). Prevalence of mental health problems and substance use among school-going adolescents of tribal ethnicity: A preliminary study from North-East India. *Journal of Indian Association for Child and Adolescent Mental Health, 20*(1), 18–25.

Devarapalli, S. S. K., Kallakuri, S., Salam, A., & Maulik, P. K. (2020). Mental health research on scheduled tribes in India. *Indian Journal of Psychiatry, 62*(6), 617-630.

Goldenson, R. M. (1984). *Longman dictionary of psychology and psychiatry*. Longman.

Gururaj, G., Girish, N., & Isaac, M. K. (2005). Mental, neurological and substance abuse disorders: Strategies towards a systems approach burden of disease in India; Equitable development – Healthy future. National Commission on Macroeconomics and Health, Ministry of Health and Family Welfare, Government of India.

Jain, A. K., & Sharma, A. N. (2009). The impact of education on the economy among the Baiga tribe in Madhya Pradesh, India: A brief note. *Education, Knowledge & Economy, 3*(3), 177–182.

Kapungu, C., & Petroni, S. (2017). *Understanding and tackling the gendered drivers of poor adolescent mental health*. Retrieved from https://www.icrw.org/publications/understanding-tackling-gendered-drivers-poor-adolescent-mental-health

Kumar, V. (2024). Problems and challenges tribal community in India. *Journal of Research in Social Science and Humanities, 3*(2), 1–6.

Malhotra, S., & Shah, R. (2015). Women and mental health in India: An overview. *Indian Journal of Psychiatry, 57*(S2), S205-S211. https://doi.org/10.4103/0019-5545.161479

Ministry of Health and Family Welfare. (2017). *National Family Health Survey-4 (2015-16)-State fact sheet: Chhattisgarh*. Ministry of Health and Family Welfare; International Institute of Population Sciences-IIPS.

Ministry of Tribal Affairs, Government of India. (2014). *Report of the high level committee on socioeconomic, health and educational status of tribal communities of India*. Government of India.

Norris, S. A., Frongillo, E. A., Black, M. M., Dong, Y., Fall, C., Lampl, M., & others. (2022). Nutrition in adolescent growth and development. *The Lancet, 399*(10339), 172–184. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(21)01590-7

Roy, A. G., & Roy, K. G. (2024). The state of the mental health-related conditions among the scheduled tribes and the culture-specific approaches and methods they apply for the management of such conditions: A bibliographic essay catering to the contemporary trends in mental health research in India—*annals of*

Anthropological Research & Reviews, 3(2).

Singh, S. S., & Sharma, A. (2019). A study of composite index: With special context to Gond tribe of central India. *Humanities & Social Sciences Reviews, 7*(6), 1064–1076.

Snyder, G. M. (2014). *The effects of active shooter resilience training programs on college students' perceptions of personal safety* [Doctoral dissertation, Liberty University]. Liberty University.

Tewari, A., Kallakuri, S., Devarapalli, S., Jha, V., Patel, A., & Maulik, P. K. (2017). Process evaluation of the systematic medical appraisal, referral, and treatment (SMART) mental health project in rural India. *BMC Psychiatry, 17*, 385. https://doi.org/10.1186/s12888-017-1490-8

Verma, P., Sahoo, K. C., Mahapatra, P., Kaur, H., & Pati, S. (2022). A systematic review of community-based studies on mental health issues among tribal populations in India. *Indian Journal of Medical Research, 156*(2), 291-298. https://doi.org/10.4103/ijmr.IJMR_1461_20

Yadav, S., Chandiok, K., Singh, H. S., & Saraswat, K. N. (2012). A prospective relation between depression and body mass index among three tribal populations of India. *Voice of Intellectual Man: An International Journal, 2*(2), 123-130.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 197-208

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

The role of Artificial Intelligence in Information Warfare: Challenges and Opportunities

Prithvi Singh*, Dr. Harsh Kumar Sinha**

Abstract: The integration of artificial intelligence into information warfare has ushered in a new era that brings opportunities, threats and challenges. This study explores the multi-dimensional landscape by analyzing the challenges and opportunities that arise as artificial intelligence technologies become increasingly intertwined with the dissemination of information and defense. In this research paper, we have studied the challenges and threats posed by artificial intelligence and information warfare and how it impacts a nation.

Keywords: Artificial intelligence; Information warfare; National Security; Deepfake technology; Cyber security; Hybrid warfare; Science and technology.

Introduction:

In warfare, the strategic use of information, misinformation and deception has been integral to the successful conduct of hostilities throughout history. As new techniques and technologies were developed or became available, nations continually sought to apply them to win the battle of minds and wills, as Sun-Tzu termed it, to their own advantage. Yet perhaps there is an even greater imperative in democracies to protect their populations from manipulation and to instill confidence in the providers of information. Every society based on the principles of equality and trust must strive to ensure that its citizens are not misled and are enabled to perceive reality correctly if democratic processes are to outcompete dictatorships and maintain their influence when faced with external and internal threats. Artificial intelligence is nothing but a new technology which will be used within the old concept of information warfare.

Artificial Intelligence:

John McCarthy (1927–2011) is called the "father of artificial intelligence". He

*Research Scholar; **Professor, Department of Defence and Strategic Studies, Deen Dayal Upadhyaya Gorakhpur University, Gorakhpur

 ISSN 0976-0849

was an American computer scientist and cognitive scientist and made significant contributions to both AI and computer science. Artiûcial Intelligence (AI) is a domain of computer science which deals with the. development of intelligent computer systems, which are capable to perceive, analyze, and react accordingly to the inputs.[1]

It is a set of technologies that enable computers to perform a diverse range of advanced tasks, including the ability to perceive, understand, and translate spoken and written language, analyze data, make recommendations, etc.. The simulation of human intelligence in computers that have been designed to think and behave like people is known as artificial intelligence. Cognitive talents include things like learning, reasoning, problem-solving, perception, and language understanding.[2]

Artificial Intelligence (AI) encompasses various subfields, including machine learning, neural networks, natural language processing (NLP), and robotics:

Types of Artificial Intelligence

Machine Learning	Neural Networks	Natural Language Processing	Robotics
Using sample data to train computer programs to recognise patterns based on algorithms.	Computer systems designed to imitate the neuron in the brain.	The ability to understand speech, as well as understand and analyze documents.	Machines that can access people without actual human involvement.

In short, the main subfields of artificial intelligence—machine learning (ML), neural networks, natural language processing (NLP) and robotics—each play a different role. Machine learning focuses on data-driven predictions, neural networks on complex data processing, NLP on human language interaction and robotics on autonomous task execution. Together, these fields drive the development of advanced AI systems with diverse applications across various domains.[3]

Artificial intelligence can be classified into two major categories based on its efficiency.

Classification of Artificial Intelligence

On the basis of Capabilities			On the basis of Functionalities			
Narrow AI (Machine Learning)	General AI (Machine Intelligence)	Super AI (Machine Consciousness)	Reactive Machines AI	Limited Memory AI	Theory of Mind AI	Self Awareness AI
Specializes in one area and solves one problem.	Refers to a computer that is as smart as a human across the board.	An intellect that is much smarter than the best human brains in practically every field.	The most basic type of AI, with neither the ability to form memories nor to use past experiences to inform current decisions.	They can look into the past and monitor objects over time to form a fuller understanding.	Having the understanding that people, creatures and objects in the world can have thoughts and emotions that affect their own behavior.	Systems that can form representations about themselves, consciousness.
Example : • *Image recognition software* • *AI virtual assistants - Siri, Alexa* • *Self driving vehicles - cars, drones*	Example : • *Chatbots* • *Natural language processing*	Example : • *Futuristic personal assistants - Jarvis, HAL 9000*	Example : • *IBM's Deep Blue* • *Netflix Recommendation Engine*	Example : • *Chatbots and Virtual Assistants* • *Self Driving Cars*	Example : • *ToMnet* • *Self driving vehicles*	Example : • *Futuristic Humanoid Robot - Sophia*

Artificial intelligence (AI) can be classified based on capability and functionality. In terms of capability, AI includes narrow AI, which is specialized in specific tasks (e.g., virtual assistants); general AI, which will have human-like cognitive abilities across a variety of tasks (currently theoretical); and super intelligent AI, which will surpass human intelligence in all areas (also theoretical). Functionally, AI is divided into reactive machines that react to specific inputs without memory; limited memory systems that use past data to make decisions; theory of mind AI, which will understand the mental states of others (a future goal); and self-aware AI, which will have human-like consciousness (theoretical). These categories outline the current capabilities and future aspirations of AI technology.

Information Warfare:

When war is fought using manipulation, misinformation and propaganda against

 ISSN 0976-0849

the opposition based on early and secret information about the enemy's strategy and tactics, it is called information warfare.

Kautilya also said that the use of information always leads to victory in any war and the king should always take the help of spies to obtain information. Information warfare is not a new concept or strategy, it is as old as the history of warfare. We have seen this type of warfare in our ancient Indian mythological texts like Ramayana and Mahabharata.

As modern technologies are developing, new sources and means of obtaining information are changing rapidly. In ancient times, spies were used to collect information, with the development of science and technology, the means of communication have also evolved, making the collection of data and information even faster. Communication technologies such as radio, TV, mobile and internet have revolutionized the speed of sending and receiving data and information collection.[4]

Information warfare involves targeting the enemy's information and information functions while protecting our own information and information functions, with the aim of reducing his will or ability to fight. Based on the above statements, we define information warfare as follows:

"Information Warfare is any action to Deny, Exploit, Corrupt or Destroy the enemy's information and its functions; protecting ourselves against those actions and exploiting our own military information functions".[5]

Components of Information Warfare:

As has been analyzed above, different nations use different terminology in the field of IW. After due study of these terms and processes, as also the current writing on the subject by Indian experts, we may propose the following components to be taken to comprise Information Warfare as pertaining to India's National Security.

- **Electronic Warfare:** EW consists of Electronic Support Measures, Electronic Counter Measures and Electronic Counter-Counter Measures. Psychological Operations.
- **Psychological Warfare:** Psychological operations include Perception Management, Public Information and Public Diplomacy
- **Cyber Warfare:** Operations in Cyberspace include Computer Network Defence, Exploit and Attack

Components of Information Warfare

	Types	Subtypes
Information Warfare	Cyber Warfare	Computer Network Attack Computer Network Defense Computer Network Exploitation
	Psychological Warfare	Public Information Perception Management Public Diplomacy
	Electronic Warfare	Electronic Support Measures Electronic Counter Measures Electronic Counter-Counter Measures

The components of information warfare in the diagram are recommended to be adopted for further progress in this field. After arriving at a conclusion about the components of information warfare that would be suitable for India's pursuit of information security in the emerging security environment, we need to analyze the strategy and structures required for India's national security in the information age.

A holistic approach to conduct operations combining psychological warfare, cyber operations and electronic warfare, which are established components of information warfare, is the need of the hour. In fact, continuing to separate cyber security aspects from psychological warfare in an interconnected world that is riding on social media and electronic media 24×7 is a sure recipe for disaster for any country, especially now that most countries like China and Russia have adopted a coordinated structure to wage information warfare.[6]

Intersection of Artificial intelligence and Information Warfare :

In this information age, who wins depends on who has more and accurate information about the enemies and who knows how to use information and misinformation appropriately against them.

As we know that along with the development of science and technology, new mediums of sharing and receiving information are also developing very fast. In the same sequence when media is playing an important role in disseminating information in a very short time, a new technology is being incorporated with modern technologies which will prove to be a very effective medium in the form of Artificial Intelligence.

We can say in simple words that Artificial Intelligence is a new technology which will be used in an old concept like information warfare. Artificial intelligence draws its tactical principles from land, air, sea, and space legacies. AI plays a role at every level

 ISSN 0976-0849

of digital warfare, from hunting the enemy through sensors and gathering intel, through assisting in decision-making and simulations, to supporting the maneuver and use of cyberweapons, and more.[7]

The current state of AI in information warfare reflects its growing influence on the methods and approaches employed by various entities. AI tools such as machine learning and natural language processing are now playing a key role in automating the creation and dissemination of misinformation, controlling public opinion, and carrying out targeted cyber attacks.

Both governmental and non-governmental actors are investing heavily in AI technologies to gain a strategic edge in information warfare. Advanced AI algorithms sift through vast data from social media and online platforms to recognise sensitive demographics and craft custom propaganda efforts. Additionally, AI-powered bots and deepfake systems are deployed to spread false stories and manipulate public discussions.

On the other hand, AI can be used to identify and counter disinformation, detecting cyber threats and fortifying critical infrastructure against cyber attacks. Apart from this the fast growing AI technology poses notable hurdles for defenders, as malicious actors frequently and constantly adapt their methods to evade detection and defensive measures.

Impact on National Security:

AI-driven cyberattacks involve using advanced machine learning algorithms to identify vulnerabilities, predict patterns and exploit weaknesses. The efficiency and rapid data analysis advance hackers' capability to gain a tactical advantage, leading to rapid intrusions or destruction.[8]

Traditional security methods are no longer enough to combat sophisticated attacks since AI cyber attacks evolve in real time. The integration of AI into information warfare will have significant implications on national security, here are some key points:

- Cyber threats
- Geopolitical dynamics
- Defense strategies
- Economic espionage
- Military operations
- Information dominance
- Involvement of Non-state actors

In summary, the integration of AI into information warfare has huge implications

on national security, necessitating proactive measures to mitigate cyber threats, safeguard critical infrastructure, and uphold democratic values in the face of evolving geopolitical dynamics.

Challenges in AI driven Information Warfare:

Information systems are so vital to military operations that often attacking an opponent's information systems is more effective than focusing on destroying his military forces directly. There is a perception in military circles that control of information may be more important than air superiority was in past wars. This has led to a reevaluation of military doctrine that has been referred to as a "revolution in military affairs".

"The revolution in military affairs is a major shift in the nature of warfare brought about by the innovative new application of new technologies which, combined with dramatic changes in military doctrine and operational and organizational concepts, fundamentally alter the character and conduct of military operations."[9]

India is potentially vulnerable to information warfare attacks as it relies heavily on information systems and social media platforms. With the introduction of artificial intelligence in information systems, the threat of accountability in security has increased further.

AI is a technology that has the potential to revolutionize military industries, cyber, space exploration, and much more. Artificial Intelligence is growing very fast and gaining popularity.[10] However, it is important to note that AI still face many challenges.Here are, most organizations face some common challenges when trying to implement artificial intelligence.

- Determining the Right Data Set
- Social Media Manipulation
- Deepfakes and Synthetic Media
- Algorithmic Manipulation
- Data Security and Storage
- Replacement of old Infrastructure
- AI Integration into Existing Systems
- Complex Algorithms and Training of AI Models
- Ethical concerns of AI
- Privacy and Surveillance

 ISSN 0976-0849

- Transparency and Accountability
- Autonomy and Control
- Cyber Security and Malicious Use
- Ethical AI Governance

Here below, the flowchart helps in understanding the growth of Artificial Intelligence and how fast it is replacing human contribution in every sector of the workforce.This will also be a challenge for human society.

Figure 1. Anticipated progress of artificial intelligence
https://www.researchgate.net/figure/Anticipated-progress-of-artificial-intelligence_fig1_332639384

Opportunities:

In the realm of warfare, the trajectory of AI promises a significant shift toward greater automation and sophistication. As AI technologies continue to develop, they are expected to play an increasingly important role in military operations, extending from target identification and decision-making to logistics and cyber defense. This trend

toward automation has the potential to increase the efficiency and effectiveness of military forces around the world. However, it also raises ethical concerns about the use of lethal autonomous weapons and the potential for unintended consequences, such as civilian casualties and loss of human control over weapon systems.

AI is a powerful enabler and has endless possibilities in the military sector. This is especially so in areas where the limitations of human intelligence and brain capabilities are being exceeded or surpassed in processing data or information using cognitive abilities. For example, it is used in processing extraordinarily large volumes of data, recognizing patterns therein and deriving meaningful information.[11]

Artificial Intelligence (AI) is playing an increasing role in planning and supporting military operations and becoming a key tool in intelligence and analysis of the enemy's intelligence.[12] Warfare systems such as weapons, sensors, navigation, aviation support, and surveillance can employ AI in order to make operations more efficient and less reliant on human input. This additional efficiency means that these systems may require less maintenance.

AI is definitely opening new perspectives in defense technologies. There are high expectations concerning the application of AI techniques in several military domains; however there are still hindering factors and unsolved issues for further research in order to fulfill those expectations.[13]

AI can benefit the military in numerous ways including:

- Warfare systems
- Threat Monitoring
- Combat Simulation
- Strategic decision making
- Data processing and Research
- Target Recognition
- Drone Swarms
- Cybersecurity
- Casualty Care and Evacuation
- Transportation

India's defense industry is rapidly advancing, with a strong focus on using artificial intelligence (AI) to create a world-class military. This technological shift not only modernizes India's armed forces but also positions the country as a major player in the

 ISSN 0976-0849

global defense market. The government's commitment to AI-driven military modernization is the result of sustained efforts, including increased funding, policy reforms, and a push for domestic production. This supportive environment has fostered innovation and collaboration within the defense sector.

This joint effort between industries, research organizations, academic institutions, start-ups and innovators, both public and private, has helped create many unique technological products based on AI in areas such as data, logistics, surveillance, weapons and many more. The introduction of autonomy in weapon systems can be a great asset in ISR (intelligence, surveillance and reconnaissance), data management, preventing terrorism, establishing counter-terrorism measures, and protecting soldiers. In fact, AI in defense can transform war and conflict at a deeper level.[14]

Furthermore, the integration of AI in cybersecurity is set to reshape the landscape of digital warfare. Both malicious actors and cybersecurity experts are expected to leverage AI-powered tools and techniques in the relentless battle of wits. As AI-powered attacks become more sophisticated and harder to detect, the cybersecurity community will face increasing challenges in protecting critical infrastructure and defending against cyber threats. This dynamic holds significant implications for national security and underscores the importance of robust cybersecurity measures and international cooperation.

Conclusion:

In conclusion, the fusion of artificial intelligence and information warfare presents a landscape marked by both significant challenges and promising opportunities. Artificial intelligence technologies have re-shaped the dynamics of modern conflict; it provides new tools for manipulating information, influencing people's opinion and conducting cyber operations.

Challenges arise from the potential misuse of AI in information warfare, including the spread of misinformation, the loss of trust in the media, and the rise of cyber threats. These challenges threaten the integrity of democratic institutions, social cohesion, and individual autonomy. In addition, the rapid progress of AI raises concerns about privacy, ethics, and the potential for unintended consequences in warfare.

Despite these challenges, there are many opportunities to use artificial intelligence to promote security, resilience, and transparency. AI tools can help identify and counter misinformation campaigns, strengthen cybersecurity measures, and refine decision-making in information warfare.

Collaboration between government technology developers, civil society, and

international organizations is essential to understand the complex landscape. This collaboration should prioritize the development of ethical guidelines, regulatory frameworks, and technical standards to govern the responsible use of AI in information warfare.[15] Additionally, investments in education and capacity building initiatives related to artificial intelligence are necessary to empower individuals and organizations to effectively mitigate the risks posed by AI-enabled information warfare.

Finally, by harnessing the capabilities of artificial intelligence while tackling its difficulties, we can aim for a future where ethical and transparent information aligns with democratic values. This requires a comprehensive strategy that combines innovation with responsibility and guarantees that AI is truthful, reliable, and safe and fosters the digital age.

References:

1. Ghosh, Moumita & Arunachalam, Thirugnanam. (2021). Introduction to Artificial Intelligence. 10.1007/978-981-16-0415-7_2. https://www.researchgate.net/publication/351758474_Introduction_to_Artificial_Intelligence
2. Jackson, Philip C., Jr. Introduction to Artificial Intelligence. 2nd, enlarged ed. Dover Publications, New York, 1985. p. 394.
3. Russell, Stuart J., and Peter Norvig. Artificial Intelligence: A Modern Approach. 3rd ed. Upper Saddle River, NJ, Prentice Hall, 2010, p. 17.
4. Alberts, David S., John J. Garstka, Richard E. Hayes, and David A. Signori. Understanding Information Age Warfare. CCRP Publications, 2001. p. 43.
5. Widnall, Sheila E.and General Fogelman, Ronald R., (1997). USAF Chief of Staff, Cornerstones of Information Warfare. https://nsarchive.gwu.edu/sites/default/files/documents/4164297/United-States-Air-Force-Cornerstones-of.pdf
6. Bakshi, Bipin. (2018). Information Warfare: Concepts and Components. 5. 178-185. https://www.researchgate.net/publication/363699755_Information_Warfare_Concepts_and_Components
7. Guyonneau,Rudy & Le Dez, Arnaud (2019), Artificial Intelligence in Digital Warfare: Introducing the Concept of the Cyberteammate, https://cyberdefensereview.army.mil/Portals/6/Documents/CDR%20Journal%20Articles/Fall%202019/CDR%20V4N2-Fall%202019_GUYONNEAU-LE%20DEZ.pdf?ver=2019-11-15-104106-423
8. Hart, Dewayne (2024) Council Post: How AI-Driven Cyberattacks Will Reshape Cyber Protection https://www.forbes.com/sites/forbestechcouncil/2024/03/19/how-ai-driven-cyber-attacks-will-reshape-cyber-protection/
9. Yurcik, William. (2001). Information Warfare: Legal and Ethical Challenges of the Next Global Battleground. https://www.researchgate.net/publication/2831747_Information_Warfare_Legal_and_Ethical_Challenges_of_the_Next_Global_Battleground
10. Tangredi, Sam J., and George Galdorisi, eds. AI at War: How Big Data, Artificial Intelligence, and Machine Learning Are Changing Naval Warfare. Naval Institute Press, 2021. p. 351-352.
11. Harkut, Dinesh & Kasat, Kashmira. (2019). Introductory Chapter: Artificial Intelligence - Challenges and Applications. 10.5772/intechopen.84624. https://www.researchgate.net/publication/332639384_Introductory_Chapter_Artificial_Intelligence_-

_Challenges_and_Applications

12. Pant, Atul (2018), future warfare and artificial intelligence the visible path 978-93-82169-80-2 https://idsa.in/system/files/opaper/op-49-future-warfare-and-artificial-intelligence.pdf
13. Szabadföldi, István. (2021). Artificial Intelligence in Military Application – Opportunities and Challenges. Land Forces Academy Review. 26. 157-165. 10.2478/raft-2021-0022. https://www.researchgate.net/publication/352801264_Artificial_Intelligence_in_Military_Application_-_Opportunities_and_Challenges
14. Department of Defence Procurement, 2024 Ministry of Defence, GOI https://www.ddpmod.gov.in/sites/default/files/ai.pdf
15. Farwell, James. Information Warfare; Forging Communication Strategies for Twenty-first Century Operational Environments. Marine Corps University Press, Quantico, VA, 2020, p. 18.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 209-215

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

Database Management System

Priyanshu Srivastava*

Abstract: Database management system (DBMS) is computer software designed to manage the database in efficiently and conveniently. The main purpose of DBMS is to store and retrieve the data in the convenient and efficient way. This paper presents the overview of the database management system such as its components, data model which describing how data is to be arranged for a specific purpose. Major aim of database is to supply users with an abstract view of data. In database development process normalization play an important role. By using DBMS developers can eliminate duplication data and develop standards by which all data can be measured. It allows organizations to conveniently develop and use databases for various applications by database administrators (DBAs). Currently database management systems (DBMS) are not capable of supporting such flexibility. With the increase of data to be indexed and retrieved and the increasing heavy workloads, modern search engines suffer from Scalability, reliability, distribution and performance problems. This paper presents a new and simple way for integration and compares the performance of our system to the current implementations based on storing the full text index directly on the file system.

Keywords: DBMS, components, operations, entities, redundancy, normalization.

Introduction:

A Database Management System (DBMS) is a collection of program that enables a user to perform various operations like insert, modify, update, delete, maintain and access the database. DBMS relieves the user from knowing how the data is stored physically and complex algorithms used for performing operations on the database. Only focus on how the operations are to be performed to retrieve the data from the database. DBMS is also charge of access, security, storage and host of other functions for the database system. It does through a selection of computer programs[1].

What is Database?

Database (DB) is a collection of inter-related data which are used to retrieve, insert and delete the data efficiently. Data can be used to organise in the various format such as table, schema, views, and reports, etc. For example: The college Database

*Assistant Professor, Department of B.C.A, Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur, U.P.

organizes the data about the admin, staff, students and faculty etc. This can be can easily retrieve, insert, and delete the information using database.

Database Management System (DBMS): Database management system is software which is used to manage the database. These are the most commonly used database example of DBMS MySQL, Oracle etc. It is used in various applications. Various operation are performed by DBMS such as database creation, storing data in it. updating data, creating a table in the database and a lot more. Database is secure and protected software. It also maintains data consistency in the database[2].

Application of DBMS

- In Railway Reservation System database is required to keep the record of ticket booking, train's departure and arrival status. It also required in the case of trains get late then people get to know it through database they get the update[3].
- It is also useful in Library Management System as thousands books present in the library so it is very difficult to keep record of all the books in a copy or register. So DBMS used to maintain all the records relate to book issue dates, name of the book, author and availability of the book etc.
- In banking also DBMS play an important role. Thousands of transactions are placed daily through banks. So how banking has become so easy that by sitting at home we can send or get money through banks. It can all possible just because of DBMS that manages all the bank transactions[4].
- In Universities and colleges Examinations are done online basis and universities as well as colleges maintain all these records through DBMS such as Student's registrations details, results, courses and grades all the information are stored in database[5].
- In Social Media Sites to share views and connect with friends and family. Daily millions of users signed up for these social media accounts such as Facebook, twitter, LinkedIn and Google plus. How all the information of users are stored and how we become able to connect to other people, yes this all because of DBMS.
- *In* Military to keeps the records of millions of soldiers and it has millions of files that should be keeping secured and safe. As DBMS provides a big security assurance to the military information so it is widely used in militaries. Someone can easily search for all the information about anyone within seconds with the help of DBMS.
- Products are made and sales by the Manufacturing companies. To keep records of

all the details about the products such as quantity, bills, purchase, and supply chain management DBMS is required[6].

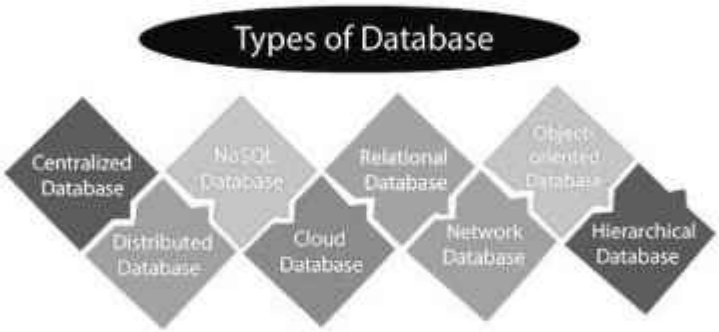

Fig. 1: Types of database Components of DBMS

It has several components each performing very significant tasks in the database management system environment.

Software: It is the set of programs used to control and manage the overall database. It includes the DBMS software itself, an Operating System, network software being used to share the data among users, and the application programs used to access data in the DBMS.

Hardware: It consists of a set of physical electronic devices like computers, I/O devices, storage devices, etc. It provides the interface between computers and the real world systems.

Data: To collect, store, process and access data DBMS exists. The database contains both the actual as well as operational data and the metadata.

Users: Database is managed by users and performs different operations on the databases in the database system.

Types of Databases

There are various types of databases are used for storing different varieties of data. Centralized Database is the database type that stores the data in a centralized database system. It comforts the users through several applications to access the stored data from different locations. Such applications include the process of authentication to allow users safe access to the data. A Centralized database example may be the Central Library, which carries a central database of each library in a college / university.

 ISSN 0976-0849

Advantages of Centralized Database

- It decreased the risk of data management.
- Consistency is maintained.
- Data quality is better which enhances the data standards of the organisation.
- Cost is less.

Disadvantages of Centralized Database

- The response time for fetching the data is increases because size of the centralized database is large.
- Not easy to update.
- Whenever the any server failure occurs entire data will be lost which would be a huge loss.
- *Distributed Database:* Unlike a centralized database system. Through distributed systems, data is distributed among an organization multiple database. The database systems are connected with communication links. Such links help the end-users to access the data easily. Some examples of the Distributed database are Apache Cassandra, Ignite, etc.

Advantages of Distributed Database

- In a distributed database modular development is possible.
- Entire data set will not get affected on the failure of one server.
- *Relational Database:* It is based on relational data model. which stores data in the forms of rows (tuple) and columns (attributes) or tuple and attributes. For storing. manipulating, as well as maintaining the data relation database is used.
- *NoSQL Database:* This is used for storing wide range of data sets. It stores the data in the various formats so it is not come under relational database.

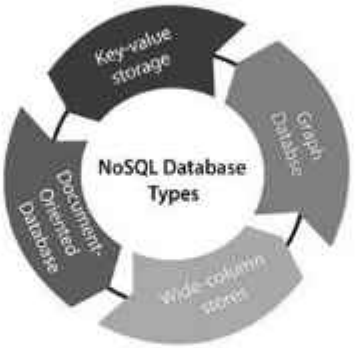

Fig.2: NoSQL Database Types

Data Abstraction

When the data retrieved efficiently system will be usable. Database comprise of complex data-structures. To make the system efficient in retrieval of data and developers use abstraction to reduce complexity in terms of usability of users.

Mainly three levels of data abstraction are possible in DBMS.

- ***Physical Abstraction***: It is the lowest level of abstraction and it tells about how the data is actually stored in memory[8]. Access methods such as sequential or random access and file organisation methods like B+ trees etc. Size of memory, usability, and the number of times the records are entered which we need to know while designing the database.

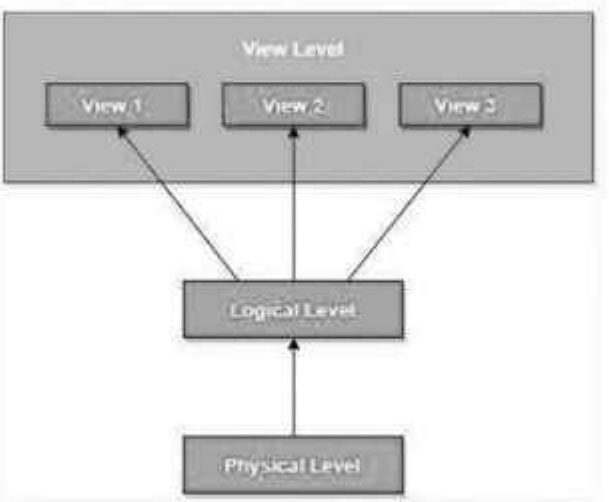

Fig. 3: Level of data abstraction

 ISSN 0976-0849

- ***Logical Abstraction:*** In logical level of abstraction data is stored in the form of tables in database. Relationship among data entities are also in relatively simple structures. At the view level information available to the user is unknown[9].
- ***View Abstraction:*** This is the highest level of abstraction. Users can view only the actual part of the database. In the forms of rows and columns data can be view. To stores the data tables and relations are used. Multiple view of the same database same make exists[10]. Implementation details are hidden from the users. Users can only view the data, interact with the database and storage.

Database Management System Language

DBMS has appropriate language and interfaces through with user can express queries and updates. To read, store, insert the data in the database DBMS languages are used.

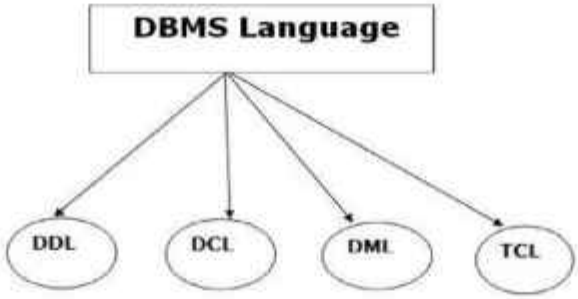

Fig. 4: DBMS Language

1. Data Definition Language (DDL)

DDL is used to store the information of metadata like the number of tables and schemas, their names, indexes, columns in each table, constraints, etc. DDL is used to define database structure or pattern. It also used to create schema, tables, indexes, constraints, etc. in the database. To create the skeleton of the database DDL is used.

2. Data Manipulation Language (DML)

DML is used for accessing and manipulating data in a database. It also handles user requests.

3. Data Control Language (DCL)

DCL is used to retrieve the stored or saved data. DCL execution is transactional. Rollback parameters are also involved in it.

4. Transaction Control Language (TCL)

TCL is used to run the changes made by the DML statement. TCL can be grouped into a logical transaction.

Conclusion

Like other software database management system also have some advantages and disadvantages. DBMS is a computer application designed for efficient and effective storage, retrieve and update large volume of data. Users take help of DBMS on managing the database. Data is stored in the form of record and every record consists of a group of related data values. For inserting, deleting, modifying records data manipulation language (DML) is used. Every organisation has its own database to manage the records. Many applications and projects are working on DBMS example attendance is biometric, data is automatically stored in the database. DBMS remove data redundancy, duplication and manage the data consistency. Either programmer or the one who implemented the database will have much more work to do without using DBMS. Operations such as to arrange data or inserting data into the database and also retrieving data out from the database it will become difficult.

References

1. A. Susanto and Meiryani, "Database management system," *Int. J. Sci. Technol. Res.*, 2019, doi: 10.5120/179-310.
2. W. Wingerath, N. Ritter, and F. Gessert, "Database management," in *SpringerBriefs in Computer Science*, 2019.
3. L. Rocha, F. Vale, E. Cirilo, D. Barbosa, and F. Mourão, "A framework for migrating relational datasets to NoSQL," in *Procedia Computer Science*, 2015, doi: 10.1016/j.procs.2015.05.367.
4. E. Lo, C. Binnig, D. Kossmann, M. T. Özsu, and W. K. Hon, "A framework for testing DBMS features," *VLDB J.*, 2010, doi: 10.1007/s00778-009-0157-y.
5. C. Ordonez, "Can we analyze big data inside a DBMS?," in *International Conference on Information and Knowledge Management, Proceedings*, 2013, doi: 10.1145/2513190.2513198.
6. A. Silberschatz, H. F. Korth, and S. Sudarshan, *Database System Concepts - 6th. ed.* 2011.
7. A. Pavlo *et al.*, "Self-driving database management systems," in *CIDR 2017 - 8th Biennial Conference on Innovative Data Systems Research*, 2017.
8. G. Chen, H. T. Vo, S. Wu, B. C. Ooi, and M. T. Özsu, "A Framework for supporting DBMS-like indexes in the cloud," *Proc. VLDB Endow.*, 2011.
9. J. Do, D. Zhang, J. M. Patel, D. J. DeWitt, J. F. Naughton, and A. Halverson, "Turbocharging DBMS buffer pool using SSDs," in *Proceedings of the ACM SIGMOD International Conference on Management of Data*, 2011, doi: 10.1145/1989323.1989442.
10. G. Manyam, M. A. Payton, J. A. Roth, L. V. Abruzzo, and K. R. Coombes, "Relax with CouchDB - Into the non- relational DBMS era of bioinformatics," *Genomics*, 2012, doi: 10.1016/j.ygeno.2012.05.006.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 216-223

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

Artificial Intelligence & Its Applications

Suraj Mishra*

Abstract: It is the science and engineering of making intelligent machines, especially intelligent computer programs. It is related to the similar task of using computers to understand human intelligence, but AI does not have to confine itself to methods that are biologically observable. While no consensual definition of Artificial Intelligence (AI) exists, AI is broadly characterized as the study of computations that allow for perception, reason and action. *Today, the amount of data that is generated, by both humans and machines, far outpaces humans' ability to absorb, interpret, and make complex decisions based on that data. Artificial intelligence forms the basis for all computer learning and is the future of all complex decision making.* This paper examines features of artificial Intelligence, introduction, definitions of AI, history, applications, growth and achievements.

Keywords: machine learning ,deep learning, neural networks, Natural Language Processing and Knowledge Base System

Introduction:

Artificial Intelligence (AI) is the branch of computer science which deals with intelligence of machines where an intelligent agent is a system that takes actions which maximize its chances of success. It is the study of ideas which enable computers to do the things that make people seem intelligent. The central principles of AI include such as reasoning, knowledge, planning, learning, communication, perception and the ability to move and manipulate objects. It is the science and engineering of making intelligent machines, especially intelligent computer programs

Artificial Intelligence Methods:

Machine Learning-

It is one of the applications of AI where machines are not explicitly programmed to perform certain tasks; rather, they learn and improve from experience automatically. Deep Learning is a subset of machine learning based on artificial neural networks for predictive analysis. There are various machine learning algorithms, such as Unsupervised

*Assistant Professor, Department of Computer Science, Maharana Pratap Mahavidyalay, Jungle Dhusan, Gorakhpur

Learning, Supervised Learning, and Reinforcement Learning. In Unsupervised Learning, the algorithm does not use classified information to act on it without any guidance. In Supervised Learning, it deduces a function from the training data, which consists of a set of an input object and the desired output. Reinforcement learning is used by machines to take suitable actions to increase the reward to find the best possibility which should be taken in to account.

Natural Language Processing (NLP)

It is the interactions between computers and human language where the computers are programmed to process natural languages. Machine Learning is a reliable technology for Natural Language Processing to obtain meaning from human languages. In NLP, the audio of a human talk is captured by the machine. Then the audio to text conversation occurs, and then the text is processed where the data is converted into audio. Then the machine uses the audio to respond to humans. Applications of **Natural Language Processing** can be found in IVR (Interactive Voice Response) applications used in call centres, language translation applications like Google Translate and word processors such as Microsoft Word to check the accuracy of grammar in text. However, the nature of human languages makes the Natural Language Processing difficult because of the rules which are involved in the passing of information using natural language, and they are not easy for the computers to understand. So NLP uses algorithms to recognize and abstract the rules of the natural languages where the unstructured data from the human languages can be converted to a format that is understood by the computer.

Automation & Robotics-

The purpose of Automation is to get the monotonous and repetitive tasks done by machines which also improve productivity and in receiving cost-effective and more efficient results. Many organizations use machine learning, **neural networks**, and graphs in automation. Such automation can prevent fraud issues while financial transactions online by using CAPTCHA technology. Robotic process automation is programmed to perform high volume repetitive tasks which can adapt to the change in different circumstances.

Machine Vision-

Machines can capture visual information and then analyze it. Here cameras are used to capture the visual information, the analogue to digital conversion is used to convert the image to digital data, and digital signal processing is employed to process the data. Then the resulting data is fed to a computer. In machine vision, two vital aspects are sensitivity, which is the ability of the machine to perceive impulses that are weak and resolution, the range to which the machine can distinguish the objects. The

 ISSN 0976-0849

usage of machine vision can be found in signature identification, pattern recognition, and medical image analysis, etc.

Knowledge-Based Systems (KBS):

A KBS can be defined as a computer system capable of giving advice in a particular domain, utilizing knowledge provided by a human expert. A distinguishing feature of KBS lies in the separation behind the knowledge, which can be represented in a number of ways such as rules, frames, or cases, and the inference engine or algorithm which uses the knowledge base to arrive at a conclusion.

Neural Networks:

NNs are biologically inspired systems consisting of a massively connected network of computational "neurons," organized in layers. By adjusting the weights of the network, NNs can be "trained" to approximate virtually any nonlinear function to a required degree of accuracy. NNs typically are provided with a set of input and output exemplars. A learning algorithm (such as back propagation) would then be used to adjust the weights in the network so that the network would give the desired output, in a type of learning commonly called supervised learning.

Applications of AI

Artificial Intelligence has various applications in today's society. It is becoming essential for today's time because it can solve complex problems with an efficient way in multiple industries, such as Healthcare, entertainment, finance, education, etc. AI is making our daily life more comfortable and fast.

Following are some sectors which have the application of Artificial Intelligence:

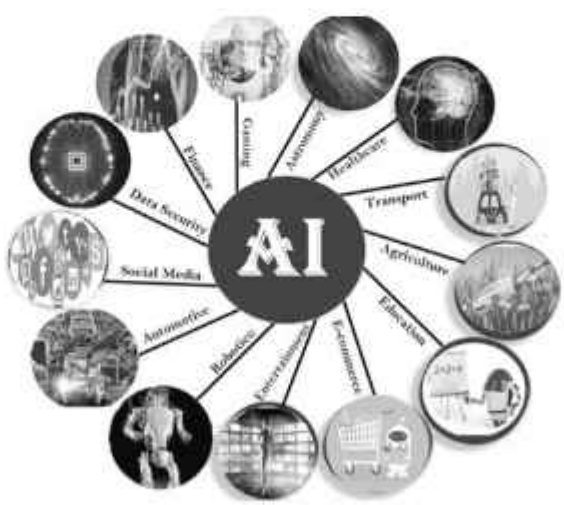

1. **AI in Astronomy**

- Artificial Intelligence can be very useful to solve complex universe problems. AI technology can be helpful for understanding the universe such as how it works, origin, etc.

2. **AI in Healthcare**

- In the last, five to ten years, AI becoming more advantageous for the healthcare industry and going to have a significant impact on this industry.
- Healthcare Industries are applying AI to make a better and faster diagnosis than humans. AI can help doctors with diagnoses and can inform when patients are worsening so that medical help can reach to the patient before hospitalization.

3. **AI in Gaming**

- AI can be used for gaming purpose. The AI machines can play strategic games like chess, where the machine needs to think of a large number of possible places.

4. **AI in Finance**

- AI and finance industries are the best matches for each other. The finance industry is implementing automation, chatbot, adaptive intelligence, algorithm trading, and machine learning into financial processes.

5. **AI in Data Security**

- The security of data is crucial for every company and cyber-attacks are growing very rapidly in the digital world. AI can be used to make your data more safe and secure. Some examples such as AEG bot, AI2 Platform,are used to determine software bug and cyber-attacks in a better way.

6. **AI in Social Media**

- Social Media sites such as Facebook, Twitter, and Snapchat contain billions of user profiles, which need to be stored and managed in a very efficient way. AI can organize and manage massive amounts of data. AI can analyze lots of data to identify the latest trends, hashtag, and requirement of different users.

7. **AI in Travel & Transport**

- AI is becoming highly demanding for travel industries. AI is capable of doing various travel related works such as from making travel arrangement to suggesting the hotels, flights, and best routes to the customers. Travel industries are using AI-powered chatbots which can make human-like interaction with customers for better and fast response.

 ISSN 0976-0849

8. AI in Automotive Industry

- Some Automotive industries are using AI to provide virtual assistant to their user for better performance. Such as Tesla has introduced TeslaBot, an intelligent virtual assistant.
- Various Industries are currently working for developing self-driven cars which can make your journey more safe and secure.

9. AI in Robotics:

- Artificial Intelligence has a remarkable role in Robotics. Usually, general robots are programmed such that they can perform some repetitive task, but with the help of AI, we can create intelligent robots which can perform tasks with their own experiences without pre-programmed.
- Humanoid Robots are best examples for AI in robotics, recently the intelligent Humanoid robot named as Erica and Sophia has been developed which can talk and behave like humans.

10. AI in Agriculture

- Agriculture is an area which requires various resources, labor, money, and time for best result. Now a day's agriculture is becoming digital, and AI is emerging in this field. Agriculture is applying AI as agriculture robotics, solid and crop monitoring, predictive analysis. AI in agriculture can be very helpful for farmers.

11. AI in E-commerce

- AI is providing a competitive edge to the e-commerce industry, and it is becoming more demanding in the e-commerce business. AI is helping shoppers to discover associated products with recommended size, color, or even brand.

12. AI in education:

- AI can automate grading so that the tutor can have more time to teach. AI chatbot can communicate with students as a teaching assistant.
- AI in the future can be work as a personal virtual tutor for students, which will be accessible easily at any time and any place.

Some Other Applications:

1. **Fraud detection.** The financial services industry uses artificial intelligence in two ways. Initial scoring of applications for credit uses AI to understand creditworthiness. More advanced AI engines are employed to monitor and detect fraudulent payment card transactions in real time.

2. **Virtual customer assistance (VCA).** Call centers use VCA to predict and respond to customer inquiries outside of human interaction. Voice recognition, coupled with simulated human dialog, is the first point of interaction in a customer service inquiry. Higher-level inquiries are redirected to a human.
3. **Medicine:** A medical clinic can use AI systems to organize bed schedules, make a staff rotation, and provide medical information. AI has also application in fields of cardiology (CRG), neurology (MRI), embryology (sonography), complex operations of internal organs etc.
4. **Heavy Industries :** Huge machines involve risk in their manual maintenance and working. So in becomes necessary part to have an efficient and safe operation agent in their operation.
5. **Telecommunications:** Many telecommunications companies make use of heuristic search in the management of their workforcesfor example BT Group has deployed heuristic search in a scheduling application that provides the work schedules of 20000 engineers.
6. **Music:** Scientists are trying to make the computer emulate the activities of the skillful musician. Composition, performance, music theory, sound processing are some of the major areas on which research in Music and Artificial Intelligence are focusing on. Eg:chucks, Orchextra, smartmusic etc.
7. **Antivirus:** Artificial intelligence (AI) techniques have played increasingly important role in antivirus detection. At present, some principal artificial intelligence techniques applied in antivirus detection It improves the performance of antivirus detection systems, and promotes the production of new artificial intelligence algorithm and the application in antivirus detection to integrate antivirus detection with artificial intelligence.

Future of AI

Looking at the features and its wide application we may definitely stick to artificial intelligence. Seeing at the development of AI, is it that the future world is becoming artificial. Biological intelligence is fixed, because it is an old, mature paradigm, but the new paradigm of non-biological computation and intelligence is growing exponentially. The memory capacity of the human brain is probably of the order of ten thousand million binary digits. But most of this is probably used in remembering visual impressions, and other comparatively wasteful ways . Hence we can say that as natural intelligence is limited and volatile too world may now depend upon computers for smooth working. *Artificial intelligence (AI) is truly a revolutionary feat of computer science, set to become*

a core component of all modern software over the coming years and decades. This presents a threat but also an opportunity. AI will be deployed to augment both defensive and offensive cyber operations. Additionally, new means of cyber attack will be invented to take advantage of the particular weaknesses of AI technology. Finally, the importance of data will be amplified by AI's appetite for large amounts of training data, redefining how we must think about data protection. Prudent governance at the global level will be essential to ensure that this era-defining technology will bring about broadly shared safety and prosperity.

NetApp and artificial intelligence

As the data authority for hybrid cloud, NetApp understands the value of the access, management, and control of data. The NetApp data fabric provides a unified data management environment that spans across edge devices, data centers, and multiple hyperscale clouds. The data fabric gives organizations of all sizes the ability to accelerate critical applications, gain data visibility, streamline data protection, and increase operational agility.

NetApp AI solutions are based on the following key building blocks:

- **ONTAP software** enables AI and deep learning both on premises and in the hybrid cloud.
- **AFF all-flash systems** accelerate AI and deep learning workloads and remove performance bottlenecks.
- **ONTAP Select software** enables efficient data collection at the edge, using IoT devices and aggregations points.
- **Cloud Volumes** can be used to rapidly prototype new projects and provide the ability to move AI data to and from the cloud.

Conclusion

Till now we have discussed in brief about Artificial Intelligence. We have discussed some of its principles, its applications, its achievements etc.The ultimate goal of institutions and scientists working on AI is to solve majority of the problems or to achieve the tasks which we humans directly can't accomplish. It is for sure that development in this field of computer science will change the complete scenario of the world Now it is the responsibility of creamy layer of engineers to develop this field.

References

1. http://en.wikibooks.org/wiki/Computer_Science:Artificial_Intelligence http://www.howstuffworks.com/

arificialintelligence

2. http:// www.google.co.in
3. http://www.library.thinkquest.org
4. https://www.javatpoint.com/application-of-ai
5. https://www.educba.com/artificial-intelligence-techniques/
6. https://www.cigionline.orgw/articles/cyber-security- battlefield/?utm_source=google_ads&utm_medium=grant&gclid=EAIaIQobChMIsdz9qLSF_AIVzQ0rCh1bNQylEAA YAiAAEgI40_D_BwE

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 224-229

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

A Narrative Review of Social media Usage and Mental Health among Youth

Dr. Aparna Mishra*

Abstract: The number of research studies that have been published indicates that people's interest in the effects of social media on mental health is still growing. However, despite growing attention, the connection between social media use and mental health across a range of age groups has not yet been thoroughly investigated in studies. The effects of social media on mental health have mostly been studied in young adults. This paper also discusses about, the difference between use of Social Media and Addiction of social media. It also deals with social media design i.e. various platforms and how does it affect young's Psychology.

Keywords: Social Media, Social Media Platform and Adolescent Psychology, Neurobiological Perspective, Social Media Addiction, Social media influence and Mental Health

What exactly is social media, and how has it changed through time?

The term "social media" is defined differently by different people, and it is changing quickly. Internet-based platforms known as social media rely on user-generated content, which is composed of user-specific profiles that are kept up to date by the platform. In the end, social media platforms serve as a means of connecting people and promoting the growth of social networks. They have expanded their reach to more audiences and shifted toward more visual and succinct material throughout time in response to usage trends.

The times seem to be changing, but what statistics exist on youngster use of social media?

Institute of Governance, Policies & Politics (IGPP) in association with Social Media Matters (SMM) and Youth Online Learning Organization (Yolo) recently conducted a survey on "Patterns of Internet Usage Among Youths In India." The study was part of SMM's YOLO (Youth Online Learning Organization) initiative. According

*Assistant Professor, Psychology, Shri Ram Swaroop Memorial University, Barabanki

to this The majority of Indian youth, or 85% of non-adult users, have access to cellphones, according to the data. Eighty percent of them said they use social media, and the majority spend five hours a day online. Young people are increasingly using OTT services besides YouTube to watch videos. On the other hand, few people are aware of online platforms' safety and privacy controls. About 30% of participants acknowledged having exchanged private information online, 50% acknowledged having viewed pornography online, and 40% acknowledged knowing someone who had viewed pornographic material online.

This table shows countries with the most social media users:

Country	Users In 2023	Predicted number of users by 2027
India	**755.47 million**	1,177.5 million
USA	302.25 million	327.22 million
Indonesia	217.53 million	261.7 million
Brazil	165.45 million	188.35 million

How might a neurobiological perspective be applied to youth social media use?

Adolescence is a time of increased white matter connections, which enhance behavioral and emotional regulation as well as brain structure-to-brain communication. Gray matter volume also shrinks at the same time, especially in areas related to social interaction. Teenagers may be particularly susceptible to emotional social media content and its possible negative effects due to the insufficient development of the prefrontal and parietal cortices, which are engaged in executive functioning and emotional regulating networks.

Does youth use of social media lead to worse consequences for mental health?

Overall, there is scant and correlational data to support the theory that youth mental health may suffer from social media use. Additionally, there is limited and correlational evidence in favor of the theory that suggests youth mental health may benefit from social media use. When talking about social media use with patients and families, it is important to acknowledge that the research is conflicting in order to prevent the spread of possibly false confirmation bias.

Social Media Design and Adolescent Psychology:

Similar to other sectors, social media companies aim to innovate technology in

 ISSN 0976-0849

order to draw in more users and support more businesses. According to researchers,[1] location-based social networks (LBSNs) like Facebook, for example, have drawn millions of users who use them to share their locations and social friendships. It is possible to mine users' preferences for locations and to provide favorite recommendations thanks to the check-in information that is available.

Researchers discussed the tools employed in a different study[2] to identify prominent individuals on social media. People with the capacity to sway sizable social media audiences are referred to as social influencers. Finding these influencers is crucial when developing strategies to quicken the spread of information, the study noted.

According to Bossen[3], social media platforms are frequently created with adolescent psychology theories in mind. Teens utilize social media because they want to grow their networks of friends, look for opportunities to become famous, have a platform for self-expression, and hope to be recognized as distinct individuals. According to research, a few factors might influence how popular particular social networking sites are with young people. For instance, Reels creating through Instagram or Facebook. This feature gives users the ability to create and share brief music videos and films, providing a forum for creative and imaginative self-expression among young people. Instagram has, in a way, evolved into a substitute platform for young people to showcase their abilities online[4].

"Fun and spontaneity" is how Snapchat describes itself: it's the quickest method to share a moment with friends, good or bad, beautiful or ugly, and it brings spontaneity and joy to the world of digital communication[5]. As a "easier and funnier" alternative to conventional instant messaging systems, this platform is generally used by users at home for contact with close friends and family. Many users also use it to share "selfies" and frequently incorporate text and "doodles" with photographs they send[6].

"Influencers": Prior to making a purchase, young adults routinely check YouTube or Instagram for product reviews. They also commonly buy products just because they have been recommended by influencers on social media[7]. Social media influencers are extremely effective advertisers because they have the ability to connect with thousands, if not millions, of potential clients[8].

Harmful Content on Social Media

Exposure to harmful or toxic content on social media can certainly cause adolescents' poor health, both mental and physical, and can even put teenagers at risk. Concerns have been raised about "picture me drinking" – alcohol-related posts by Instagram influencers that became popular among adolescents and young adults[9]. By

1the same token, on Reels, postings about positively framed e-cigarettes and vaping are available without age restrictions, and those postings can mislead teenagers in terms of their awareness and perception of vaping[10].

Sexting: Sending explicit text messages is known as sexting. It frequently entails providing revealing films and images of oneself that are either nude or seminude. Sexting can occur through direct chat on social media platforms, other messaging apps, and cell phone messaging. Any age group can use sexting.

Cyberbullying: Bullying through the use of digital technology is known as cyberbullying. Social media, messaging apps, gaming platforms, and mobile devices can all be used for it. It is consistent behavior meant to frighten, enrage, or embarrass the people it is intended for. It Causes Self harm.

Behavioral Science's Definitions of Social Media Addiction

Adolescents' addiction to social media, also known as online social networking addiction (OSNA), is a relatively recent development in addictive behavior. Researchers frequently identify compulsive use and withdrawal, seeking, tolerance, and interpersonal and health-related issues as signs of social media addiction, despite the Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders (DSM-5)'s imprecise diagnostic framework. The biopsychosocial model states that a variety of addiction symptoms can be used to identify problematic social media use[11].

Social Media Use and Adolescent Mental Health Are Associated

Beginning in 2012, teenage rates of depression, anxiety, loneliness, unhappiness with life, self-harm, suicide attempts, and actual suicides increased, particularly in the US and the UK[12]. Around the same time, teens began to use social media more often. Researchers strongly believe that increased social media use may be connected to rises in adolescent depression, despite the fact that any number of social, economic, or technological changes could be the reason of the consistent rise in adolescent melancholy since 2012.[13]

Numerous research studies have highlighted the possible negative impact of social media use on mental health. There have been concerns expressed over the potential for social media to cause negative body image, increasing the risk of addiction and involvement in cyberbullying, encourage phubbing activities, and have a detrimental impact on mood. Overuse has been linked to a rise in loneliness, FOMO, and a decline in subjective well-being and life satisfaction. Individuals who may become addicted to social media frequently experience depression and low self-esteem.

Teens are using social media at higher rates. Adolescents with poor mental health are becoming more prevalent. The COVID-19 pandemic exacerbates the state of student mental health, which has emerged as a widespread issue in India and around the globe. However, literature presents both sides of an issue. Social media can help teenagers meet their demands for social interaction and boost their self-esteem if they use it purposefully and positively. "While social media offers numerous advantages, it can also serve as a venue for harassment and marginalization, create erroneous beliefs about one's physical appearance and popularity, encourage reckless conduct, and have adverse effects on psychological well-being".

Undoubtedly, media literacy education has a role in encouraging social media use for good by giving students more information about internet safety and improving their ability to handle conflicts on social media.

Social media can offer a valuable platform for students who have been diagnosed with signs of depression to fulfill their demands for social connection. In order to serve vulnerable youth, mental health treatment programs must create a welcoming atmosphere and provide sensitive training.

Research indicates that, when compared to excessive drinking and drug usage, social media addiction may be more detrimental to teens' mental health, particularly for girls. As a result, school administrators might think about allocating additional funds to improve extracurricular activities in particular. Sports, art programs, and experiential learning curriculum can draw children to participate in positive activities that help them develop as people and keep them away from excessive usage of social media.

In conclusion, school administrators as well as family must have a vision for how students should use social media as educators and activists. As remarked by Susan Cooper, a social media enthusiast and strategist, "Engage, Enlighten, Encourage, and especially … just be yourself! Social media is a community effort, everyone is an asset.

References:

1. Cheng, C., Yang, H., King, I., & Lyu, M. (2012). Fused matrix factorization with geographical and social influence in location-based social networks. https://ojs.aaai.org/index.php/AAAI/article/view/8100.
2. Abbasi, F. & Fazi-Ersi, E. (2021, November). Identifying influentials in social networks. https://www.tandfonline.com/doi/pdf/10.1080/08839514.2021.2010886
3. Bossen, B. & Rita, C. (2020). Uses and gratifications sought by pre-adolescent and adolescent TikTok consumers. https://eprints.kingston.ac.uk/id/eprint/47303/6/Bossen-C-47303-AAM.pdf
4. Patel, K. & Binjola, H. (2020, June 25). Tik Tok the new alternative media for youngsters for online sharing of talent: An analytical study. https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3600119.
5. Poltash, N. A. (2013). Snapchat and sexting: A snapshot of baring your bare essentials. https://scholarship.richmond.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1383&context=jolt.

6. Piwek, L. & Joinson, A. (2015). "What do they snapchat about?" Patterns of use in time-limited instant messaging service. https://www.researchgate.net/profile/Lukasz-Piwek/publication/281440579_What_do_they_snapchat_about_Patterns_of_use_in_time-limited_instant_messaging_service/ links/56fad28108aef6d10d904f91/What-do-they-snapchat-about-Patterns-of-use-in-time-limitedinstant-messaging-service.pdf.

7. Djafarova, E. & Rushworth, C. (2017, March). Exploring the credibility of online celebrities Instagram profiles in influencing the purchase decisions of young female users. https://www.sciencedirect.com/science/article/ abs/pii/S0747563216307506?via%3Dihub

8. Lin et al. (2018, September 11). Online social networking addiction and depression: The results from a large-scale prospective cohort study in Chinese adolescents. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/30203664.

9. Hendriks, H., Wilmsen, D., Dalen, W. V., & Gebhardt, W. A. (2020, January 22). Picture me drinking: Alcohol-related posts by Instagram influencers popular among adolescents andyoung adults. https://www.frontiersin.org/articles/10.3389/fpsyg.2019.02991/full?&utm_source=Email_to_authors_&utm_medium=Email&utm_content=T1_11.5e1_author&utm_campaign=Email_publication&field=&journalName=Frontiers_in_Psychology&id=497588.

10. Sun, T., Lim, C., Chung, J. et al. (2021). Vaping on TikTok: A systematic thematic analysis. https://web.archive.org/web/20210727001150id_/https://tobaccocontrol.bmj.com/content/tobaccocontrol/ early/2021/07/14/tobaccocontrol-2021-056619.full.pdf.

11. Griffiths, M. D., Kuss, D. J., & Demetrovics, Z. (2014). Social networking addiction: An overview of preliminary findings. Behavior addiction: Criteria, evidence, and treatment – Chapter 6. https://www.sciencedirect. com/science/article/pii/B9780124077249000069.

12. Burstein, B., Agostino, H., & Greenfield, B. (2019, April 8). Suicidal attempts and ideation among children and adolescents in US emergency departments, 2007-2015. https://jamanetwork.com/journals/jamapediatrics/fullarticle/2730063.

13. Twenge, J. M. (2019). Why increases in adolescent depression may be linked to the technological environment https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S2352250X19300880.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 230-235
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

Impact of Leadership Style in Organisational Behaviour

Dr. Niraj Kumar Singh*

Abstract: Leadership is one of the factor which is associated with the success and failure of any organisation. Leadership style is a tool with which a leader influences his people to achieve organisational goal. In this paper we have discussed about the impact of leadership styles on the organisation behaviour . Here the main focus was on the different leadership style as autocratic, democratic, production orientedin, people oriented, negative motivation leadership etc and shows which style is better for the organisation. The result of this study shows that organisation have to use that leadership style which enhance the capabilities of the people and doubled the productivity.

Keywords: Leadership, autocratic, laissez fair, democratic, productivity, organization

Introduction

In any kind of management leadership plays a vital role. It provides direction with guidance and enhance the confidence of the employees which help in the attainment of organisational goal in much easier way. Leadership influences the behaviour of all employees individually as well as collectively to which create a positive and energetic environment in the organisation which provides direction and vision for future to an organisation.

Leadership is the ability to which an individual or group of individuals attain to influence and guide other peoples in the organisation. In simple words, Leadership is about taking risk and challenging the status quo. Leaders motivate others to achieve the goal set by the organisation.

- In the words of Koontz and O'Donnell, "Leadership is the art or process of influencing people so that they will strive willingly towards the achievement of group goals."
- According to Keith Davis, "Leadership is the process of encouraging and helping others to work enthusiastically towards objectives."

*Assistant Professor, BBA Department, Siddharth University, Kapilvastu, Siddharthnagar

By analysing above meaning and definitions of leadership, it can be said that, leadership is an ability to direct and motivate the people in positive manners so that they can contribute their best in the fulfilment of the goal of an organisation.

Leadership style in organisation.

There are different kinds of leadership styles in an organisation which are as follows:

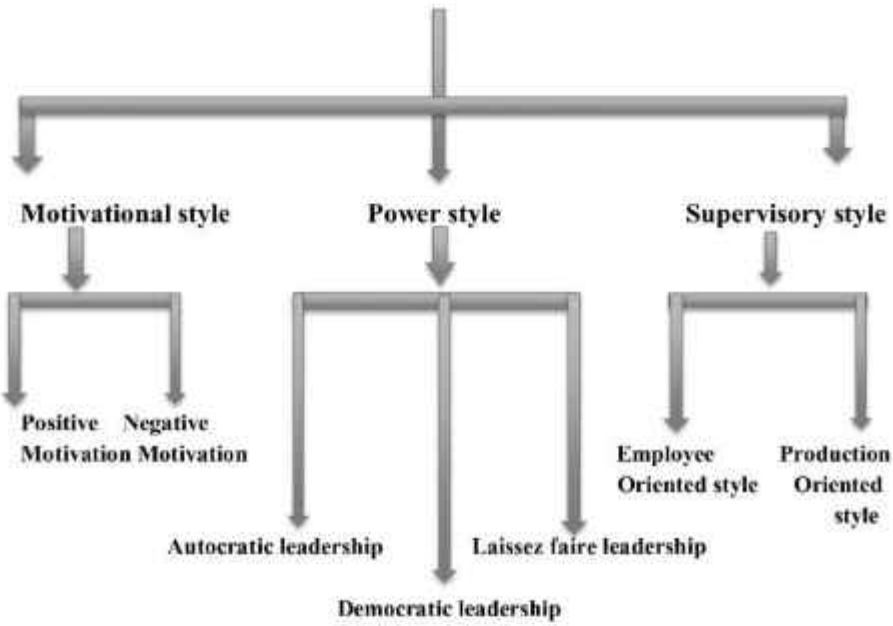

1. Motivational Style

It is a kind of style on which person are motivated by incentive in other words we can say that when work is done by negative and positive incentive this leadership style is known as motivational style it is divided as follows

a. Positive motivation :

In this kind of leadership style leader's emphasis rewards economic or otherwise.

b. Negative motivation :

In this type of leadership style followers are motivated by pressurised ways such as. fearing, penalties, dismissal from the job etc. Generally, a leader practice both the style. When positive motivation is not effective negative motivation is used.

2. Power Style

This classification of leadership style is based on how leaders use their authority.

 ISSN 0976-0849

These are as follows:

a. Autocratic leadership :

In an Autocratic leadership a leader is one who commands and expects compliance, who is dogmatic and positive and who leads by the ability to withhold or give rewards and punishments. This type of leader is also known as authoritarian, directive or Nomadic leader. This type of leadership is characterised by maximum possible centralisation of authority, close supervision, unilateral decision making and one-way communication. It is boss Centred leadership.

An autocratic leader may be of three types- strict, benevolent and incompetent. There are many advantages of autocratic leadership but most of the times people in the organisation dislike this style of leadership especially if it is extreme and the motivation style is negative. The organisation in which this kind of leadership style is prevailing is characterised by frustration, low morale and conflict.

b. Democratic leadership :

The democratic leader draws ideas and suggestion from his group by discussion, consultation and participation such a leader is also known as participative, consultative or ideographi leader. Demographic leadersship is characterized by decentralized authority, participation, two-way communication and effective delegation. It is group centred leadership. Democratic leadership is like and accepted by every member of the group but it does not mean it is free from limitations. Sometimes it's excess goodness make it worse.

c. Laissez faire leadership : Laissez faire leadership is such type of leadership under which the leader does not direct the activities of his followers. He leaves it to the subordinates to decide and control themselves. In other words, the leader decentralized his power and authorities into his subordinates. In this type of leadership, it is believing that subordinate will perform better if they are free to decide and do on their own. This type of leadership is not popular these days but may be used if the subordinate is talented and experience.

3. Supervisory Style

In this style of leadership, a leader act like a supervisor. He plays an important role because he gives more preference to his subordinate in order to increase rate of production. It is divided as :

a. Employee oriented style

In this kind of leadership subordinate have given more preference. A considerate

employee oriented leader is concerned about the human needs of his employees, in endeavors to build teamwork and help employees with their problems. Under such leadership style employees feel satisfied, their morale is high and productivity increase.

b. Production oriented style

In this style of leadership production is the first thing and the leader give more important to the production of the enterprise. Policies are made for better production. This type of leadership is good for an enterprise but not in favour of subordinates. In other words, we can say that the basic aim of this leadership is to improve the productivity and ensure the achievement of predetermined goals of the enterprise.

Impact of Leadership Style on Organisational Behaviour

It is considered that an organisation's leadership undoubtedly has a strong bearing on its performance, employees job satisfaction, their morale. Some researchers have said that leaders motivate and help their employees to be competitive by using effective leadership styles. In recent years' people are working on this topic. Everyone wants to know is there really are relation between leadership style and organisational performance. Lots of researchers have shown that there is a significant relationship between leadership style with organizational performance or behaviour. Therefore, it is important for a leader to choose right leadership style for the growth of the institution. The style of leadership plays a vital role in framing and organisation's culture. Each style has his own merits and demerits. It is totally depending on leader to choose best one according to their organisational culture. Some of the well-known impact of leadership style on organizational behaviour are as follows:

1. Performance of the employee

In any kind of organisation effective leadership is very essential. This is important for influencing employees which leads to work done in very gentle or easy manner A good leader knows how to behave with employees. There should be clear communication, support which will lead to increase productivity and efficiency over all.

2. Organisational culture

Strong and effective leadership has the power to significantly influence organisational culture in a positive manner. In an organisation where leaders demonstrate integrity, transparency and impathy set the tone for a culture of trust and collaboration. Employees who are valued, respected and listen to by the leaders are tened to be more engaged and dedicated to achieving the organisational objective.

3. Creating leaders for future

If any leader is great and his leadership is effective, he will be good in training other leaders just because he understands the landscapes so he can pass his skill to the next generation very smoothly and it will be very beneficial for the institution that they have lots of leaders' frame for the future without any hurdle.

4. Higher outcome are productivity

It is proven that if leadership is effective it increases productivity. Best leaders encourage their employees and create a better place for them which is full of positivity. In this scenario staff engage more with what they are doing with their improving quality of work which will doubled the outcome of any organisation.

5. Giving opportunities for independent thinking

Good leaders not try to Micromanage employees all the time. Instead they give them chance to make independent decision which will develop leadership qualities in them which is really very beneficial for the organization.

Conclusion

Today in any kind of organisation there is a need of a good leader whose leadership is effective and impressive so that every staff of the organisation influence by him and organisation get benefited by his ideas. In this chapter we have discussed about what is leader, all kind of leadership style, and what is the effect of these leadership style in an organisation . As there is different kind of leadership style. It is depending on the leader to choose one of the most effective according to the nature of the organisation so that it leads an organisation get benefited and doubled its producivity

References

Prasad, L.M., 2005, Principles and practice of management, Sultan chand and son's publications, New Delhi.

Vasishth, Neeru, 2008, Principles of management, Taxman publication, New delhi.

Iyer, A., 2013, Principles of management, Shree publishers & Distributors, New delhi Singh,N.K, 2014, Principles of business management,Rajeev Sahitya Bhawan publications, Agra.

Prasad Manmohan, 2015. Management concept and practices, Himalaya publishing house, Mumbai.

Saxena, Jitendra, 2011 Business oragnisation and management, SBPD publishing house, Agra.

Ramasamy, T, 2018 Principles of management, Himalaya publishing house, Mumbai. Rao, V.S.P, 2002, Principles of management, Sultan chand and sons, New Delhi.

Saxsena, S.C,2015, Principles of management, Sahitya Bhawan publications, Agra. Robbins, P,Stephen, 2016,Fundamental of management, Pearson

Agrwal, R.C,2015, Principles of business management,S.B.P.D.publishing house Agra.

Sherlekar & Sherlekar, 2014. Modern business organisation and management, Himalaya publishing house, Mumbai.

Sudha, G.S,2007, Principles of management, Ramesh book depo,New Delhi.

Singh, R.K,2015, Principles of business management, VK global publication pvt. Ltd. New Delhi.

Chopra, R.K,2009 Administrative office management, Himalaya publishing house, Mumbai. Rai, O.P, 2007, Business management, Wisdom books Varanasi.

Sherlekar & Sherlekar, 2014 Modern business organisation and management, Himalaya publishing house, Mumbai.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2024 • Pages 236-240

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

The Multifaceted Responsibilities of Teachers: A Comprehensive Analysis

Harshita Singh*

Abstract: The role of a teacher is multifaceted and complex, as teachers are not only responsible for teaching and learning, beyond this there are lots of duty a teacher have to perform. This paper explores the diverse responsibilities of teachers towards their institution, extending beyond the traditional classroom duties. It focuses the role of a teacher as educators, facilitators, mentors, leaders, ideals, institutional advertiser etc.

Keywords: Teachers, Roles, Responsibilities, multifaceted, Diverse, Learning

Introduction

A teacher plays a vital role in an institution. A teacher is a person who impart his knowledge to his student. They play an important role in growth and development of a student, as they are not only responsible for imparting knowledge to them but inculcating values. For completing the duties well, a teacher should have positive mind-set and this positivity can be developed by some training programmes. In teacher training programs emphasis is given to the commitment. National council for teacher education has given emphasis on need of some commitment which a teacher has and these are as follows: -

Commitment towards student:

Each and every child is special and unique. At each stage of their life they need caring loving person who is always stand with them in every ups and down. In a teacher they see their ideal and there is a strong believe in their mind that a teacher is never wrong. Hence Teacher should understand their inclinations, tendencies, aspiration and educational abilities and work according them so that their body mind and soul can develop holistically.

Commitment towards society:

In a democratic society the role of a teacher is multifaceted and carries significant

*Research Scholar (Education), Siddharth University, Kapilvastu, Siddharthnagar

responsibilities that extend beyond the mere imparting of knowledge. Teachers play a crucial role in shaping the future citizens of a democratic nation, influencing not only their academic development but also moulding their civic consciousness and ethical values. Teachers as the primary facilitator of education, pay a crucial role in instilling democratic values, encouraging civic engagement, facilitating democratic decisions making, nurturing informed and active citizens and fostering a sense of social responsibility.

Commitment towards profession:

In ancient times teaching is considered the most important and prestigious work but nowadays it is not like that. Now it is just like another profession in which we do work and get paid. In this scenario, when a teacher understand that his profession is different than others, he try to find the factor which are tarnishing teaching profession, and also understand that teachers are born for national development and social change, it enhanced their satisfaction level and they become more committed to their profession.

Commitment towards excellence:

A teacher have to take lots of responsibilities in classroom and outside the classroom. When a teacher says I can't or it's enough about his responsibilities that means he is not committed for the excellence but when a teacher thinks there is no limit for excellence and he can do better what he had done today then he will be motivated continuously for his betterment this will lead to enhance his excellence.

Commitment towards basic human values:

Teacher is just like a role model for his student. For imparting knowledge this is necessary that a teacher should have good knowledge of his subject, he knows the different method of teaching. Apart from these the most important thing he should have is his ideal characters, good behaviour, truthfulness, cooperation, honesty, punctuality, transparency, dignity fairness etc. When anyone decide to be a teacher he should adopt, inculcate and develop these values within himself.

Role and Responsibilities of Teachers

Teachers are the backbone of educational institution playing a vital role in shaping young minds and fostering academic excellence. However, the responsibilities extend far beyond the classroom encompassing a range of duties and responsibilities that contribute to the institutions overall success. Here are some:

Educational excellence:

First and utmost responsibility of a teacher lies in his educational excellence. He

can achieve this by proper development of curriculum proper instructional design, using different method of teaching, fair assessment and evaluation of student learning.

Giving guidance and counselling:

A children mind is so soft and they are so sensitive. They have lake of patience. Little ups and down create hurdle in their life. They don't have power to control their emotion. Little things can break their heart easily and in contrast little things can make their heart strong and the teacher have the power to make them strong by giving them academic advises, personal counselling, career guidance and support in their social and emotional development.

Institutional loyalty and commitments:

This is also a very important responsibility of a teacher to be a loyal and committed towards the institutions mission and vision. Whatever the values the institution is following respective teacher must follow that values. Institutions should be the priority of the teacher. He should always ready to do things for the progress of his institution keeping in mind that progress of the teacher is depend on the progress of the institution.

Develop themselves to be the role model of the student:

A teacher should develop or inculcate values, ethics, transparency, fairness, self-discipline, patience, behaviours so that every student can influence with his personality and accept them as their role model.

Development of managerial ability:

In any kind of organisation management is most important ability. In the same manner for school managerial ability is most important part for teacher. it is assuming that it is important for controlling inside classroom activities but it's half true, for controlling both inside and outside activities of a student a teacher need managerial ability. This is responsibility of both the management and the teacher to develop managerial ability in them so that they can participate in school governance, decision making, contribute to policy development and implementation, cultural development manage the human relation within the institution etc.

Community engagement:

This is a very important factor in school promotion, which can be dealt very carefully and sensitively. This is the responsibility of all the members of the institution to deal with the guardians and other stackholders with patience but guardian is more connected with teachers so this is the responsibility of the teacher to build beautiful relationship with parents and other stackholders of the school. Apart from this,

engagement with local communities is also important which can be done with inviting them in school for different exhibition and cultural programs and also visit them whenever they needed.

Collegial support and relation:

There should be a healthy environment within teacher they should live like a family member in school campus. Cooperation, resource sharing, feedback, support should be the part of their services. All the teachers have unity and they should be able to understand feeling of each other's.

Professional development:

This is also a responsibility of a teacher to stay update on best practices and research based methodology. Without being updated they can't do better for their students. They can update themselves by pursuing ongoing learning, participating in workshop, conference and training session, sharing expertise and knowledge with colleagues.

Enrichment in communication and interpersonal skill:

A teacher should have effective communication skill. Without it he can't do better in classroom and outside too. So, this is the responsibility of a teacher to develop his communication skill so that he can participate in effective communication with student, colleagues and parents. With the help of this skill he can build strong relationship and rapport.

Technology expert:

Technology can be used by teachers to improve their knowledge skill and attitude and to explore new teaching methods. It can also help teachers in improving productivity, expanding learning opportunities, increasing student engagement, improving instruction method etc.

Apart from, there are some other duties and responsibilities which a teacher should follow and these are as follows:

- Inculcate values in student
- Develop love for nation
- Feel proud to be a teacher
- Work for the society
- Be hard working
- Thought will be as according to the current scenario
- Believe in teamwork

- Full focus on holistic development of the student
- Make your institution as a part of your life.
- Make yourself self disciplined.
- Punctuality should not ignored.
- Preplanning for every situation should be compulsory.
- Spiritualism should be the basis of life.
- Awareness towards the duties.

Conclusion

Teachers responsibilities are multiceted. By acknowledging these diverse role teachers can maximize their impact and create productive educational environmental. Teacher is expected to behave as parent of the student and trat them with love and care and also build up a healthy self-concept among children. A teacher should always ready to help the student in their academic as well as in their personal problems too. A teacher is always expected to play a role of a resource person who is always able to fulfill the need of their student. Not only a facilitator of learning a teacher should always comfort their child when they feel anxious and work as an anxiety reducer. Whenever there is a dispute among student a teacher should work like a referee and settle their dispute in fair manner. Just like a responsibility of child there are so many responsibilities that a teacher bear.

References

Bhatnagar Anurag, 2013 'Development of learner and teaching learning process' R.Lal Book depot Meerut.
Agrawal Rashmi, 2018 education for disable children. Shipra publication New Delhi.
Gupta Alka 2005 history of Indian education Allahabad Sharda pustak bhavan .
Mangal SK 2015 educating exceptional children. Prentice hall of India private limited.
Bhargav Mahesh 2015. Ekceptional children. HP Bhargav Book House Agra.
Tarswat Malti 2005 development of Indian education Alok Prakashan .
Agrawal Jc 2015. Educational technology and management. Shri Vinod pustak mandir Agra.
Agrawal Jc1957 essentials of teacher education New Delhi Vikas publishing house.
Agrawal IPS 1988 research in emerging field of education New Delhi sterling publishers .
National education policy 2020 .
Saxena, NR Fundamental educational of research 2010,.Meerut Raj Printers Jaidevi Nagar.

VIMARSH : An Interdisciplinary Journal
Vol. 18 • No. 18 • September, 2023 • Pages 241-252
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

पुनर्पाठ

National Policy on Education

Mahant Digvijay Nath

On July 14, 1964, Mr. Mohammad Ali Currim Chagla appointed, as the Education Minister of India, an Education Commissio n consisting of 17 Members which was comprised of 6 foreigners, 2 Muslims and the rest opponents of Hindi.

The Objective of this Education Commission was given out as being "to advise Government on the national pattern of education and on the general principles and policies for the development of education at all stages and in all aspects". This Education Commission submitted its Report to the Government of India on June 29, 1966.

On April 5, 1967, the Government of India constituted a Committee of Members of Parliament whose terms of reference were:

1. To consider the Report of the Education Commission.
2. To prepare a draft statement on the National Policy on Education.
3. To draw up a plan of work for immediate implementation.

This Committee of Members of Parliament appointed a Sub-Committee, to draw up a statement on the National Policy on Education, and it was this statement alone that was discussed by the Committee of Members of Parliament. This Committee did not go into the Report of the Education Commission in detail at all.

Among the members of Parliament which were members of this Committee, the sole representative of the Hindu Mahasabha in Parliament, Mahant Digvijay Nath, was also one. He raised a number of objections at the meetings of this Committee of Members of Parliament, but these were not given due consideration. He was, therefore, left with no alternative but to append a detailed Minute of Dissent to the statement on National Policy on Education prepared by the Committee, which has been published along with the statement on National Policy on Education.

I have gone through the report of the Education Commission at some length. I have also attended the meetings of the State Education Minister held on April 28, 29 & 30, 1967. And, I have also attended almost all meetings of the Committee of Members

 ISSN 0976-0849

of Parliament formed to study the Education Commission's report. The statement on National Policy on Education, in its final form dated June 29, 1967, has also been received by me, and the signing of this report now remains to be done. I sign it with the following Minute of Dissent.

2. I feel that the objective of education mentioned to para I of the proposed "National Policy on Education" is not properly worded. I feel that it should be worded as follows:

   Education is a powerful instrument of national development-cultural, social and economic. The highest priority should therefore be accorded to the development of a national system of education which will:-develop among the people of India a national personality based on its ancient civilization and culture;
   while the rest of the para remains as in the draft.

3. I regret to say that I found much of unreality about the entire problem of education as it has to be re-organised after twenty years of our independence, as the basic problem about the character of education to be imparted to our children has not been examined by the Education Commission, as it was expected to do. I am sorry that the Report of the Education Commission was not considered in detail by the Committee, thereby defeating the very purpose for which it had been appointed.

4. The real malaise with the present system of education in India is that it has been based on the infamous Minute of Macaulay dated February 2, 1835, the real aim of which was clearly defined by him in the following words: We must at present do our best to form a class which may be interpreters between us and the millions whom we govern-a class of person Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect". This clearly shows that the basic aim of Macaulay was only to produce clerks, and this aim has been carried through by the Government of India ever since March 7, 1835, when Lord William Bentinck got the Government resolution adopted which said that "the great object of the British Government ought to be the promotion of European literature and science among the natives of India; and that all the funds appropriated for the purpose of education would be best employed on English education along."

5. The objective which both Macaulay and Bentinck had before them was to convert the whole of India to Christianity, as is clear from the letter Macaulay wrote to his parents from Calcutta on October 12, 1835. In this, he wrote : "Our English Schools are flourishing wonderfully, the effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindu, who has received an English education, ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but many profess

themselves pure deists, and some embrace Christianity. It is my firm belief that if our plans of education are followed up, there will not be a single isolator among the respectable classes in Bengal thirty year hence. And, this will be effected without any efforts to proselytize, without the smallest interference with religious liberty merely by the natural operation of knowledge and reflection. I heartily rejoice in the prospect".

6. Commenting on this letter of Macaulay, Mahatma Gandhi wrote in "Young India" dated March 29, 1928 thus: "I do not know whether Macaulay's dream that English-educated India would abandon its religious beliefs has been realized, but we know too that he had another dream, namely, to supply English-educated India clerks and the like for the English rulers. That dream has certainly been realized beyond all expectation".

7. Another objective Macaulay had in this mind when introducing this English education in India, was to denigrate everything India. He wrote in para 9 of the same infamous Minute that "I have ever found one among them (the Orientalists) who could deny a single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia". This view of his has been impressed on the Indian mind during the last seven generations continuously so much so that every Indian today considers everything Indian as inferior and everything English or Western as superior.

8. Under these circumstances, the basic aim of educational reconstruction in India must be to reverse this process, and very effort must be made through education to eliminate this inferiority complex from the minds of the new generations in India and also to produce youngmen with a fully developed national personality, based on the ancient the civilization and culture of our great country.

9. I am really very happy to note that our present Education Minister, as well as the Prime Minister and the Deputy Prime Minister, are fully conscious of this great need of educational reform. In the course of his address at the inaugural session of the Tenth Conference of the State Education Ministers, held in New Delhi on April 28, 1967 the Education Minister had stated: "Equally significant is the programme to promote national consciousness and to strengthen national integration and unity. Unfortunately patriotism has become the first casualty after independence. We must not make the schools assume responsibility for promoting national consciousness and for strengthening national integration and unity". The Prime Minister, while inaugurating this Conference clearly stated that "partly because of the system itself and partly because of unavoidable transitional factors, it has resulted in a certain degree of alienation and rootlessness. Many young

people have been cut adrift from traditional values, without being provided the anchorage of an alternative set of constructive modern values". The Deputy Prime Minister, in the course of his address at the same Conference, went a step further, when he said: "We have a very ancient, perhaps the most ancient civilization and culture. In the realm of thought, which raises human personality to the highest fulfillment, I do not think any other country can beat this country. Today also, we are having all those thoughts and ideals but they are more in name than in action. Our ideals are the highest but our actions are probably the lowest. I must agree to this indictment, but if that indictment is rightly taken by us to heart, not as a criticism but as a statement of the present state of affairs from which we are suffering, we shall soon find a way to remove this contradiction between thought and action. We have not go to lower our ideals but we have got to raise the level of our action, so that it conforms with the ideals that we profess of believe, in. I believe education is the only instrument through which we can achieve this. There is nothing else which can make a nation integrated, strong and consisting of a real human society, because it is the purpose of education to unable us to see that what is right and what is wrong and also to acquire a capacity to stick to what is right and to give up what is wrong. Judged from that standard, I am afraid, our education has been a miserable failure, barring a few exceptions here and there. That is because our education took a different turn during our days of slavery. I am happy that those days are gone, but the effects of those days are not yet gone. Whereas we have become physically independent and free, I wonder if we are mentally yet free and independent. We are still being governed, and very strongly governed, by some of the ideas which were responsible for putting us into slavery and keeping us there". These sentiments, expressed by the highest in authority in the country in regard to education, give a clear indication, as to how our educational system should be re-organized for the future.

10. It is from this standpoint that I have stated in the very beginning of this Minute of Dissent that the report of the Education Commission and all the proceedings held in connection with it, have appeared to me to altogether unreal. I had expected the Education commission to have pointed out re-organized educational system would reverse this process of de-nationalizing the people, so that a national personality might develop among the future generations. I feel that the very constitution of the Education Commission was faculty from the very start. It was most unfortunate that no less than 6 of the 17 members of the Education Commission were foreigners: two Englishmen, one Japanese, one American, one Russian and one Frenchman. Out of the remaining eleven, two represented the Muslim minority in the country. Out of the remaining nine, apart from the

Chairman, who is one of the topmost scientists and educationists of the country, and present Education Minister, a great engineer and educationist, most of the others were of a calibre which left much to be desired as members of an Education Commission, the basic objective of which was to reconstruct in India, so as to raise it to the highest standards. It is most unfortunate that the Ministry of Education could not find a single North-Indian educationist from any of the many universities in the so-called Hindi region fit enough to become a member of this Education Commission. It is a result of this faculty constitution of the Education Commission that this lopsided Report has come before us, which seems to have been written with the deliberate objective of destroying the *very* national fabric of this country. All through this Report, an excessive emphasis has been laid on diversity among our people. For example, para 1.07 says : "Our people profess a number of different religion ; and the picutre becomes even more complicated because of caste, and undemocratic institution, which is still powerful and which, strangely enough, seems to have extended its sphere of influence under the very democratic processes of the Constitution itself. The situation, complex as it was, has been made critical by recent developments which threaten both national unity and social progress. As education is not rooted in the traditions of the people, the educated persons tend to be alienated from their own culture. The growth of local, regional, linguistic and State loyalties tend to make the people forget India. The old values' which held society together, have been disappearing, and as there is not effective programme to replace them by a new sense of social responsibility, innumerable signs of social dis-organization are evident everywhere and are continually on the increase". This by itself is a misstatement of the Indian society. There is hardly any big country in the world which does not have a small minority, but this minority does not change the basic character of the Nation. As such, to repeat *ad nauseum*, as has become the fashion today, to call India amultireligious polygeot country, is basically wrong. In this connection also, the Education Commission has put too much stress on the word "Secular" This much-abused word is regarded as something sacrosanct, when the fact is that this word has a very low connotation as it gives an idea of something mudance. It was for this very reason that this word does not find any place in the Constitution of India.

According to the "New English Dictionary" the word "Secular" stands for the "the absence of connection with religion". And according to the "Encyclopedia Britanica", the word "Secular" means "anything non-spiritual, having no concern with religion or spiritual matters-anything that is distinctly opposed to, not connected with religious or ecclesiastical, things temporal as apposed to spiritual or ecclesiastical". These definitions make it perfectly clear that there is nothing in the Constitution of

 ISSN 0976-0849

India to justify the application of the title "Secular" to the political system embodied therein. As against this, Article 25 of the Constitution provides for the right to freedom of religion, clearly declaring that "subject to public order, morality and the other provisions of this part, all persons are equally entitled to freedom of conscience and the right freely to profess, practice and propagate religion". Article 26 of the Constitution further clarifies how these religious rights are to be exercised by the people. These Articles in the Constitution gives religion a place in the political life of the country as hardly any other modern Constitution does. From all this it follows that India is not a "Secular State".

11. It is not a mere omission that the word "Secular" does not find a place in the Preamble to our Constitution, whereas social, economic and political justice, liberty of thought, expression, belief, faith and worship and equality of status and of opportunity all find a place there. The fact is that the learned constitution-makers of India were fully aware of the real meaning of the word "Secular" and they deliberately refused to countenance the addition of the word "Secular" in the Constitution, in spite of concerned efforts made by some. members to introduce this work in the Constitution itself. While discussing the Chapter on Fundamental Rights, it was Prof. K.T. Shah, the great economist, who moved an amendment by which he wanted an additional Article. to be numbered 18-A serially to be inserted in the draft Constitution, and this amendments to the Draft Constitution of India, Volume One", and it ran thus : "that the following new Article be inserted under the heading 'Rights relating to Religion'. occurring after Article 18.

But, our Constitution-makers refused to accept this amendment and it was duly rejected. The matter, however, did not end there. The same Prof. K.T. Shah also moved an amendment to the Preamble in the Draft Constitution, by which he wanted to add the word "Secular" between the words "Sovereign" and "Democratic Republic", but this too was rejected by the Constituent Assembly. This amendment was the very first in the list of amendments printed in book form. Then again, by amendment No. 96, printed in the list of amendments, Prof. K.T. Shah and Mr. Mohan Lal Gautam wanted Article One of the Draft Constitution running "India shall be Union of States", to be changed in to "India shall be a Secular, federal, socialist Union of States", but this amendment also met the same fate and this too was rejected. These facts clearly go to show that the learned Constitution- makers of India did not want India to be a "Secular State" in any shape of form. Under such conditions, it was most improper for the Education Commission to have gone out of its way to lay undue emphasis on secularism, as it has done in para 1.79, wherein the Education Commission has taken undue pains to make a distinction between "Religious education" and "education about religions". It goes on

to say that' "it would not be practicable for a Secular State with many religions to provide education in anyone religion". As I have shown already, India cannot be called a Secular State with many religions. As ninety per cent of the population of the country follows the Hindu religion in one form or another, the remaining ten per cent of the minorities remain minorities and they cannot be permitted to act as if they had a right of veto on the rights of the ninety per cent nationals of this country. As to who is a Hindu has been made perfectly clear in the Constitution in Explanation II to Article 25(2)(b), which clearly says that "the reference to Hindus shall be construed as including a reference to persons professing the sikh, Jain or Buddhist religion, and the reference to Hindu religious institutions shall be construed accordingly'. This explanation makes it perfectly clear that ninety per cent of the people of India profess a single religion in different forms, and as such there should be absolutely no ban placed on religious instruction in the schools. It is a tragedy of India that while all Christian institutions in the country have the liberty to teach Christianity to its students and all Muslim institutions train their children in their religion, it is only the Hindu students who are debarred from getting any linking into their own religious beliefs. This attitude of the British Government in India all through the last 100 years before independence and of our own National Government during the last twenty years after the country's independence, has left a complete vacuum in the lives of the people of this country, and the Present indiscipline among the students can largely be traced to this non-teaching of the tenants of the Hindu religion, because Hindu religion has always been a great check on sin and crime. I therefore strongly demand that this attitude must now change. The ninety per cent nationals of this country have every right to have their children trained in the religious traditions of the country. I therefore demand that from the very elementary stages of education, all students must be imparted religious instruction in the sacred books of the Hindus, including the Vedas, the Upanishads, the Ramayana, the Mahabharata, the Gita and other scriptures, so that when the children grow up as citizens, they may have a through knowledge of the background about the great past of this ancient land. It is here that Macaullay's work of denationalizing the people has to be undone and undone with a strong hand. Until this is done, no system of education, however scientific in the Western sense, imparted in our schools and colleges, can make them first-rate citizens.

12. It is in this same connection that I consider it necessary to emphasize that the attempt made by the Education Commission to dissociate holidays in educational institutions from religious festivals is most reprehensible. In para 2.36, it has been stated that "the idea of vacation terms should be made secular and dissociated from religious festivals like Diwali, Christmas or Puja". And in para 2.37(1) the opinion has been expressed that "there is no need to close an educational institution

on a religious holiday. Nor it is necessary, for instance, to close it on birthdays or death anniversaries of great Indians". I take the strongest objection to these statements in the Report of the Education Commission. In all Christian countries in the world, Christmas and Easter holidays are celebrated on a grand scale. In the same ways, in all Muslim countries, Id-ul-Fiter and Id-ul-Zuha and Moharram are celebrated by the people on a mass scale, and the students are main participants in all these celebrations. Is it any crime for Hindus in India to be Hindus, that they must be debarred for celebrating their great days? it is often said that there are too many festivals among the Hindus. The reason for this is not far to seek. In words of Mr. Morarji Desai, our Ex-Deputy Prime Minister, (already quoted) "we have a very ancient, perhaps the most ancient civilization, and culture". And, it is but natural that the older a civilization, the more great men and great deeds is must have to celebrate, so that the future generations might follow in the footsteps of these great men. It is therefore not at all improper if the Hindus have a much larger number of festivals to celebrate, and the students must have every facility to participate in these festivals. This year important national holidays like Holi and Shivaratri were not declared closed holidays by the Government of India. This was a great encroachment on the rights of the people of this country, and it seems this action was taken on the basis of this Report of Education Commission. The Education Commission seems to have been very particular about reducing the number of holidays that might be granted to students. The simplest procedure that should have been adopted by the Education Commission was that it should have suggested that only those festivals should be declared as closed holidays which concern a majority of the people, that is in which more than 50 per cent of the people participate, and all festivals which concern people numbering less than 50 per cent should have them as restricted holidays, with full pay, available only to members of the communities with which those festivals are concerned. This would save many unnecessary holidays, without doing injustice to the vast majority of the people.

13. In this same connection, I wish to draw the attention of the people to the attempt made by the Zakir Hussain Committee on Basic Education, which through a seven-year course on general science, had made on attempt to teach "Islamic Culture in India and the World" to students all over India in class V, when it had scrupulously avoided mentioning the Vedas and the Upanishads, the Ramayana and the Mahabharata, Sanskrit and Hindi and the Aryan Hindu cultures from the entire syllabus. This was deliberately done by this committee to continue the process of de-nationalizing the people of this country, a process started by Macaulay in 1835. The present Report of the Education Commission seems to be

a mere continuation of the same de-nationalizing process, and I take strong exception to it.

14. It is from the same standpoint that I take strong exception to paras 4.48 and 8.49. wherein every has been made to discourage the study of Sanskrit. It was the late Prime Minister Shri Lal Bahadur Shastri, who has once said that every State in India should have a Sanskrit University. It seems to me that the assertion of the Education Commission that it cannot support the idea of Sanskrit Universities, was incorporate in this Report to counteract this absolutely essential suggestion of Shri Shastri. As we all know, Sanskrit is the treasure-house of vast knowledge in every field of knowledge, including the sciences. The people of this country cannot become first-rate scientists until and unless they have a proper grounding in ancient Indian sciences in Sanskrit, whether it be in the field of mathematics, or in astronomy and astrology, in medicine or surgery, whether in philosophy or logic, or any other science. I take strong exception to Sanskrit being included along with other classical languages, which do not deal with sciences as such, and which have always been foreign to India. I feel that Sanskrit being the mother of all Indian languages, and of all science, its study should be made compulsory for all students from the very beginning, so that when the students grow up they might be masters of this language and it might be easy for them to grasp the modern scientific discoveries and inventions, as they are merely the continuation of the knowledge about our sciences contained in Sanskrit. In this respect also, Macaulay's mischief must be undone.

15. In regard to the language policy, I feel, a very wrong approach has been made. The fact is that a child's mind is fit to grasp several languages, while as he grows up his capacity to learn new languages grows less and less. But as regards other subjects, the child increases his capacity to learn them as he advances in age. It is therefore very wrong to say that the child not be burdened with three or four language does not need mental development of a high calibre, and learning of the other subjects does need more of mental development, the excessive emphasis laid on the teaching of science and discouraging the study of several languages to children in the initial stages, is basically wrong. In the primary classes, I feel languages in the form of short stories and the elementary principles of arithmetic and general knowledge alone should be prescribed. And, as he advances in age, less and less of languages and more and more of scientific subjects should be taught. It is an this light that I consider the teaching of Sanskrit alongwith Hindi as the national language, the regional language and a third Indian language as necessary for all students in the beginning, and Sanskrit, Hindi and the regional

language must continue all through the educational career. In this age of democracy, in which a bare majority of 51 per cent can foist its view and decisions on everybody, including the substantial minority of 49 per cent, the undue importance attached to English must not be permitted to hold up the progress of the country, which can be made only through the national language and the regional languages, simply because of a small minority of 7.4 per cent people from Tamilnadu. The assertion that English is a window to learning in the West is also not quite true. In the whole of Europe, English today is as foreign to the people there, as is Hindi. Except for England, Canada, Australia, South Africa, the U.S.A. and the countries which are under British domination till recently, English is not understood anywhere in the rest of the world. The four languages of Europe today are from West to East, Spanish, French, German and Russian. If a real window to the knowledge of the West is needed by our students, they must learn any of these Continental languages rather than English. To say that we cannot make any scientific advance without a knowledge of English is also wrong. The Russians who today are at the top in science, learnt all their sciences through Russian, although 40 years back they were the most backward and science in modern terms was not even known to them. China also learnt all its sciences through the Chinese, through the Japanese language. Even small countries in Europe, like Bulgaria, learn all their sciences through their own Bulgarian language. Why then is it necessary for the people of this country to learn a foreign language to become masters in various arts and sciences? The problem is merely one of translating scientific books in the national languages. If Maharaja Ranbir Singh of Jammu and Kashmir could get hundreds of books in Sanskrit translated in Hindi with the help of a hundred Pandits employed in the Dharmarth Trust, and if Osman Ali Khan, the late Nizam of Hyderabad, could get all textbooks from primary classes up to the post-graduate classes translated in Urdu for his Osmania University there is no reason why, our Government of India, with all resources at its command, cannot get all important scientific books in the different languages of the world translated in India spends thousands of crores of rupees on different activities, there is no reason why it should not devote a few crores on the work of translation alone, so that the nation might make maximum scientific advance in the shortest possible time through our own languages. I therefore strongly oppose the continuance of English as an associate official language along with Hindi because so long as English remains as the medium of instruction in India, in any shape orform, Macaulay's mischief of keeping Indians mental slaves of the English cannot be undone. I take strong exception to the Education Commission having gone out of its way to make changes in the three language formula, which was so

successfully being worked out all over the country. Bringing in the mother tongue as an alternative to the regional language, and proposing English as an alternative to Hindi as the link language, is the worst mischief that this Education Commission has proposed in the course of this Report, and I condemn it with all the strength at my command. I want the old three language formula to continue in practice, in which Hindi and the regional language must remain the medium of instruction throughout. The proposal to teach, up to the university stage, only in the regional language, as envisaged in the two language formula, would lead to the disintegration of the country into so many separate water-tight compartments, thereby Balkanising it completely as the compatriots of Macaulay and other enemies of our country would like to see. I therefore entirely disagree with it and strongly oppose its adoption.

16. I feel it necessary to draw attention to another matter of importance and that is in regard to the education of girls in India. All over Europe today, there is a general tendency to reduce co-education in the higher classes, as it demoralizes the students. As against this, in India, efforts are going on in the reverse direction. It is really ludicrous that while we find primary schools separate for boys and girls, more and more secondary and higher secondary educational institutions are being converted into co-educations, while in the universities co-education is being made universal, at an age which is most dangerous in one's life. The position should be that while co-education should be confined to children up to the age of 10 or so, all education above this age must be kept separate for boys and girls. I am really very sorry that the Education Commission has not paid proper attention to this aspect of education, and I want this to be incorporated in any Statement on National Policy on Education that might be prepared for the country. We must not forget that the very basis of our society in India is *Brahmacharya*, and it is on this account that our country has so far maintained its high position in the world of knowledge and social behaviour. Co-education is destroying the very foundation of our society, and I consider it our duty to restore our social behaviour to the greatness that has sustained us all through the ages. In this connection it is also very necessary that the aim of education in India should be to train our people for the future lives they have to live. As such, the courses of secondary, higher secondary and university studies for women should be confined to subjects they have to deal with all through their lives, like doctors, teachers, fine arts and household work of various kinds only. At the same time, boys should be discouraged from taking up fine arts as their subjects of study. They should confine themselves mostly to many pursuits.

 ISSN 0976-0849

17. I regret that the Education Commission has not touched on the cinema and television is the most suitable media for education. In almost all countries of the world, these media are fully utilized for this purpose. Instead of these, our young men and women are being corrupted through most demoralizing films. I demand that a total ban be imposed on "For Adults Only" films, and also to see that much of sex is not allowed to be included in the Indian films, with most obnoxious songs, as is happening today.

18. I also take strong exception to wrong name of culture being given to the lowest arts, like dancing and singing, in the Education Commission's Report. These might be part of culture for the people of the West, who have not as yet reached the higher conception of philosophical living, but for the people of India, only the highest forms of philosophical discourses, etc. have been recognized as culture. By encouraging these so called arts, a concerted effort is being made to degenerate the people as a whole. I would like to see *Yoga* and *Asanas* being encouraged on a mass scale, so that the people of the country might become healthy and strong, as a healthy body is necessary for healthy mind. I am really very sorry that the education commission has not seen fit to go into this question at all, except what concerns drill and the N.C.C. In this connection also, I cannot appreciate our girls being given any training in N.C.C. or the like. There is no shortage of man-power in India, like most countries of Europe. As such, it is not only wrong but definitely harmful to cry to prepare our girls in form of military training, except nursing, first-aid and tending the sick and wounded. I hope the day will never come in India when our women would have to go to fight in the battlefield, due to lack of men to defend the country's honour. As such, all this training in N.C.C. imparted to girls is a complete national waste. This money can very well be utilized in training all our youngmen militarily.

19. In some places in the Statement on National Policy in Education, there is a reference to the teaching of History of Freedom Movement in India. This history should cover the entire period of the last 1000 years of our struggle for freedom and not only the last 200 years.

20. I have every hope that while considering the Report of the Education Commission, the above comments of mine will also be taken into consideration, and proper decisions taken thereon.

विमर्श : अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका
वर्ष 18 • अंक 18 • सितम्बर, 2024 • पृष्ठ 253-273
ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

पुनर्पाठ

अष्टावक्र

मुरली मनोहर जोशी*

संस्कृति के उषाकाल में ही भारतीय मनीषा ने इस सत्य का साक्षात्कार कर लिया था कि ज्ञान का अव्यभिचारी रूप ही वरेण्य है। हमारे मंत्रद्रष्टाओं ने कहा था कि ज्ञानार्जन का अर्थ ही है सत्य की खोज और प्रदूषित ज्ञान को प्रश्रय देने से असत्य की प्रतिष्ठा होती है। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि ज्ञान का उद्देश्य व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का उपार्जन न होकर लोक-कल्याण होना चाहिए तथा आध्यात्मिक सम्पन्नता स रहित निरी भौतिक समृद्धि श्रेयस्कर नहीं हुआ करती। भारतीय मनीषी यह भी बखूबी जानते थे कि स्वाध्याय के बिना ज्ञानार्जन का कोई अन्य सरल उपाय नहीं है। इसीलिए संस्कृत वाङ्मय में इन स्थापनाओं को पुष्ट करने वाले अगणित प्रकरण बिखरे पड़े हैं। पूरा साहित्य पढ़ने की फुरसत इस उच्च तकनीकी के व्यस्ततापूर्ण युग में न भी मिले तो रामायण और महाभारत के अवलोकन से ही बहुत कुछ पता चल जायेगा। अगर इन ग्रंथों को मूल रूप से पढने का समय न भी निकाल पाएं तो इनके संक्षिप्त संस्करण ही पढ़ लें। उससे भी यह जान लेंगे कि अष्टावक्र, कच, विश्वामित्र आदि ऐसे उदाहरण है जो भारतीय मनीषा की इन प्रवृत्तियों को पूरी तरह उजागर कर देते हैं।

कम्प्यूटर और संस्कृत

आप हंसेंगे मुझ पर, और कहेंगे-''यह कहां की बातें ले बैठा, उधार भारत का कम्प्यूटरीकरण हो रहा है और देश ''इक्कीसवीं सदी' में प्रवेश करने के लिए सारे सरंजाम इकट्ठे करने में बड़ी तेजी से जुटा हुआ है और यह ईसा से भी इक्कीस सदी पहले की बाते सुनाकर हमारा बेशकीमती वक्त बरबाद कर रहा है।'' पर मेरे भाई, यह मैं कैसे समझाऊं कि बहुत से विद्वानों की राय यह बनती जा रही है कि बीसवीं सदी का कम्प्यूटर भले ही चाहे जिस भाषा में गिटपिट करें, पर इक्कीसवीं सदी वाला कम्प्यूटर तो शायद संस्कृत ही बोलेगा, क्योंकि भाषाविज्ञान के लिहाज से संस्कृत और कम्प्यूटर का मिजाज एक-जैसा ही है। और अगर कहीं सचमुच ऐसा हो ही गया तब

*पूर्व मानव संसाधन एवं विकासमंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली (१९९१ ई. में प्रकाशित प्रज्ञा-प्रवाह से साभार)

 ISSN 0976-0849

तो आपके लिए संस्कृत साहित्य पढ़ना आवश्यक हो जायेगा और आवश्यक हो जायेगा उन सब उपाख्यानों को जानना-समझना भी जिन्हें आप दकियानूसी बकवास कहकर रद्दी की टोकरी के हवाले कर चुके हैं। तब तो अष्टावक्र जैसों की कथा का ज्ञान आपको महिमामंडित कर सकेगा।

आप कह सकते हैं, आखिर अष्टावक्र यानी आठ जगह से टेढ़े व्यक्ति को जानने-समझने के लिए उन तमाम ग्रंथों की क्या आवश्यकता है, जबकि आज अस्पतालों में प्रतिदिन टेढ़े-मेढ़े विकलांग बालक प्रतिदिन जन्म लेते हैं। उनमें से कुछ तो आठ क्या, अठारह जगह से टेढ़े-मेढ़े होते हैं। उनको देखकर क्या अष्टावक्र के बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता? यह प्रश्न तो सरल है पर जटिल है इसका उत्तर। और जटिल है यह समझना की विश्व भर में जन्म लेते ये विकलांग, विरूप, विकृत बालक एक ऐसी आनुवंशिक विकृति के दुष्परिणाम हैं, जो उन पर बलपूर्वक लादी गई है। इससे भी कहीं जटिल है यह समझा पाना कि यह विकृति, तकनीकी विकास पर आधारित एक समाजार्थिक व्यवस्था का अभिशाप है जो इन प्राणियों को जन्म से ही भोगना पड़ रहा है। इनकी चर्चा इस समय नहीं। यह तो उस प्रणाली के परिणाम हैं जिसमें कुछ को स्वस्थ एवं सबल बनाए रखने के लिए बहुतों को जन्म से ही रोगी एवं दुर्बल रहने पर ही नहीं बल्कि विकलांग होकर जन्म लेने पर विवश कर दिया जाता है। प्रसंग आने पर करूंगा इनकी भी चर्चा, क्योंकि सारी दुनिया के अस्सी प्रतिशत लोगों को इस तरह हतभाग्य बनाने का अधिकार किसी को नहीं दिया जा सकता। भगवान को भी नहीं। पर मैं जिस अष्टावक्र की बात कर रहा था, उसका मामला इनसे कुछ भिन्न है।

महाभारत के वनपर्व के अन्तर्गत तीर्थयात्रा पर्व के एक सौ बत्तीसवें अध्याय में जिस अष्टावक्र के जन्म की कथा है, मैं उसकी चर्चा कर रहा हूं। इस वृत्तांत के अनुसार *कहोड मुनि अपनी पत्नी सुजाता सहित अपने आश्रम में वेदों के अध्ययन एवं अध्यापन में लगे रहते। मुनि रात में स्वयं पढ़ते थे* और दिन में शिष्यों को पढ़ाते थे। एक दिन जब वे अपने शिष्यों के साथ स्वाध्यायरत थे, तब उन्होने सुना कि कोई कह रहा है-*सर्वा रात्रिमध्ययनं करोषि,नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते*'' -''पिताजी, आप रात भर वेदाध्ययन करते रहे हैं, तो भी इस समय आप ठीक-ठीक नहीं पढ़ा पा रहे हैं।'' मुनि ने इधर-उधर देखा पर समझ में नहीं आया कि यह आवाज कहां से आयी। वे पुनः शिष्यों के साथ व्यस्त हो गये। थोड़ी ही देर में फिर वही आवाज सुनाई दी- ''*नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते*'', ''पिताजी, आप ठीक-ठीक नहीं पढ़ा रहे हैं।'' स्वाभाविक था कि शिष्यों के सामने ऐसा आरोप सुनकर कहोड मुनि अपने को अपमानित अनुभव करते। वे ढूंढने लगे कि कौन यह बात बार-बार कह रहा है? कौन यह दुस्साहस कर रहा है?

खोजते-खोजते पता चला कि उनकी पत्नी सुजाता के गर्भ में जो जीव है वही कह रहा है- ''*नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते।*'' अब एक विचित्र स्थिति थी। कहोड मुनि के शिष्यों की उपस्थिति में ही उनकी पत्नी की कोख में उन्हीं द्वारा स्थापित प्राणी गर्भ में ही बैठा-बैठा उनके ज्ञान को चुनौती

दे रहा है। कह रहा है, ''हे पिता, आप पढ़ाने मे घोटाला कर रहे हैं'', और यह भी कह रहा है कि ''आपसे ही वेदादि शास्त्रों को सुनकर जो कुछ सीख पाया हूं उसी के आधार पर कह रहा हूं- *'नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते'*। चाहिए तो यह था कि कहोड मुनि प्रसन्न होते कि कुछ दिनों बाद उन्हीं के यहां जन्म लेने वाला गर्भस्थ प्राणी इतना विद्वान है कि मां के पेट से ही अपने पिता के अध्यापन की त्रुटियां बता रहा है। वह इतना तेजस्वी है कि बिना डरे हुए पिताश्री की गलतियां बता रहा है। वस्तुतः कहोड मुनि जैसे वेदाध्यायी से अपेक्षा तो यह थी कि वे इस जीव को आशीवार्द देते और अपनी गलती सुधार लेते, पर उन्हें तो इस घटना में अपना घोर अपमान झलक रहा था। सोचने लगे गर्भ में बैठे हुए इस पिद्दी की इतनी मजाल कि श्वेतकेतु के बहनोई, उद्दालक के जमाता कहोड मुनि के वेदपाठ में दोष निकाल रहा है। बोले, ''अरे, तू मां के पेट से ही इतनी टेढ़ी बातें बोलता है, अपने पिता को उसके शिष्यों के सम्मुख अपमानित करता है, जा, तू आठ जगहों से टेढ़ा हो जा- *'तस्माद् वक्रो भवितास्यष्ट कृत्वः'*- महाभारतकार कहता है, और फिर महर्षि अष्टावक्र आठ अंगों से टेढ़े होकर ही जन्मे-*''सर्वे तथा वक्र एवाभ्यजायदष्टावक्रः प्रथितो वै महर्षिः।''*

पुत्रों द्वारा अपने पिताओं की अनीति और अन्याय के विरूद्ध किए गए संघर्षों के उदाहरण तो बहुत से मिलेंगे और ऐसे प्रसंग भी पर्याप्त मात्रा में मिलेंगे जब शिष्यों ने गुरूओं को पराजित किया हो, पर ऐसा अद्भुत उदाहरण तो अष्टावक्र के उपाख्यान के अतिरिक्त अन्यत्र मिलना दुर्लभ है जहां मां के पेट से ही किसी ने अपने पिता को टोका हो-*''नेदं पितः सम्यगिरोपवर्तते''*- ''पिताजी, ठीक-ठीक पढ़ाइए। ज्ञान के मामले में घपला मत कीजिए। ज्ञानगंगा को दूषित करने की चेष्ठा मत कीजिए!'' ज्ञान की परम्परा को निर्मल एवं पारदर्शी बनाए रखने की प्रतिबद्धता का बेजोड़ उदाहरण यह नहीं है तो और कौन-सा है? वाग्देवी सरस्वती के स्फटिक स्वच्छ प्रवाह में प्रदूषण का किंचित स्पर्श भी गर्भस्थ अष्टावक्र को सहन नहीं हुआ। पीड़ा से तिलमिला उठा वह-वह देखकर कि उसके पिता द्वारा विद्या के साथ व्यभिचार किया जा रहा है। ऐसी छटपटाहट हुई उसे, विधिवत् जनम लेने की भी प्रतीक्षा नहीं की उसने और बोल पड़ा मां के पेट से - ''यह ठीक नहीं है, *नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते।''* पर इसका पुरस्कार क्या मिला उसे? यही न, *''तस्माद् वक्रो भवितास्यष्ट कृत्वः''*- जा, तू आठ जगहों से टेढ़ा-मेढ़ा होकर विकलांगता को प्राप्त हो।

तुम धन्य हो, अष्टावक्र! आओ, तुम्हे प्रणाम करें। तुमने हमें बताया कि ज्ञानामृत में विकृति का विष मत घोलने दो किसी को भी, चाहे वह तुम्हारे पिता ही क्यों न हो। अगर वह ऐसा करता है, तब तुम चुप मत रहो। तुमने स्थापित किया अष्टावक्र, कि ज्ञान-भ्रष्टता से मानसिक विकलांगता उपजती है, जो शारीरिक विकलांगता की तुलना में कहीं अधिक घातक है। और तुमने अपने आचरण से यह भी सिद्ध कर दिखाया था कि भारतीय भूमि पर जन्म लेने के लिए प्रतीक्षारत भ्रूण भी मानसिक विकलांगता को बेहिचक अस्वीकार कर देता है, फिर चाहे जितना कष्ट इस मार्ग में उसे

 ISSN 0976-0849

उठाना पड़े। अष्टावक्र, जब तुमने अपने पिता को टोका था, तब तुम यही तो कह रहे थे कि दूषित ज्ञान को स्वीकार करने का अर्थ सत्य के स्थान पर असत्य की प्रतिष्ठा करना होता है। उससे बुद्धिभ्रम, दृष्टिभ्रम, दिशाभ्रम- सभी कुछ उत्पन्न हो जाते है। तुमने सावधान किया था इन्हीं विविध भ्रमों के संकट से क्योंकि इनकी परिणति तो सर्वनाश के सिवा और किसी में होती नहीं। तुम यह भी बातना चाह रहे थे कि ज्ञान के क्षेत्र में कोई बात सिर्फ इसीलिए ठीक नहीं मानी जा सकती क्योंकि कोई बड़ा आदमी उसे कह रहा है। तुम रूढ़िवादिता, कटमुल्लापन, मतान्धता के विरूद्ध मां के गर्भ से ही बोले थे, अष्टावक्र!मानसिक दासता लादने की प्रक्रिया के विरूद्ध तुमने सशक्त विद्रोह का स्वर मुखरित किया था, अष्टवक्र और चेष्टा की थी स्वतंत्र, निर्भीक चिंतन के महत्त्व को समझाने की।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। अभी तो इस उपाख्यान का एक ही अंश बताया है मैंने। अष्टावक्र का चरित्र इतना संक्षिप्त नहीं है। पूरे विस्तार में तो जाना सम्भव नहीं, किन्तु थोड़ा और लिखे बिना तो उस महर्षि के साथ न्याय नहीं हो पायेगा। पिता के शाप को स्वीकार करके अष्टावक्र ने एक टेढ़े-मेढ़े शिशु के रूप में जन्म ले लिया। परन्तु उनके जन्म लेने के पूर्व ही उनके पिता राजा जनक की सभा में पंडितों से शास्त्रार्थ में हारने के परिणामस्वरूप जल में डुबो दिए गए थे, अतः शिशु अष्टावक्र ने जन्म के बाद अपने पिता को नहीं देखा था। कालांतर में जब वे कुछ बड़े हुए तब उन्हें पता चला कि धन-प्राप्ति की इच्छा से कहोड मुनि जनक के दरबार में गए थे जहां बन्दी नामक पंडित ने यह शर्त रखी थी कि शास्त्रार्थ के बाद जो हारेगा उसे जल में डुबो दिया जाएगा। अनेक पंडित उससे हार गए थे और उन्हें जल-समाधि दे दी गई थी। कहोड मुनि भी उन्हीं में से एक थे। अष्टावक्र ने निश्चय किया कि वे अपने पिता की पराजय का बदला लेंगे। उन्होंने यह नहीं कहा कि ''अच्छा हुआ मर गया, अपने किए का फल पा गया, वह बाप कहलाने लायक था भी नहीं। जो अपने पुत्र के जन्म के पूर्व ही उसे विकलांग होने का शाप दे दे, ऐसे निर्दयी को पिता क्यों माना जाये?'' आजकल का कोई 'जीनियस' होता तो जनक के दरबारी पंडित को टेलेक्स भेजता और कहता, ''वेल इन, दि रैस्कल डिजर्व्ड इट'' (अच्छा किया, वह शैतान कहोड इसी काबिल था), पर बालक अष्टावक्र के जीवन-मूल्य इससे भिन्न थे, अतः उसने पिता के अपमान का हिसाब चुकता करने का ही विचार किया।

जनक के दरबार में जाने का निर्णय तो कर लिया, परन्तु वहां पहुंचे कैसे? विरूप शरीर, छोटी वय, कौन जाने देगा पंडितों से भरी उस सभा में! जनक जैसे राजा की सभा कोई मामूली जगह तो है नहीं। लेकिन दृढ़-निश्चयी अष्टावक्र जा ही तो पहुंचे वहा। द्वारपाल राकते रह गए, पर उनके तेज से हतप्रभ होते चले गए और अन्ततोगत्वा जनक से उनका साक्षात्कार हो ही गया। राजा जनक ने अष्टावक्र का अभिप्राय सुनकर उन्हें बहुत समझाया कि बन्दी से शास्त्रार्थ करना वृथा है, उसे अभी

तक कोई हरा नहीं सका है। किन्तु अष्टावक्र ने उत्तर दिया, ''यह सब वृत्तांत जानकर ही तो यहां आया हूँ। मैं यहां 'अद्वैत ब्रह्म' की चर्चा करने आया हूं-*ब्रह्मद्वैतं कथयितुमागतोऽस्मि।* बुलाइए उन पंडितराज बन्दी को, आज मैं उनकी बोलती बंद कर दूंगा। उनसे मिलकर उनका तेज उसी तरह हरण कर लूंगा जैसे सूर्य तारामंडल को निष्प्रभ कर देता है।'' यह सुनकर जनक ने सोचा कि यह बालक तो बड़ा अभिमानी प्रतीत होता है। तब उन्होंने स्वयं अष्टावक्र की परीक्षा ली और जान लिया कि शरीर से टेढ़ा-मेढ़ा यह बालक तो विद्वता की खान है और उन्हें कहना पड़ा-''*न ते तुल्यो विद्यते वाक्प्रलापे, तस्माद् द्वारं विरराम्येव बन्दी*''-वाद-विवाद करने में आपके तुल्य कोई नहीं है, अतः आपको मण्डप में जाने के लिए द्वार देता हूं। जाइए, बन्दी से मिलिए।'' और अष्टावक्र का बन्दी से शास्त्रार्थ निश्चित हो गया।

कहते हैं कि जब अष्टावक्र ने पंडितों की उस सभा में प्रवेश किया तब उनके शरीर की कुरूपता को देखकर वे सब हंसने लगे। इस पर अष्टावक्र ने जनक से कहा, ''महाराज! मैं तो पंडितों से अद्वैत ब्रह्म की चर्चा करने आया था, पर यह सब तो मात्र चर्मान्वेषी हैं। इन्हें केवल चमड़े की पहचान है, उनके आगे इन्हें कुछ पता नहीं है, तभी तो यह महानुभाव मेरी चमड़ी देखकर हंस रहे हैं। महाराज जनक, आपके दरबार में यदि पंडित हो तो उन्हें बुलाइए, इन चमड़े के सौदागरों से क्या शास्त्रार्थ करूं?'' सब सन्न रह गए, बालक अष्टावक्र से यह कटु सत्य सुनकर। भान करा दिया उस काली चमड़ी वाले लूले-लंगड़े बालक ने कि मनुष्य केवल शरीर ही नहीं है, बाहरी शरीर को देखकर किसी को तिरस्कृत मत करो और यह भी समझा दिया उसने उन ज्ञानोन्मत्त पंडितों को कि इस शरीर को धारण करने वाला 'आत्मा' सबमें एक-जैसा है। शास्त्रार्थ हुआ और चकित रह गए सारे पंडित, जब अष्टावक्र ने उस सभी को पराजित कर दिया, पंडितराज बन्दी को भी! हां, उस दिन जनक के यज्ञ-मण्डप में उस बन्दी ने, जिसने अगणित विद्वानों को पराजित कर जल में डुबो दिया था, अष्टावक्र से हार मान ली। और फिर अष्टावक्र ने राजा जनक से कहा, ''महाराज! आज तक इस बन्दी ने बहुत से विद्वानों को पराजित करके जल-समाधि दी है, अब इसकी बारी है-'*अप्सु निमज्जयेनम्*- इसे जल में डुबो दीजिए।''

जनक के सामने और कोई चारा नहीं था। बोले, ''हां, लो, यह है बंदी। अष्टावक्र! तुम्हारा इस पर पूर्ण अधिकार है, जो चाहे सो करो।'' बंदी ने कहा, ''मुझे जल में डूबने का कोई भय नहीं, क्योंकि मैं तो वरूण का पुत्र हूं और अपने पिता के राज्य में हो रहे यज्ञ के लिए यहां से विद्वान पंडितों को भेज रहा था। शास्त्रार्थ में पराजित करना और जल में डुबो देना तो एक नहाना मात्र था विद्वानों को वहां भेजने का। अब मेरे पिता का यज्ञ समाप्ति पर है, सभी ऋषि-मुनि वहां से लौट रहे हैं। अष्टावक्र! वह देखों, बहुत दिनों से गायब तुम्हारे पिता कहोड मुनि इसी समय लौट रहे हैं।'' तब न केवल कहोड मुनि बल्कि वे, सभी विद्वान जिन्हें बन्दी द्वारा जल में डुबोकर वरूण लोक भेजा

 ISSN 0976-0849

गया था, वापस लौट आए। उन सभी ने अष्टावक्र की पूजा की, और जिस पिता ने उन्हें शाप दिया था, उसी ने कहा, ''हे पुत्र, तुमने मेरा ही नहीं, इन सबका उद्धार किया है। मुझे क्षमा करो। चलो, समंगा नदी में स्नान कर लो, तुम्हारे अंग-प्रत्यंग ठीक हो जाएंगे।'' वेदव्यास जी ने यही लिखा है कि उसके बाद अष्टावक्र के सभी अंग सीधे हो गए, उनकी विकलांगता नष्ट हो गई।

तो ऐसा था अष्टावक्र! निर्भीक, तेजस्वी, सत्यचेता एवं ब्रह्मवेत्ता, विद्या और विनय से मंडित, शास्त्रों का पंडित, निष्कलुष एवं निर्मल ज्ञान का आराधक तथा जीवन-मूल्यों का साधक। विकलांगता का अभिशाप लेकर आया था पृथ्वी पर, किन्तु लौटा समांगता का वरदान बनकर। कहा था उसने, *''ज्ञान की पीयूषधारा पारदर्शी रहेगी, स्वच्छ रहेगी, उसे गंदा करने का अधिकार किसी को नहीं। मिथ्या ज्ञान का प्रसार मैं किसी को नहीं करने दूंगा। अपने पिता को भी नहीं।'' कितना कुछ सहन किया था उस तपस्वी ने! पर, कैसा वज्र संकल्पवान था अष्टावक्र! विकलांगता जैसी घोर यंत्रणा भी उसे हतोत्साहित कर नहीं पायी थी। और चुनौती दी थी फक्कड़ अष्टावक्र ने अपार सम्पदा के स्वामी वरूण के पुत्र को। कहा था, ''लौटाओ मेरे देश के उस पांडित्य को, जिसे तुमने अपने पिता की सेवा में भेज दिया है, अन्यथा तैयार हो जाओ डूब मरने के लिए। राष्ट्र की मेधा पराधीन हो जाए, प्रतिभा पलायन कर जाए, और वह भी मेरे रहते, असंभव!'' कौन सुनाएगा मेरे देशवासियों को अष्टावक्र का यह पावन चरित्र? कैसे जानेंगे आज के छात्र इस उपाख्यान को? नयी शिक्षा नीति में तोक इस सबका उल्लेख भी कहीं नहीं है। उसके लेखकों को तो शायद हर जिले में एक दून स्कूल खोलकर पश्चिम के उच्छिष्ट को प्रसाद बनाकर बांटने से ही फुरसत नहीं है।*

मैं जब-जब अष्टावक्र का उपाख्यान पढ़ता हूं, तब-तब मेरे मस्तिष्क में यह विचार कौंध उठता है कि स्थापित सत्ताओं की प्रकृति में आज तक कोई परिवर्तन दिखायी नहीं दिया है। वे अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए ज्ञान के प्रसार के समस्त अभिकरणों को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती है और यहां तक कि वे ज्ञान के साथ बलात्कार करने में भी नहीं हिचकतीं। और अगर कोई इस षड्यंत्र को पहचान कर विरोध का स्वर मुखरित करते हुए कहता है-*'नेदं सम्यगिवोपवर्तते'* - यह ठीक नहीं है, तब उसके लिए उत्तर है-*'तस्माद् वक्रो भवितास्यष्ट कृत्वः'*- जाओ, विकलांग बनकर घिसटते रहो। जो लोग व्यवस्थाओं पर अधिकार जमाए बैठे हैं, वे कहते हैं, ''या तो सुविध भोगी बनकर वही सीखो, जा हम पढ़ा रहे है, या फिर विरूप, विकलांग बनकर भीख मांगो!'' कैसे समझाऊं अपने देश के बुद्धिजीवियों को आजकल का यह गोरखधंधा कि जिसमें बहुत से लोगों को स्वस्थ एवं सामान्य शरीर धारण करने की कीमत मानसिक विकलांगता स्वीकार करके चुकानी पड़ती है। कभी-कभी तो मनुष्य का शरीर और मन दोनों ही असहाय बना दिये जाते हैं। और सबसे अधिक आश्चर्य तो यह है कि वह सब कुछ होता है ज्ञान और विज्ञान की आड़ में आधुनिकीकरण के नाम पर।

सुकरात एवं ईसा की कहानी तो सब जानते हैं, दोहराने से क्या फायदा! पर गैलीलियों के बारे में शायद कुछ लिखना जरूरी है। गैलीलियों गैलिली सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में एक इतालवी खगोलशास्त्री था। वह यूरोप का प्रथम वैज्ञानिक था जिसने टेलिस्कोप का प्रयोग ग्रह-नक्षत्रों के अध्ययन के लिए किया था। गैलीलियों के जन्म से इक्कीस वर्ष पूर्व पोलैंड के खगोलविद् मिकोलाई कोपरनीक, जिनका लैटिन उच्चारण निकोलस कोपरनिकस अधिक लोकप्रिय है, का एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ था, जिसमें किसी यूरोपीय विद्वान ने सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया था कि पृथ्वी आदि ग्रह सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाते हैं। स्पष्ट ही यह अभिमत बाइबिल के विरूद्ध था। पर यह ग्रंथ लिखा गया था लैटिन भाषा में और उन दिनों अधिकांश कैथोलिक लैटिन नहीं पढ़ा करते थे, अत: काफी दिनों तक इस ग्रंथ की ओर उनका ध्यान नहीं गया। लेकिन जब मार्टिन लूथर के कैथोलिक अनुयायियों ने इस ग्रंथ का प्रबल विरोधा करना शुरू किया तब चर्च ने इस पुस्तक को धर्म-विरोधी निषिद्ध साहितय बताकर प्रतिबंधित कर दिया। गैलीलियों ने जब टेलिस्कोप की सहायता से ग्रगहों की गति का सूक्ष्म अध्ययन किया तो उसने कोपरनिकस का समर्थन कर दिया। उन दिनों यूरोप के अनेक देशों में चर्च ही स्थापित व्यवस्था का सर्वोच्च प्रतीक था। वही राजा था, वही धर्म था, वही ज्ञान था, वही विज्ञान था, वही गुरू था और वही था शिक्षक। उसकी स्थापनाओं में दोष-दर्शन कैसे सहन किया जा सकता था? अष्टावक्र की ही भाँति गैलीलियों ने भी कहा था, ''चर्च द्वारा पढ़ाया जा रहा खगोल ठीक नहीं है-'*नेदं सम्यगिवोपवर्तते*' और चर्च ने उसे अपराधी घोषित कर दिया। चर्च ने बीमार गैलीलियों को चेतावनी दी-''अपनी स्थापनाएं वापस लो, उनकी स्वयं ही निंदा करो या फिर अपाहिज बनने को तैयार हो जाओ।'' इतिहास साक्षी है कि सत्य-शोधक वैज्ञानिक गैलीलियों को घर में ही नजरबंद रखकर विकलांगता भोगने को विवश किया था चर्च ने।

सत्य और ज्ञान का गला घोंटने की यह गाथा गैलीलियों पर ही समाप्त नहीं होती। सत्ता के उच्चतम सोपान के अधिष्ठाता अपने अस्तित्व के औचित्य को सिद्ध करने के लिए प्राय: असत्य को सत्य और अज्ञान को ही ज्ञान के रूप में प्रचारित करते पाए गए हैं। जब कोई उनके पाखंड को भांप लेता है तब पहले तो उसे सुविधाएं देकर लुभाने की और अगर वह अपनी हठ न छोडते तो उसे अपंग बनाने का भय दिखाकर रास्ते पर लाने की कोशिश करते आ रहे हैं ये लोग। दुनिया ने क्रान्ति की वेगवती धाराओं द्वारा निहित स्वार्थों की नींव पर खड़े कई राजमहल ध्वस्त होते देखे हैं और देखे हैं बहुतेरे क्रान्तिवीर, जो उन्हीं धाराओं की उत्तल तरंगों के शीर्श पर आरूढ़ होकर सत्ता के शिखरपीठ पर आसीन हुए और फिर नयी व्यवस्था के लिए निहित स्वार्थों के बंदी बनकर रह गए। इसी इतिहास-बोध को मुखरित करने वाले मिलोविन जिलास को वर्षो तक जेल में सड़ते भी हमने देखा है और अनुभव किया है बोरिस पास्तरनाक की पीड़ा को, समझा है सोल्झेनित्सिन की वेदना को और सखारोव दम्पति द्वारा भोगी जा रही यातनाओं को। सुनेंगे आप सखारोव और उसकी पत्नी की

 ISSN 0976-0849

यंत्रणा? भौतिकी के अनुसंधानों के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त रूसी वैज्ञानिक आंद्रे सखारोव और उसकी पत्नी को वर्षों तक नजरबंद रखा गया। सखारोव को पुरस्कार लेने भी रूस के बाहर नहीं जाने दिया गया, और उसकी पत्नी को प्राणघातक, गंभीर हृदयरोग के होते हुए भी, इच्छानुसार इलाज की भी इजाजत नहीं दी गई। दोनों को सदा पुलिस के पहरे में फ्लैट में बंद रखा गया। बाहरी दुनिया से सम्पर्क की कोई अनुमति नहीं, कोई चिट्ठी भी नहीं, अखबार भी नहीं। बस पड़े रहो बर्फ से ढंके उस एकान्त कस्बे में। बनाकर रख दिया न अपाहिज, क्योंकि सखारोव अष्टावक्र की ही भांति यह कहने का साहस कर सके थे-''नेदं सम्यगिवोपवर्तते''- वे कर चुके थे रूसी नीतियों की खुलकर आलोचना। निःशस्त्रीकरण और नाभिकीय शस्त्रें सम्बन्धी रूसी नीतियों की निष्पक्ष समीक्षा। विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मांग की थी सखारोव ने, बदले में मिला उन्हें एकान्तबंदीवास।

हमने उन व्यवस्थाओं को भी देखा है जो दुनिया में मानव अधिकारों और जनतंत्र की दुहाई देते नहीं थकतीं, पर अपने घर में करोड़ों काली चमड़ी वालों को नारकीय जीवन व्यतीत करवाने में तनिक भी नहीं सकुचाती और न ही कोई शर्म आती है उन्हें दुनिया क बर्बर तानाशाहों का खुलेआम समर्थन करने में। जानते नहीं क्या कि अमेरिका में नीग्रो लोगों के साथ क्या बर्ताव होता है, और दक्षिण अफ्रीका में इंग्लैंड क्या करवा रहा है? नेल्सन मंडेला ने भी तो यही कहा था कि ''ये गोरी चमड़ी वाले आदमी को आदमी नहीं समझते, उसे दुत्कारते हैं। ये चमड़े के सौदागर हैं। मैं इनसे बहस करने को तैयार हूं और इन्हें इन्सानियत का पाठ पढ़ाने को भी तैयार हूं। (अष्टावक्र की भांति) मैं इन्हें पराजित कर दूंगा।'' किन्तु न्यस्त स्वार्थी व्यवस्था के भयभीत, कापुरूष पक्षधरों में सत्य का तेज सहन करने की शक्ति कहां? उन्होंने तो मंडेला को जेल में ठूंस दिया। अमेरिका वियतनाम में और अल साल्वाडोर में किन मानव-अधिकारों का संरक्षण करता रहा और रूस ने हंगरी, चैकोस्लोवाकिया, पोलैंड और अफगानिस्तान में किस शोषण के विरोध में टैंक और फौजें भेजी? इंग्लैंड ने फाकलैंड द्वीप में क्या किया और आयरलैंड में चलता आ रहा संघर्ष किस बात का द्योतक है? केवल एक बात का, और वह यह है कि निहित स्वार्थी व्यवस्था छल, बल और कौशल से झूठ को सच और अज्ञान को ज्ञान बताना चाह रही है। और जो कोई उनको टोकता है, सच बोलने का साहस दिखाना चाहता है, उसे अपाहिज बना दिया जाता है। आदमी ही नहीं, देश, देशों का इतिहास, भूगोल, राष्ट्रों का जीवन सब-कुछ टेढ़ा-मेढ़ा कर दिया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे इस प्रपंच के दुष्चक्र में हमारा देश भी फंसाया जा रहा है। ऐसा नहीं है कि पहली बार ही विदेशियों की गृद्ध दृष्टि भारत पर पड़ी है। सच तो यह है कि ईसा की कई शताब्दी पूर्व से इस देश पर जो आक्रमण प्रारंभ हुए वे आज तक कभी बंद नहीं हुए। भारत की भौतिक सम्पन्नता, आध्यात्मिक समृद्धि, नैसर्गिक सुन्दरता, विशला एवं अत्याधिक उर्वर भूमिखंड अद्वितीय ऋतुचक्र और यहां प्रस्फुटित ऋतंभरा प्रज्ञा ने अनेक साम्राज्य-पिपासुओं को विधाता की

सृष्टि के इस अनुपम रत्न पर अधिकार करने के लिए ललचाया है। पारसी, यूनानी, शक, हूण, कुषण, तुर्क, मंगोल, अफगान, मुगल, डच पुर्तगाली फ्रांसीसी-अंग्रेज सभी ने तो यहां अपने उपनिवेश बनाने का यत्न किया है।

पिछले दो-तीन हजार वर्षों का इतिहास साक्षी है कि कैसे भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर दुर्दान्त, दिग्विजयी आक्रांता आए और कैसे वे लौटा दिए गए। कैसे सिंध, पंजाब एवं कश्मीर में अड्डा जमाने वाले विदेशी क्षत्रप अंततोगत्वा भारतीय जीवन में घुल-मिल गए। कैसे बहुत सी अक्खड़ और फक्कड़ जातियां यहां दहाड़ती हुई आयीं और भारतीय संस्कृति की ऊर्जस्वी भागीरथी के वेगवान प्रवाह ने उनके कोने घिस-घिसकर उन्हें शालिग्राम बना दिया। कैसे यूनानी मिनोन्डर स्यालकोर्ट का मिलिन्द बन गया और मिलिन्द प्रश्न के रूप में उसकी तात्त्विक जिज्ञासा बौद्ध साहित्य का अद्‌भुत अलंकार बन गई और कैसे हेलियोडोरस ने भागवत धर्म स्वीकार किया। सारी दुनिया जानती है कि ईसा के आविर्भाव के बहुत पहले ही इतना सब घटित हो चुका था पर उन दिनों भारतीय समाज की पाचनशक्ति तीव्र थी। भारतीय सांस्कृतिक जीवन में अनेक तत्वों को आत्मसात कर सकने की अद्‌भुत क्षमता थी उन दिनों, इसीलिए वह इन सब विजातीय द्रव्यों से भी पोषण ग्रहण कर सका। भारत के उत्तर-पश्चिम में आज भी इस सांस्कृतिक प्रक्रिया के चिन्ह विद्यमान हैं। देश के भीतर भी ईसा से कई शताब्दियों पहले जब धर्माचार्यों ने, मठाधीशों ने कर्मकाण्ड को ही धर्म बताना शुरू किया था और धर्म को निहित स्वार्थों की पूर्ति का साधन बनाने की चेष्टा की थी तब प्रगटे थे महावीर और बुद्ध जिन्होंने अष्टावक्र की ही तेजस्विता प्रदर्शित की थी। कह दिया था इन दोनों ने, ''अधर्म को धर्म बताने की चेष्टा मत करो।'' और कहा था इन्होंने, ''ओ धर्मोपदेशको! तुम्हारा बताया मार्ग सम्यक नहीं है-नेदं सम्यगिवोपवर्तते- पाखंड को धर्म बताने का दुष्कर्म मत करो। आओ, धर्म की सम्यक व्याख्या सुने। हम दिखा रहे हैं तुम्हें अहिंसा और शांति का सम्यक् मार्ग। ईसा के पहुत पहले भी यदि किसी ने, चाहे वह पराया हो या अपना, भारतीय चेतना को पंगु बनाकर जड़ीभूत करने की चेष्टा की, तत्त्व को केवल नाम और रूप से ही व्याख्यायित करने का यत्न किया तो देश की मनीषा ने उसे सहन नहीं किया, और अष्टावक्र जैसे विद्रोहियों को उत्पन्न कर दिया। लेकिन यह सब तो आज से इक्कीस सौ वर्ष से पहले की घटनाएं हैं और आप तो आने वाली इक्कीसवीं सदी के मादक स्वप्न देखने में तल्लीन हैं। ऐसे में तो यह सब बातें आपको 'बोर' कर रही होंगे। आजकल लोगों ने ऊबना बंद कर दिया हे, अब वे 'बोर' जो होने लगे हैं। ऊबना तो दकिया- नूसी है और 'बोर' होना है आधुनिक। जी हां, 'माड'। तो आप ऊबें नहीं, इसलिए लम्बी चर्चा नहीं करता।

अशोक और मौर्य साम्राज्य के बारे में क्या लिखूं? उनके बारे में तो बहुत कुछ पता है आप सबको और पता है गुप्त साम्राज्य के बारे में भी। यह सब भारत के वैभव के दिन थे। चतुर्दिक यश

 ISSN 0976-0849

के दिन थे। तब हम थे संस्कृति के संदेशवाहक और कहलाते थे जगद्गुरू। ज्ञान, विज्ञान, साहित्य स्थापत्य कला-कौशल, कृषि, व्यापार-सभी में अगणी थे हम लोग। भारत उन शताब्दियों में श्रीसम्पन्न भी था और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध भी। न केवल गुप्त साम्राज्य बल्कि महाकौशल, वाकाटक, पल्लव, चोल, चेर, पांड्य शक्तियां भी भारतीय जीवन को समृद्ध बना रही थीं इस बीच हूण आए, पराजित हुए और लौट गए। कालक्रम से गुप्त साम्राज्य में जर्जरता आयी तो आधी शताब्दी तक राजनीतिक शक्तियां आपस में टकराने लगीं। तब उदित हुआ हर्ष जैसा पराक्रमी। सातवीं शताब्दी के मध्य तक हर्ष भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर जाज्वल्यमान नक्षत्र की भांति प्रकाशमान रहा और तब तक किसी विदेशी की हिम्मत भारत पर आक्रमण करने की नहीं हुई। भारत उन दिनों तक विश्व को अजेय शक्ति माना जाता रहा है। यहां तक कि उन अरब विजेताओं ने, जिन्होंने हजरत मुहम्मद साहब के देहान्त के पचास वर्षों में आधे विश्व पर अधिकार कर लिया था और गोबी के मरूस्थल से अटलांटिक महासागर तक इसलाम की ध्वजा फहरा दी थी, भारत की तरफ मुंह नहीं मोड़ा। ऐसी थी उन दिनों भारत के पराक्रम की प्रतिष्ठा। यही वे दिन थे जब हमें लाग सोने की चिड़िया समझते थे और हाथ मलते रहते थे हमारी सम्पदा देखकर। सोचते थे कि कब भारत की शक्ति क्षीण हो और कब झपट्टा मारकर इसे नोंच-खसोट डालें।

न जाने क्या हुआ कि सातवीं शती में सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद, भारत के उत्तरी भाग में राजनीतिक शक्ति का केन्द्रबिन्दु भर ही नहीं सका। हर्ष का साम्राज्य बिखर गया और बिखर गई भारत की सैन्य शक्ति। उत्तरी-पश्चिमी सीमाएं शनैः-शनैः असुरक्षित होती चली गई और देश में छोटे-छोटे राजे-रजवाड़े अपनी अहम्मन्यता के शिकार परस्पर ईर्ष्या, द्वेष एवं षड्यंत्रों से ग्रस्त होकर पनपने लगे। तब नवीं शताब्दी तक भारत लगभग सुरक्षित ही रहा। फिर हुए गजनी के महमूद के आक्रमण और उसने भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा व्यवस्था तहस-नहस कर डाली। महमूद गजनवी से मुहम्मद गौरी तक लूट और विनाश का ऐसा तांडव मचा कि उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना मुश्किल है। उन्हीं दिनों मथुरा लुटी, सोमनाथ टूटा और लुटा और टूटे हजारों पूजा-स्थल। महमूद गजनी द्वारा मथुरा की लूट का वर्णन करते हुए विल ड्यूरां ने अपनी पुस्तक 'दि स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन' में लिखा है, "At Mathura, he took upon the temple, its statues of gold, silver and jewellery; he expressed his admiration for the architecture of the great shrine, judged that its duplication would cost one hundred million dinars and the labour of two hundred years and then ordered it to be soaked in naphtha and burnt to the grounds. -मथुरा में उसने मन्दिर, उसकी सोने की मूर्तियां, चांदी और आभूषण लूटे, उसने मन्दिर के महान वास्तु-शिल्प की प्रशंसा की, विचार किया कि ऐसा ही दूसरा मंदिर बनवाने में दस करोड़ दीनारे और दो सौ वर्ष लगेंगे और फिर उसने मन्दिर को आग लगाकर भूमिसात करने का आदेश दिया।''

इस कदर लूटा महमूद गजनवी ने भारत को कि वह विश्व का सर्वाधिक धनी राजा बन गया।

लूटपाट का यह सिलसिला बहुत दिनों तक चलता ही रहा। कभी मुहम्मद गोरी ने लूटा, कभी तैमूर लंग ने, तो कीाी नादिरशाह ने। मयूर सिंहासन, कोहनूर हीरा, और भी न जाने कितने बहुमूल्य मणिरत्न, सुवर्ण-रजत भंडार लूट लिये एग। आपसी फूट की कितनी कीमत चुकानी पड़ी हमें। बारहवीं शताब्दी में कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंपी गई दिल्ली की सल्तनत और फिर सोलहवीं शती के प्रारम्भ से अठारह सौ सत्तवन तक दिल्ली पर कमोवेश अधिकार रहा मुगल वंश का। पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी के माध्यम से और बाद में दिल्ली पर अधिकार करके अंग्रे ने क्या कुछ दिया, उसे भी बताऊंगा, पर थोड़ा ठहरकर। पुरानी बातों का सिलसिला अब खत्म ही करने वाला हूं। भारत पर गजनी के महमूद से बाबर तक की विजय के बारे में विल ड्यूरां ने जो लिखा है उसे बताए बगैर तो बात अधूरी ही रह जायेगी। तो सुनिए, उसने क्या लिखा है? वह कहता है, "It is sa discouraging tale, for its evident morral is that civilisation is sa precarjous thing, whose delicate complex of order and liberty, culture and peace, may at anytime be overthrown by barbarians invading from without and multiplying from within."

अर्थात् यह हताशा भरी कहानी है क्योंकि यह इस सन्देश की साक्षी है कि सभ्यता एक अस्थायी वस्तु है जिसकी व्यवस्था, स्वतंत्रता, संस्कृति और शान्ति का नाजुक ताना-बाना कभी भी बाहरी बर्बर आक्रान्ताओं और भीतरी शत्रुओं के प्रहार से ध्वस्त किया जा सकता है। और फिर भारतवासियों को चेतावनी देता है कि 'The bitter lesson is the price of civilisation. A nation must love peace but keep its powder dry."

अर्थात् जो शिक्षा हमें मिलती है वह है सभ्यता की कीमत के बारे में। किसी देश को शान्ति से प्रेमपूर्वक तो रहना चाहिए परन्तु अपने हथयारों को भी तैयार रखना चाहिए।

भारत के लोगों ने तो शायद सोचा था कि बारूद के ऐर पर बैठकर शांति का विचार कैसे आ सकता है। हम तो कहते रहे हैं कि 'शान्तिरेव शान्ति' शांति भी शांत रहे। शांति-स्थापना की अशांति को भी हमने कभी उचित नहीं माना। लेकिन बर्बर, असभ्य हिंसक और निहित स्वार्थों में लीन लोगों से बचे रहने का प्रबन्धा रखना भी तो जरूरी है। दोनों में संतुलन रखे वगैर संस्कृति की रक्षा करना आज के युग में सम्भव नहीं।

थोड़ा धैर्य और धारण कीजिए। उनसवीं और बीसवीं शताब्दी की चर्चा के पूर्व एक-दो महत्वपूर्ण बातें और याद दिला दूं, भले ही आप नाराज होकर मुझे मारने ही क्यों न लगे! उन दो-चार घटनाओं का उल्लेख करने का लोभ तो हरगिज संवरण नहीं कर पा रहा हूं। जब विश्व में इस्लाम का प्रसार हो रहा था तो उसी समय के आसपास भारत में शंकराचार्य भी साधनारत थे। पता नहीं कैसे उस मनीषी को यह आभास हो गया कि दुर्बल राजशक्ति इस देश की एकात्मता का संरक्षण नहीं कर सकेगी तो उसने सांस्कृतिक चेतना की अलख जगाई। एक ओर तो दार्शनिक स्तर पर

उपनिषदों की स्थापनाओं की युगानुकूल व्याख्याएं दीं तथा भारत की मूल चिंताधारा के प्रवाह के अवरोधों को दूर किया, दूसरी ओर चारों दिशाओं में चारो धाम और शक्तिपीठों का पुनर्जागण भी कर दिखाया। शंकर स्वामी ने ठीक अष्टावक्र की ही भांति कहा था, 'नेदं सम्यगिवोपवर्तते'। ह्रासमान व्यवस्थाओं के धार्मिक मठाधीश बने बैठे थे लोग निहित स्वार्थों के पोषण के एिल मतिभ्रम फैला रहे हें, वह ठीक नहीं है। आओ, शास्त्रार्थ करें। आओ, समझे *'सर्वमिदं खलु ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'तत्वमसि'।* कठमुल्लावाद के विरूद्ध शंकर डटकर खड़ा हो गया। उसने कहा, ''वह देखे, वटवृक्ष के नीचे अद्‌भुत आश्चर्य! वहां नौजवान गुरू वयोवृद्ध शिष्यों को मौन उपदेश दे रहा है।'' शंकर ने एक वाक्य में ही समझा दिया कि ज्ञान के क्षेत्र में आयु का महत्व नहीं है, महत्व है ज्ञान की पकड़ का, अनुभूति की तीव्रता का, सत्य के साक्षात्कार का। उसने आवाहन किया सत्य की साध ना का, भारतीय मनीषा के नवजागरण का। जानते हैं, इसका परिणाम क्या हुआ? देश में सांस्कृतिक चेतना की ऐसी पीयूषधाराएं प्रवाहित होने लगी कि जिनके रस से परिपुष्ट होकर भारतीय मनीषा उस झंझावात के समक्ष भी जीवित रह सकी, जिसने एशिया और यूरोप की प्राचीनतम संस्कृतियों का विध्वंस कर दिया था, जिसने पुस्तकों को जलाकर उनकी आंच में हम्माम गरम किए थे। इसी सांस्कृतिक प्रवाह से उपजे थे अनेक आचार्य संत और भक्त जिन्होंने भारत की पहचान निरन्तर बनाए रखी। गिनती करना सम्भव नहीं, देश का कोई कोना, कोई भाषा, कोई क्षेत्र, कोई वर्ण नहीं बचा, जिसमें भारतीय संस्कृति की ऊर्जा प्रस्फुटित न हुई हो। भारत में जब मुस्लिम शासक आए और यहां रहे, तब जो वैचारिक आदान-प्रदान हुए उनका परिणाम आज भी दिखाई देता है। इसी विचार-मंथन में से जन्मे थे सूफी संत। सूफी मत तो शंकर के वेदान्त और इस्लाम के सम्मिश्रण के ही परिणाम है। सूफियों ने सिखाया दुनिया को वहाद-अल-वजूद-*एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति!* उन्होंने बताया कि विश्वात्मा तो एक है। सृष्टि उसी का विविध रूपों में प्रकटीकरण है और इसी अन हल-हक का ज्ञान सत्य का ज्ञान है। इसी सिद्धान्त पर मंसूर फांसी पर चढ़ गया था। जब उसे फांसी पर चढ़ाया जा रहा था तब भी उसने कहा था- 'अन-हल-हक *-अहं ब्रह्मास्मि'* और यही कहते-कहते वह ब्रह्म में लीन हो गया।

कैसे समझाऊं आज शंकराचार्य की दूरदृष्टि का महत्व। न जाने कैसे समझ लिया था उस ऋषि ने कि यदि भारत की धन-सम्पत्ति लूट गई तो शायद पुनः अर्जित हो सकती है, पर सांस्कृतिक सम्पदा नष्ट हो गई तो भारत नष्ट ही जायेगा। भारत की मनीषा को विनाश से बचा लिया शंकराचार्य ने। अष्टावक्र ने यही तो कहा था, शारीरिक विकलांगता से अधिक घातक है मानसिक विकलांगता। आत्मबोधकारी ज्ञान, इतिहास का स्वच्छ, पारदर्शी, सम्यक बोध राष्ट्रों की चेतना का उत्स है, मूल स्रोत है। इस बात को कलुषित मत होने दो, इसकी रक्षा के लिए जो कुछ करणीय है, सब करो। इसी दृष्टि का परिणाम है कि भारतीय सांस्कृतिक प्रवाह की भागीरथी ने पारसीक, ग्रीक, हूण, तुर्क, अफगान, मंगोल जैसे जातियों को, अनेक दर्शनों, मसीहाओं और पैगम्बरों को सारस्वत दर्शन को

आत्मसात किया और विश्व संस्कृति के महासमुद्र को अपने अमृतजल से परिपूर्ण कर दिया। इतिहास साक्षी है कि अठारह सौ सत्तावन तक भारत का मानस पराभूत नहीं हुआ था। ज्ञान-सूर्य भले ही न तप रहा हो, पर ज्ञानद्वीप तो अवश्य जल रहा था।

फिर आया अंग्रेजी शासन। अठारह सौ सत्तावन का स्वतंत्रता संग्राम हम हार गए। दिल्ली पर अधिकार हुआ फिरंगी का। देश जा पड़ा शोषण के भयंकर शिकंजे में। सच तो यह है कि अंग्रेजों द्वारा शोषण की प्रक्रिया उसके भी सौ साल पहले से चल रही थी। वह सब जानना बहुत ही आवश्यक है। देशवासियों से अनुरोध है कि उस सब घटनाचक्र को पूरी गहराई से समझ लें। उसी में छिपे हैं इक्कीसवीं सदी में एक विशेष ढंग से ढकेले जाने के बीज।

सन् १६०० में बनाई गई थी एक कम्पनी, एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल में। उसका पूरा नाम था 'द गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑन मर्चेन्ट्स ऑव लण्डन ट्रेडिंग विद द ईस्ट इन्डीज', संक्षेप में ईस्ट इंडिया कम्पनी। इस कम्पनी के विस्तार के लम्बे इतिहास को जरूर पढ़ना चाहिए, पर आज नहीं। वह हो जायेगा विषयांतर और लेख बन जायेगा पूरी पुस्तक। पर यह जरूर याद रखना चाहिए कि डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी-सब देशों की व्यापारी संस्थाओं से टकराते, जूझते, चालाक ब्रिटिशों की कम्पनी धीरे-धीरे बड़े क्षेत्रों और फिर बड़े-बड़े नवाबी इलाकों के व्यापार और प्रशासन की स्वामिनी बन बैठी। सन् १६८२ तक इस कम्पनी के मुनाफे के हाल यह था कि एक शेयर पर पचास प्रतिशत मुनाफा और शत-प्रतिशत बोनस बंट रहा था और सन् १६८३ में इसका प्रति शेयर लाभ १०० पाउंड प्रतिशेयर से बढ़ाकर ३६० पाउंड प्रति शेयर घोषित किया गया था। यह सब लाभ और पूंजी की बढ़ोतरी मालामाल कर रही थी कम्पनी के अंग्रेज मालिकों को।

ईस्ट इंडिया कम्पनी बनी तो थी मुख्यतः मसालों के व्यापार के लिए, पर इसने देखा कि भारत से अन्य सामग्री का निर्यात करके तो और भी लाभ कमाया जा सकता है। इसने भारत से कपड़ा, दस्तकारी के सामान व अन्य तैयार माल खरीदकर इंग्लैंड में बेचना शुरू किया। कम्पनी का तो मुनाफा बढ़ गया मगर ब्रिटेन के शासकों ने देखा कि इंग्लैंड का धन खिंचकर भारत की तरफ जा रहा है। सच तो यह है कि सत्रहवीं शताब्दी में भी, दलित एवं पराधीन भारत विश्व के सर्वाधिक धनी देशों में था। पर हमें पढ़ाया गया है कि भार सदा से गरीबों का, साधुओं का और सांपों का देश रहा है। इंग्लैंड के शासकों ने जब देखा कि भारत की बनी वस्तुओं, विशेषकर कपड़ो के लिए जनता पागल हो जाती है और इस तरह ब्रिटिश फैक्टरियों के व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है तो उन्होंने एक तरफ तो भारतीय सामग्री के आयात पर भारी टैक्स लगाकर उसे आने से रोका, दूसरी तरफ ईस्ट इंडिया कम्पनी को आग्रह किया कि वह भारत से तैयार माल न खरीदे बल्कि कच्चा माल खरीदकर इंग्लैंड भेजे। लगभग सौ वर्षों तक प्रयत्नपूर्वक ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने ऐसी आर्थिक नीति का विकास किया कि जिससे भारत, इंग्लैंड के तैयार माल का बाजार बन जाए। अठारहवीं

 ISSN 0976-0849

शताब्दी के अंत तक ईस्ट इंडिया कम्पनी से व्यापारिक अधिकार इंग्लैंड की सरकार के पास चले गए और तब प्रारम्भ हुआ एक भयानक आर्थिक षड्यंत्र।

ढाका और मुर्शिदाबाद के बुनकरों के हाथ के अंगूठे काट डाले गए ताकि वे सुपरफाइन कपड़ा ही न बुन सकें। क्या यह मालूम है मेरे देशवासियों को कि इंग्लैंड की मिलें तब वैसा बारीक कपड़ा नहीं बुन सकती थीं जैसा हमारे बुनकर हाथ से तैयार करते थे। अंग्रेज ने अपनी मिल चलाने के लिए हमारे श्रमिकों के अंगूठे काटे थे। यह सुनकर क्या उनके अंगूठे वापस लाने की टीस पैदा नहीं होती मेरे देश के नौजवानों में? क्या इक्कीसवीं सदी में उनके हाथ-पांव के अंगूठे मिल पाएंगे वापस? एक घिनौना षड्यंत्र उन गोरी चमड़ी वालों ने चलाया था, जो आज भी जारी है, जिसमें फर्स्ट वर्ल्ड और सेकेण्ड वर्ल्ड के गोरे अधिपतियों को काले, पीले और भूरे थर्ड वर्ल्ड वासियों का रक्त चूसते रहने की आजादी मिली हुई है, क्या इक्कीसवीं सदी में भी यह सब चलता रहेगा?

पढ़ो मेरे देशवासियों, पढ़ो, अठारहवीं, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के ढाई सौ वर्षों के अंग्रेजी काले कारनामे। कैसे उन्होंने ध्वस्त किया हमारे उद्योगों को? कैसे नष्ट किया हमारी कृषि को? कैसे उजाड़ा हमारे स्वाधीन गांवों को? कैसे तोड़ी हमारी पंचायतें और कैसे सत्यानाश किया हमारी पाठशालाओं को? कैसे विकृत किया हमारे इतिहास और साहित्य को और कैसे बनाया हमें हीनभाव से ग्रस्त? बहुत चालाकी से उन्होंने हमारे मर्म पर आघात किया और हमारी मनीषा को खंडित करने का पूरा प्रपंच रचा- शिक्षा की नयी प्रणाली द्वारा। जानते थे इस बात को हमारे देश के स्वतंत्रता-संग्राम के अग्रदूत-चाफेकर बंधु, तिलक, सावरकर, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष और हुतात्मा क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद, अशफाकुल्लाह खां और भगत सिंह। इसीलिए तो ये लोग प्राणों को हथेली में रखकर भी भारत को मुक्ति दिलाना चाहते थे उस पाशवी शिकंजे से । समझते थे महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानंद भारतीय मनीषा को अपभ्रष्ट करने का मतलब। क्या तुम्हे फुरसत है यह सब जानने की? क्या नहीं जानते तुम कि पाखंड का विरोध करने के कारण दयानंद को क्यों जहर दिया गया था? उसने भी कहा था-*'नेदं सम्यगिवोपवर्तते।'* क्यों फांसी पर चढ़ाए गए थे असंख्य क्रांतिवीर? क्यों हुआ था अठारह सौ सत्तावन और क्यों हुआ था सन् बयालीस? क्यों देश की जवानी दीवानी होकर 'करो या मरो' के आवाहन पर मृत्यु के गान में जीवन की तान सुनने चल पड़ी थी, अपना सब कुछ छोड़कर? किसी को भी तो जल्दी नहीं थी तब इक्कीसवीं सदी में जाने की।

हां बस एक जल्दी थी, भारतभूमि को दासता से छुड़ाने की, उसे स्वाधीन कराने की, और उसे अपने प्राचीन परम वैभव तक पहुंचाने की, भारत की पहचान बनाए रखने की। अपने देश में अपना तंत्र स्थापित करने की जल्दी थी, और जल्दी थी भारत के निरीह श्रमिकों को उनके अंगूठे वापस कराने की। वे सब जानते थे कि प्लासी के युद्ध के बाद जिस विशाल औद्योगिक साम्राज्य का

निर्माण अंग्रेजों ने किया था, मानचेस्टर और लिवरपूल के जो दैत्याकार कारखाने उन्होंने स्थापित किए थे, उन सबकी नींव भारत के कृषकों, श्रमिकों, व्यापारियो-सबके खून से रखी गई थी।

वे यह भी जानते थे कि अगर अंग्रेजी शासन कुछ वर्ष और रह गया तो भारत की मनीषा भी पंगु हो जायेगी। तब भारत सदा के लिए नष्ट हो जायेगा। इसलिए जितनी जल्दी हो सके, जितना भी बलिदान देना पड़े, जितनी भी कीमत चुकानी पड़े, वे चुकाएंगे पर भारत की संस्कृति, भारत की आत्मा नष्ट होने से बचाएंगे। और अंग्रेज भी अच्छी तरह जानता था कि अगर भारत की मनीषा का ऊर्जस्वी स्रोत फूट निकला तब शोषण के सारे षड्यंत्र बेनकाब हो जायेंगे। इसीलिए उसने हर संभव प्रयत्न किया भारत की मनीषा को खंडित करने का और हर छल किया हमारी चिति को नष्ट करने का। उसने पढ़ाया हमें कि वेद गड़रियों के गीत हैं, भारत एक धर्मशाला है, यहां जो चाहे आए, राज करे और चला जाये। यह एक राष्ट्र नहीं है। यह अनेक उपराष्ट्रों का समूह है। इसका सारा ज्ञान ग्रीक दार्शनिकों की देन है। यहां की जलवायु बहुत ही खराब है, वह आदमी को आलसी और निकम्मा बना देती है। अंग्रेज ने आकर भारतवासियों को सभ्य बनाया अन्यथा यह तो ठगों का देश था और यहां अंधविश्वास, जादू-टोना, सांप-मदारी या संन्यासी... इसके सिवा कुछ नहीं है। पता नहीं आज के नवयुवकों को 'ह्वाइटमैन्स बर्डन' (White man's burdan) के सिद्धान्त को पढ़कर कुछ मन में होता है या नहीं, पर बहुतों का खून खौल उठता था यह बकवास भरा सिद्धान्त पढ़कर। हां, अंगेजों ने एक तरफ भारी गोलमाल किया हमारी शिक्षा प्रणाली में हमें ज्ञानगंगा की मूलधारा से काटने का प्रयत्न किया। ऐसा पाठ पढ़ा दिया हमें कि सारा इतिहास बोध ही बदल गया। दूसरी तरफ उसने हमारी अर्थव्यवस्था को जड़मूल से नष्ट कर दिया। पता नहीं, मेरे देशवासियों को याद है या नहीं कि बंगाल में अंग्रेजी शासन के सौ वर्षों में एक दर्जन भयानक दुर्भिक्ष पड़े थे। जिन्होंने १९४३ का दुर्दिन देखा है वे जानते हैं कि अंग्रेज ने कैसी चालाकी से बंगाल में अकाल पैदा करवाया था। हां, यह कहने में मुझे संकोच नहीं कि उन्नीसवीं शताब्दी में वे दुर्भिक्ष भारतीय किसान की कमर तोड़ने का एक अत्यंत घिनौना षडयंत्र था। भारत में अंग्रेजी राज के आर्थिक दुष्परिणामों को समझना बहुत आवश्यक है। जो लूट इन्होंने मचाई और अर्थव्यवस्था का जैसा विध्वंश इन्होंने किया, उसके सामने महमूद गजनवी और नादिरशाह सब फीकें पड़ गए। उन्होंने तो मंदिर तोड़े और लूटे पर इन्होंने तो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ तोड़ दी, हमारे परम्परागत उद्योग-धन्धे सब चौपट कर दिए, हमें उत्पादक राष्ट्र से उपभोक्ता बाजार बना दिया। भारत में बेरोजगारी इसलिए नहीं है कि भारतीय उद्योग धन्धे योजनापूर्वक नष्ट किए गए, लाखों कारीगर बेकार बना दिए गए। एक ही उदाहरण पर्याप्त है, भारत में फौलाद बनाने का काम व्यापक रूप से जिन भट्ठियों में होता था उन्हे इसलिए नष्ट किया गया क्योंकि उनका बना फौलाद सस्ता और बढ़िया होता था। हजारों कारीगर अकेले इसी उद्योग के बन्द होने से दरिद्र बना दिए गए। यह है रहस्य हमारी दरिद्रता और बेरोजगारी का।

 ISSN 0976-0849

हमें बताया जाता है कि और हम स्वीकार कर लेते है, क्योंकि वह विचारधारा अंग्रेजी भाषा में नये मुहावरों के माध्यम से बतायी जाती है कि भारत का औद्योगीकरण अंग्रेजों ने किया। इससे बड़ा झूठ और कोई नहीं है। सच तो यह है कि भारतीय उद्योग और उद्यमशीलता को नष्ट करके अंग्रेजों ने अपने फायदे के धंधे यहां लगाए। रेल इसीलिए नहीं बिछाई कि भारतीय जनता को लाभ हो बल्कि इसलिए कि अंग्रेजी फौज का आवागमन जल्दी हो सके। आंखे खोलकर देखने से सब पता चल जाता है कि हमें किस तरह बुद्धू बनाया गया। हमें यह भी पढ़ाया जाता है कि विज्ञान हमें अंग्रेजों ने सिखाया। पर मेरे देशवासियों, सारी दुनिया यह जानती है कि गणित, खगोल विद्या, रसायनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, शल्यक्रिया, धातुकर्म, स्थापत्य, विज्ञान का कौन-सा ऐसा क्षेत्र था जिसमें अंग्रेजों के आने से सदियों पहले से भारतवासी दखल न रखते हों। ईसा के बहुत पहले मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की नगर सभ्यता इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि भारतीय जनता ने एक अत्यंत समुन्नत संस्कृति विकसित की थी, जिसका आधार एक वैज्ञानिक मानस था।

याद है, सत्ता के हस्तांतरण के समय भारत के प्रधानमंत्री द्वारा दिया गया भाषण? पंडित नेहरू ने कहा था, ''अनेक वर्ष पूर्व हमने नियति को निमंत्रण दिया था, एक चुनौती दी थी, भारत को आजाद कराने की। आज मध्य रात्रि को निस्तब्धता में, जब सारा विश्व सो रहा है, तब भारत जागेगा, एक नये भारत का उदय होगा।'' उन्होंने कहा था, "We end today an era of misfortune and India discovers herself again." तब देश की तरूणाई के मन में एक आशा जगी थी-''आह! अब दुर्दिन समाप्त हुए, अब ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि के लिए तप करेंगे ओर देश अपने आपको पहचानेगा, अपनी सुप्त शक्ति को पहचानेगा और अपना भविष्य स्वयं बनाएगा।' संविधान सभा के अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू ने भी कुछ ऐसा ही कहा था, "To all we give the assurance that it will be our endeavour to end poverty and squalor and its companions, hunger and disease, to abolish destructions and exploitation and to ensure decent conditions of living." यह आश्वासन दिया था उन्होंने कि देश की सरकार भारत से दरिद्रता, रोग एवं गंदगी का कलंक मिटाने एवं विभेद तथा शोषण को सदा के लिए समाप्त करने तथा आम आदमी के रहने-सहने की समुचित व्यवस्था करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहेगी। आजादी के इन चालीस वर्षों में कया भारत अपने आपका पहचान सका है? और क्या हमारे कदम बढ़ सके हैं एक ममतायुक्त एवं ममतापूर्ण समाज की निर्मिति की ओर? शायद नहीं।

महात्मा गांधी कहा करते थे, ''जवाहर चाहता है कि अंग्रेज चले जाए, पर अंग्रेजियत बनी रहे, जबकि मैं (गांधी जी) अंग्रेजियत को भगाना चाहता हूं, अंग्रेजों से मेरा कोई बैर नहीं।'' दोनों की मानसिकता का यह अंतर उनके पृथक-पृथक इतिहास-बोध को दर्शाता है और उजागर करता है भारतीय यथार्थ को समझने की, उनकी दृष्टि-भिन्नता को भी। गांधी जी के विचार में अंग्रेजियत

जिस पाश्चात्य औद्योगिक अर्थव्यवस्था की प्रतिनिधि थी, वह शोषण पर आधारित थी और उपनिवेशवाद की प्रतीक थी। यह ढांचा भारतीय नैतिक मूल्यों, समाजार्थिक संरचना एवं जीवन-दृष्टि के लिए घातक था और भारत के अध:पतन का मूल कारण भी था। पर पंडित नेहरू इसी पाश्चात्य औद्योगिक अर्थव्यवस्था को आधुनिकता, प्रगतिशीलता और वैज्ञानिकता का समानार्थी मानते थे और देश को उसी रास्ते पर ले जाना भी चाहते थे। अंग्रेज इस बात को समझता था और इसीलिए उनके प्रधानमंत्री बनने पर ब्रिटिश हुक्मरानों को बहुत संतोष हुआ था। भारत द्वारा ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के सदस्य बने रहने के निर्णय से तो वे उछल पड़े थे। भारत के सम्पर्क का रास्ता पूरी तरह बंद न हो और इंग्लैंड के आर्थिक हितों का संरक्षण किया जा सके, यही तो वे चाहते थे। सुई की नोंक बराबर छेद मिल जाने पर भी ये चालाक निहित स्वार्थी शक्तियां पूरी सेंध लगा लेती हैं, इनका यह चरित्र सदा से रहा है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यापक रूपांतरण होना प्रारम्भ हुआ। नये शक्ति समीकरण उत्पन्न होने लगे और शक्ति का गुरूत्व केन्द्र ब्रिटेन एवं जर्मनी से खिसकर अमेरिका और रूस के मध्य जा पहुंचा। जर्जरित यूरोप ने आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए विज्ञान और तकनीकी का सबल ढूंढ़ा और एक नये अन्तर्राष्ट्रीय अर्थतंत्र का सूत्रपात हो गया। अमेरिका और रूस दो शक्ति गुटों के बीच विश्व को बांटने की प्रक्रिया इसी नयी औद्योगिक प्रणाली ने तीव्र कर दी। नयी तकनीकी ऊर्जा के स्रोतों और प्राकृतिक संसाधनों पर अपना अधिकार जमाए रखना इन दोनों महाशक्तियों के लिए अनिवार्य बन गया। वितरण और स्वामित्व के प्रश्नों पर मतभेद होते हुए भी उत्पादन की प्रणाली में इन दोनों में अद्‌भुत साम्य था। प्रकृति और भूमि के शोषण की जो शुरूआत पूंजीवाद ने की थी, कम्युनिज्म ने उसे बेहिचक आगे बढ़ाया। इस नयी तकनीकी का परिणाम प्रकृति के अमर्यादित दोहन एवं अनियंत्रित उत्पादन तथा विवेकहीन उपभोग के रूप में प्रकट हुआ। नये सामाजिक मूल्य और नये नैतिक मूल्य इसी में से उपजे। नव प्रौद्योगिकी में जिन देशों या समूहों का न्यस्त स्वार्थ विकसित हो गया था उन्होंने अपने अस्तित्व के औचित्य के लिए विकास की एकमात्र परिभाषा आर्थिक उत्पादन में वृद्धि की दर के रूप में स्थापित कर दी। यूरोप के जिन देशों ने यह गोरखधंधा रचा था उनकी जनसंख्या बहुत थोड़ी थी, अत: वे उनके लिए ऐशो-आराम के बहुत से साधन जुटाने में समर्थ हो सके। ये देश अपने को विकसित कहने लगे और शेष विश्व को अर्द्धविकसित या अविकसित या विकासशील देश पुकारने लगे। अमीर और गरीब के पुराने चुभने वाले नाम ही इस नयी शब्दावली द्वारा प्रचलित किए गए, हमें गुमराह करने के लिए। इस शब्दावली में ऋण को सहायता कहते हैं और ब्याज को कहते हैं 'सेवा शुल्क'।

इस नये तंत्र की नींव जिस वैज्ञानिक तर्कवाद पर पड़ी थी उसने मनुष्य और प्रकृति को एक-दूसरे से पृथक माना था। उसकी स्थापना थी कि मनुष्य प्रकृति का निर्बाध शोषण करने को

 ISSN 0976-0849

स्वतंत्र है। वह यह नहीं देख पाय था कि जीवन एक विशेष पर्यावरण की उपज है, और प्रकृति उसकी धात्री है। वह समझ नहीं सका कि मां का पय:पान पोषक होता है, पर मां का रक्त चूसना तो आत्मसात होगा। सीमित पर्यावरण एवं संसाधनों द्वारा असीमित उपभोग एवं आर्थिक विकास दर प्राप्त करने के लिए जिस तकनीकी-आर्थिक (Techno-Economic) तंत्र का आविष्कार किया यगा, उसका मूल उद्देश्य प्रकृति का शोषण करना था, और उसका उत्स ब्रह्माण्ड की यांत्रिक परिकल्पना थी। उच्च जीवन-स्तर के लिए उच्च तकनीकी और उसके लिए अधिकाधिक ऊर्जा-स्रोतों एवं प्राकृतिक संसाधनों को अपने कब्जे में करने की कोशिश करना, इन शक्तियों के अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक हो गया। विश्व जनमत को देखते हुए पुराने ढर्रे का उपनिवेशवाद या खुला आधि पत्य जमाना अब संभव नहीं था, अत: राष्ट्रों की स्वतंत्रता का आभास बनाए रखकर उनकी अर्थव्यवस्था को अपने तंत्र के साथ नत्थी कर लेने की नयी विधा अपनायी इन धूर्तों ने। जिन देशों का खून चूसकर इन महाशक्तियों ने अपनी तकनीकी विकसित की थी, उनको स्थायी रूप से निर्धन बनाए रखने का षड्यंत्र रचा इन फरेबियों ने। जिन्हें अविकसित राष्ट्र के रूप में प्रचारित किया, उनसे कहा गया, ''अरे भाई, हमें देखो, जिस रासते से हमने तरक्की की है, तुम भी उसी रास्ते से क्यों नहीं चलते? आ जाओ हमारे खेमे में, हम तुम्हे पूरी तकनीकी सिखा देंगे, सहायता देंगे, विशेषज्ञ भेजेंगे, तुम्हारे देश में बहार ले आएंगे।'' अगर सीधे से स्वीकार कर लिया तो ठीक है, वरना यह महाशक्ति बने बैठे देश ऐसी राजनीतिक परिस्थिति पैदा कर देंगे कि विवश होकर इन देशों को किसी-न किसी रूप में अपने अर्थतंत्र का एक-न-एक दरवाजा इन कुचक्रियों के लिए खोलना पड़ता ही है।

अब अविकसित या विकासशील देशों को समझाया जाने लगा है कि, ''तुम्हारे सांस्कृतिक मूल्य इस नवीन तकनीकी के प्रसार में बाधक हे। तुम परम्परागत तौर-तरीकों से चिपटे हुए हो, इसीलिए पिछड़े हो। ओ, आधुनिक बनो। अर्थात् नयी तकनीकी-संस्कृतिम को एक साथ स्वीकार करो। एक पैकेज डील कर लो, (इकट्ठा सौदा) अपनी पुरानी पहचान नष्ट कर दो। हमारे अनुरूप अपने को ढाल लो, फिर देखो, हम तुम्हे कितना वैभवशाली बना देंगे?'' कितने ही प्राधिकरण इस काम को बहुत बारीकी से कर रहे हैं, पता भी नहीं चलता कितनी ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, सांस्कृतिक-वैज्ञानिक संधियां, सांस्कृतिक विनिमय के नित नये रूप पर्यटकों की योजनाबद्ध भीड़, और भी भांति-भांति के ललचाने-फुसलाने वाले समारोह, सबका अदृश्य उद्देश्य विकासशील कहलाने वाले देशों को अपनी परम्परा से काटकर नयी तकनीकी-संस्कृति व्यवस्था के अन्तर्गत ढकेलना है। जो एक बार इस जाल में फंस गया, उसका निकलना मुश्किल है। वह विवश कर दिया जाता है इन महाशक्तियों की उतरन पहनने को, उनकी जूठन चाटने को, उनकी तिरस्कृत-बहिष्कृत तकनीकी का कूड़ादान बनने को, उनके अतिरिक्त उत्पादन का उपभोक्ता बनने को और उनकी जहरीली दवाइयों के लिए मिनीपिग बनने को।

अब मेरे 'प्रलाप' का अन्तिम चरण आ पहुंचा है। उन्नीस सौ छियासी तक पहुंचना बाकी है और फिर तो अगली छलांग में बस इक्कीसवीं सदी में जा पहुंचेंगे। याद है न आपको, गांधी जी और नेहरू जी की दृष्टि का अंतर। नेहरू जी के अंग्रेजियत के प्रति मोह से देश दिग्भ्रमित हो सकता है। परम्परा से कट सकता है और प्रवाह-पतित हो सकता है, यह आभास बहुतों को होने लगा था। डॉक्टर मुखर्जी, आचार्य कृपलानी, डॉ. रघुवीर, डॉ. लोहिया, पं. दीनदयाल उपाध्याय सरीखे राजनेताओं ने देश को सावधान करने की चेष्टा की। गांधी जी की हत्या और सरदार पटेल की मृत्यु के बाद कांग्रेस में नेहरू जी पर अंकुश लगाने वाला कोई बचा नहीं। इसलिए पन्द्रह अगस्त को देश द्वारा अपनी पहचान पुनः बनने का संकल्प कहीं खो गया। पश्चिमी तकनीकी प्राप्त करने की हड़बड़ी में हम धीरे-धीरे अपने आपको उनके जाल में फंसाते चले गए। हमने सोचा कि ज्ञान-विज्ञान के नाम पर, औद्योगीकरण के नाम पर हमें जो कुछ वहां से मिल रहा है, वह हमारे हित में है। पर नहीं, हमारे दाता बहुत चालाक थे। उन्होंने हमें जो कुछ दिया, उसके पीछे उनके निहित स्वार्थ काम कर रहे थे। हमारी मदद का तो बस दिखावा ही था। एक उदाहरण द्वारा यह तथ्य समझाना जरूरी है। हमारे यहां चार आई.आई.टी. खुले। चारों ही विदेशी संसाधनों पर आधारित। हमें समझाया गया कि वे संस्थान पश्चिमी तकनीकी को स्वदेशी भूमि पर लगाएंगे। हमारे लिए विशेषज्ञ बनाएंगे, जो देश का औद्योगीकरण करेंगें, हमें मालामाल करेंगे। होड़ मच गई हमारे देश के मेधावी छात्रें में वहां प्रवेश लेने के लिए। बीस वर्षों तक लगातार, भारत के सबसे मेधावी छात्र इन संस्थानों में प्रवेश लेते रहे, विशेषज्ञ बनते रहे और विदेश जाते रहे उनके उद्योगों एवं संस्थानों में काम करने। इन संस्थानों से शिक्षा प्राप्त कर चालीस प्रतिशत तक छात्र अमेरिका चले जाते हैं। कुछ विषय तो ऐसे हैं जिनकी शिक्षा लेने वाले अस्सी से शत-प्रतिशत तक छात्र विदेश चले जाते हैं। पिछले पचीस वर्षों से हमारे देश के लगभग दस हजार प्रतिभावान इंजीनियर और वैज्ञानिक अकेले अमेरिका में ही जा बसे है। अन्य देशों की संख्या मिलाकर शायद कुल सत्तर हजार लोग देश में पढ़कर विदेश का घर भर रहे हैं। एक बात बताऊं, अमेरिका में इन दस हजार विशेषज्ञों को तैयार करने में कम-से कम- दस अरब डालर खर्च करने पड़ते। भारत में यह खर्च दो से ढाई लाख रूपये प्रति छात्र होता है, अतः भारत जैसे गरीब देश से उसकी गाढ़ी कमाई के दो-ढाई अरब रूपये अमेरिका को मुफ्त में पहुंच गए। इन वैज्ञानिकों ने जो अमेरिका की राष्ट्रीय सम्पति में योगदान किया, उसका हिसाब लगाने से माथा फिर जायेगा। अब अगर अमेरिका ने दस-बीस करोड़ रूपये भारत के इन संस्थानों की तरफ फेंक भी दिए तो क्या फर्क पड़ता है! इसी तरह जो आज विदेशी कम्पनियों के साथ तकनीकी स्थानांतरण के हजारों समझौते हो रहे हैं वे भी कल भारतीय श्रम और धन के प्रवाहक बन जाएंगे। लूटे जाने का यह नया ढंग कब समझेंगे भारतवासी? कौन बताएगा उन्हें? कहां से लाऊं आधुनिक अष्टावक्र? यही यह भी कहना चाहूंगा कि आई.आई.टी. हिन्दी को स्वीकार इसीलिए नहीं करता क्योंकि एक बार हिन्दी या कोई भारतीय भाषा वहां आ गई तो आत्मबोध की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी। इसीलिए जब-जब वहां

 ISSN 0976-0849

हिन्दी का स्वर उभरकर कहना चाहेगा, 'नेदं सम्यगिवोपर्वते', तब-तब कहा जायेगा *'तस्माद् वक्रो भवितास्यष्ट कृत्वः।'*

भारत को इक्कीसवीं सदी की तरफ ढकेलने का जो शोर मचाया जा रहा है, वह छल-कपट से भरा हुआ है। वह उन लोगों द्वारा लगाया गया नारा हो जो या तो अनजाने में, या जान-बूझकर पश्चिमी देशों के तकनीकी-सांस्कृतिक अभियान के शिकार हो गए हैं। देश का दुर्भाग्य है कि सत्ता के शीर्ष पर उन लोगों को बैठने का अवसर मिल चुका है, जो भारत की गौरवशाली परम्परा से अनभिज्ञ है। उनमें से बहुत से वे हैं जो किसी-न-किसी रूप में विदेशी निहित स्वार्थों की अग्रदूत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से सम्बन्धित रहे हैं। भारत को उसके मूल सांस्कृतिक प्रवाह से पृथक करने का षड्यंत्र जोरों से चालू है। भारत में उच्च तकनीकी के आविर्भाव द्वारा जो लोग दरिद्रता-निवारण की बात करते हैं, उन्हें कैसे समझाऊं कि यह नया तंत्र और जिस औद्योगिक प्रणाली से यह प्रस्फुटित हुआ है, वह स्वयं पिछले दो सौ वर्षों से किए गए हमारे अमानवीय शोषण से उपजे हैं। हमें दरिद्र बनकर ही इस खर्चीली तकनीक के विकास के लिए पैसा जुटाया गया था। यह हमारी दरिद्रता का निवारण कैसे करेंगी? हम इसलिए गरीब नहीं हुए कि हमारे पास तकनीकी ज्ञान नहीं था, बल्कि हम गरीब इसलिए हैं कि हमारे उद्योग-धंधे, भारतीय नवयुवक को पश्चिमी भौतिक समृद्धि की ऊपरी तड़क-भड़क तथा भारतीय राजनेताओं को सुविधापूर्वक सत्ता पर बने रहने के लिए आवश्यक सहायता का फंदा फेंककर इक्कीसवीं सदी की जिस मोहिनी का स्वागत किया जा रहा है वह केवल उन थोड़े से भारतवासियों को समृद्धि का अमृत पिलाएगी जो अन्तर्राष्ट्रीय निहित स्वार्थों के स्वर में स्वर मिलाकर उनकी धुन पर नाचेंगे। जो इनकार करेंगे और कहेंगे *'नेदं सम्यमिवोपवर्तते'* यह ठीक नहीं हो पा रहा है, उन्हें बेरोजगार, दरिद्र, रोगी, अपाहिज बनकर जीने को मजबूर कर दिया जायेगा।

इतिहास का एक अद्‌भुत तथ्य यह है कि सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों की इतनी पुरानी अविच्छिन्न परम्परा, भारत के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं परिलक्षित नहीं होती और यह भी उतना ही अद्‌भुत है कि इसे नष्ट करने के जितने प्रयत्न हुए हैं उन सबसे हर बार बचकर ही नहीं, अपितु अधिक पुष्ट होकर यह परम्परा और अधिक वेगवती एवं और अधिक ऊर्जस्व होकर वह निकली है। प्रत्येक निहित स्वार्थी आघात को विफल कर देने के लिए यहां अष्टावक्र सदा अवतरित हो जाते हैं। सृष्टि के प्रतीयमान विरोधाभासों में समन्वय की प्रक्रिया द्वारा भारत ने बहुत बार हलाहल को अमृत में बदला है। निहित स्वार्थों पर आधारित वर्तमान तकनीकी-सांस्कृतिक आक्रमण की भी वही नियति होगी, इसमें कोई संशय नहीं है। शोषण से प्रेरित, एकांगी भौतिक समृद्धि से उपजे नैतिक मूल्यों तथा समन्वय और एकात्म जीवन-दृष्टि पर आधारित संतुलित जीवन से प्रकटे सांस्कृतिक मूल्यों के टकराव से जो महान मंथन होगा उसके गरल को पचाकर अमृत वितरण करने का ऐतिहासिक कार्य भारत ही करेगा। विश्व एक बार पुनः आश्चर्यचकित होकर देखेगा कि संसार की

प्राचीनतम आध्यात्मिक संस्कृति एवं नवीनतम भौतिक संस्कृति के संघर्ष की अग्निपरीक्षा में शाश्वत भारतीय जीवन-मूल्य पहले से भी अधिक प्रखर बनकर अधिक पुष्ट होकर, अधिक तेजस्वी बनकर उभरेंगे।

हां, मैं इस बारे में केवल आशावान ही नहीं हूं, अपितु पूर्ण आश्वस्त भी हूं कि यह ऐतिहासिक कार्य भारत द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकेगा। यह जो करोड़ों भारतीय नवयुवक और इन जैसे दुनिया भर में फैले और जो भी हैं, जिन पर अभाव एवं अक्षमताएं लादी गई हैं और जिन्हें विकलांगता का अभिशाप बिना किसी अपराधा के भोगना पड़ रहा है, जिन्हें संज्ञाशून्य करने की सारी कोशिशें चल रहीं हैं, उनमें एक तीव्र छटपटाहट पैदा हो रही है। वे अब अपने आपको पहचानने लग गए हैं। वे बार-बार कह रहे हैं-'*नेदं सम्यगिवोपवर्तते*'। विश्व में यह जो कुछ व्यापार चल रहा है ठीक नहीं है, और वे पूछ रहे हैं निहित स्वार्थों के मठाधीशों से- 'बताओ, कहां है तुम्हारे पॉडित, जिनसे हमें शास्त्रार्थ करना है, जिन्होंने भारतीय मनीषा को वारूणी पिलाकर किसी और की सेवा में भेजने का दुष्चक्र रचा है। सुनाई नहीं दे रहा है उनका तुमुल घोष, कि वे अब और सहन नहीं करेंगे, ज्ञानगंगा को प्रदूषित करने का षड्यंत्र अब ज्ञान और विज्ञान को शोषण का हथियार कदापि नहीं बनने दिया जाएगा और उसे लगाया जाएगा दीन-दुखियों की विकलांगता दूर करने के लिए और मेरी आस्था है कि इन तमाम अष्टावक्रो द्वारा स्थापित मान्यताओं का कोई उत्तर उन दुष्टों के पास नहीं है। वे जब विश्व की इन महाशक्ति कहलाने वाले लोगों से जवाब मांगेंगे और पूछेंगे कि 'किस अधिकार से तुम मानव समाज की इतनी विशाल संख्या को आपाहिज बना रहे हो, किस अधिकार से तुम शाश्वत चिन्तन को अवरूद्ध करना चाह रहे हो, तब इन कारूषों के पास शुद्ध एवं यथार्थ सत्य को उन्मुक्त करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं बचेगा। उस दिन न केवल भारत और समूचे विश्व के शोषितों का अपाहिजपन दूर होगा बल्कि ज्ञान और विज्ञान का शोषण के उपकरण के तौर पर उपयोग भी बंद हो जाएगा।

यह मेरी निष्ठा है कि *इक्कीसवीं सदी के लिए युगानुकूल जीवन-मूल्य भारत उपलब्ध कराएगा। चिरंतन एवं शाश्वत एकात्म दृष्टि से मुक्त मानव इक्कीसवीं सदी में एक कल्याणकारी तकनीकी के रथ पर आरूढ़ होकर भौतिक स्मृति पर आध्यात्मिक नियंत्रण रखता हुआ एक संतुलित जीवन-दर्शन प्रदान करेगा।* भारतीय ज्ञानगंगा के अमृततत्त्व के रूप में प्रवाहित एकात्म मानव-दर्शन समंगा नदी के रूप में इक्कीसवीं शताब्दी में जाने वालों की शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता को दूर करके उनसे कहेगा-'*शुभास्त ते पंथानः*'।

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ स्मृति

सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला

21 अगस्त, 2024 से 27 अगस्त, 2024

(व्याख्यानमाला की संक्षिप्त रिपोर्ट)

पूर्वांचल में शिक्षा और संस्कार की संगमस्थली के रूप में स्थापित एवं प्रतिष्ठित महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर अपने संस्थापकों की स्मृति में अपने स्थापना वर्ष से ही सात दिनों तक चलने वाली इस सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला का आयोजन कर रहा है। महाविद्यालय द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम का उद्देश्य अपनें विद्यार्थियों को पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम के साथ-साथ, सम-सामयिक ज्ञान-विज्ञान, प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परम्परा की गौरव गाथा, व्यक्तित्व विकास, कौशल विकास और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे ज्वलन्त मुद्दों से परिचित कराना है। महाविद्यालय की स्थापना से लेकर 2014 तक यह व्याख्यानमाला युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की पावन स्मृति में होती रही। सितम्बर 2014 में महाविद्यालय के संस्थापक और तत्कालीन गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ब्रह्मलीन हुए। तत्पश्चात् 2015 से यह व्याख्यानमाला उनके पुण्य स्मृति में आयोजित होने लगी। इसी क्रम में इस वर्ष ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के 10वीं पुण्यतिथि के पावन अवसर पर यह व्याख्यानमाला 21 अगस्त, 2024 से 27 अगस्त, 2024 तक आयोजित हुई, जिसकी संक्षिप्त रिपोर्ट आप सबके समक्ष प्रस्तुत है।

उद्घाटन कार्यक्रम (21 अगस्त, 2024)

21 अगस्त को राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज स्मृति सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला कार्यक्रम का उद्घाटन कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम में कार्यक्रम अध्यक्ष के रुप में महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव, मुख्य अतिथि के रूप में महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् के वरिष्ठ सदस्य एवं महानगर के प्रतिष्ठित अधिवक्ता श्री प्रमथनाथ मिश्र जी तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मानित सामाजिक कार्यकत्री श्रीमती शोलम वाजपेयी और गुरु श्री गोरखनाथ स्कूल ऑफ नर्सिंग की प्रधानाचार्य डॉ. डी.एस. अजीथा उपस्थित रहीं। इस अवसर पर विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए मुख्य अतिथि श्री

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज स्मृति सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला के उद्घाटन अवसर पर उपस्थित मंचस्थ अतिथिगण

मुख्य अतिथि अदरणीय श्री प्रमथनाथ मिश्र जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव

प्रमथनाथ मिश्र ने कहा कि राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज सामाजिक समरसता के अग्रदूत थे। जीवन पर्यन्त महन्त जी नें सामाजिक भेद-भाव, छूआ-छूत जैसी सामाजिक कुरीतियों को मिटाने का कार्य किया। वे आजीवन राममंदिर निर्माण के लिए संघर्षरत रहे और उन्हों के आशीर्वाद से आज हम सभी श्री रामलला के भव्य मंदिर को साकार रूप में देख रहे हैं। इस अवसर पर श्रीमती शीलम वाजपेयी जी ने कहा कि भारत एक अत्यन्त गौरवशाली संस्कृति और ज्ञान परम्परा का वाहक देश है। भारत की इस समृद्धशाली संस्कृति

उद्बोधन देतीं विशिष्ट अतिथि श्रीमती शीलम वाजपेयी जी

उद्बोधन देतीं विशिष्ट अतिथि डॉ. डी.एस. अजीथा जी

उद्बोधन देते मुख्य अतिथि श्री प्रमथनाथ मिश्र जी

अध्यक्षीय उद्बोधन देते प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव

पर अनेकानेक आघात वाह्य आक्रमणकारियों द्वारा किए गए पर भारतीय संस्कृति आज भी अपने मूल स्वरूप को बचाए रखी है। महिला सशक्तिकरण पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि भारत को यदि विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में खड़ा होना है, तो नारी स्वावलंबन पर हमें विशेष ध्यान देना होगा। ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज महिला सशक्तिकरण के प्रबल समर्थक थे।

इस अवसर पर गुरु श्री गोरखनाथ स्कूल ऑफ नर्सिंग की प्रधानाचार्य डॉ. डी.एस. अजीथा ने कहा कि ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों के महान संरक्षक थे। वे संस्कार युक्त शिक्षा, महिला सशक्तिकरण तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए आजीवन प्रयासरत रहे।

अध्यक्षीय उद्‌बोधन देते हुए प्राचार्य डॉ. प्रदीप कुमार राव ने कहा कि इस व्याख्यानमाला के अधिष्ठान पर हम सभी को गोरक्षपीठ की यशस्वी परम्परा का स्मरण करते हुए अपने-अपने दायित्वों को पूरी जिम्मेदारी और जवाबदेही के साथ निभाना होगा। इन्हीं दायित्वों के निष्पादन क्रम में महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर अपने स्थापना काल से ही विद्यार्थियों में शिक्षा के साथ संस्कार के बीज रोपित करता आ रहा है। उद्‌घाटन अवसर पर कार्यक्रम का संचालन श्री हरिकेश यादव ने तथा कार्यक्रम की प्रस्ताविकी और अतिथि आभार डॉ. सुबोध कुमार मिश्र ने किया।

व्याख्यानमाला का द्वितीय दिवस (22 अगस्त, 2024)

22 अगस्त को व्याख्यान माला के दूसरे दिन "व्यक्तित्व निर्माण की दिशा" विषय पर मुख्य वक्ता के रूप में किसान पी.जी. कॉलेज, सेवरहीं, कुशीनगर के पूर्व प्राचार्य डॉ. वेद प्रकाश पाण्डेय जी का व्याख्यान हुआ। उपस्थित विद्यार्थियों और शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए डॉ. पाण्डेय ने कहा कि विद्या, विनय, वाणी, वस्त्र और शरीर– ये पाँच अवयव हैं जो किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। उन्होंने कहा कि केवल सुन्दर एवं आकर्षक शरीर ही एक अच्छे व्यक्तित्व का परिचायक नहीं होता। व्यक्तित्व विकास का तात्पर्य मनुष्य

मुख्य वक्ता डॉ. वेद प्रकाश पाण्डेय जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते डॉ. वेंकट रमन

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते डॉ. वेंकट रमन

व्याख्यानमाला का द्वितीय दिवस पर उपस्थित मंचस्थ अतिथिगण

उद्बोधन देते मुख्य वक्ता डॉ. वेद प्रकाश पाण्डेय जी

अध्यक्षीय उद्बोधन देते कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह जी

के सम्पूर्ण आन्तरिक एवं वाह्य शक्तियों के समुचित विकास से है। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए दिग्विजयनाथ पी.जी. कॉलेज के सेवानिवृत्त आचार्य डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह ने कहा कि हम सभी को अपने अन्दर के व्यक्तित्व को पहचानना चाहिए। जिस व्यक्तित्व को हम पहचाननें का प्रयास करते हैं, वह हमारे अंतः क्रियाओं और वाह्य क्रियाओं के रूप में परिलक्षित होता है। कार्यक्रम का संचालन हिन्दी विभाग की अध्यक्ष डॉ. आरती सिंह एवं अतिथि आभार ज्ञापन मनोविज्ञान विभाग प्रभारी डॉ. वेंकट रमन ने किया।

व्याख्यानमाला का तृतीय दिवस (23 अगस्त, 2024)

23 अगस्त को व्याख्यान माला के तृतीय दिवस "भाषायी स्वत्वबोध और हिन्दी" विषय पर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ के पूर्व कार्यकारी अध्यक्ष प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त जी का व्याख्यान हुआ। कार्यक्रम में उपस्थित विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के जनसमूह को सम्बोधित करते हुए प्रो. गुप्त ने कहा कि भाषा द्वारा पहचान, अभिमान और सम्मान प्राप्त

व्याख्यानमाला के तृतीय दिवस पर उपस्थित मंचस्थ अतिथिगण

करना ही भाषायी स्वत्वबोध है। उन्होंने कहा कि हमारे साहित्यों में भाषा को बहुत महत्व दिया गया है। साथ ही सही शब्द बोलना पुण्य और गलत शब्दों का उच्चारण पाप के समान माना गया है। भाषा मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। भाषा के माध्यम से ही हम स्वयं को अपनी परम्पराओं को और अपनी पहचान को स्थापित कर पाते हैं, अर्थात् भाषा संचार क्रांति का पहला साधन है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे पूरी दुनियाँ को एक साथ जोड़ा जा सकता है। भाषा हमें आत्मदृष्टि प्रदान करने के साथ-साथ आत्मबोध करवाती है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् के सम्मानित सदस्य श्री प्रमथनाथ मिश्र ने कहा कि भाषा ही व्यक्ति को पहचानने का प्रथम माध्यम है। यदि हमें अपनें संस्थापकों युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन

मुख्य वक्ता प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते डॉ. विजय कुमार चौधरी

कार्यक्रम अध्यक्ष श्री प्रमथनाथ मिश्र जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते डॉ. विजय कुमार चौधरी

उद्बोधन देते मुख्य वक्ता प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त जी

अध्यक्षीय उद्बोधन देते कार्यक्रम अध्यक्ष श्री प्रमथनाथ मिश्र जी

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करनी है, तो हमें अपने भाषायी आत्मगौरव का सम्मान करना सीखना होगा। कार्यक्रम का संचालन हिन्दी विभाग की सहायक आचार्य डॉ. सुधा शुक्ला और अतिथि आभार ज्ञापन भूगोल विभाग के अध्यक्ष डॉ. विजय कुमार चौधरी ने किया।

व्याख्यानमाला का चतुर्थ दिवस (24 अगस्त, 2024)

व्याख्यानमाला के चतुर्थ दिवस पर उपस्थित मंचस्थ अतिथिगण

24 अगस्त को व्याख्यान माला के चतुर्थ दिवस "हिन्दू-हिन्दुइज्म-हिन्दुत्व: वास्तविकता एवं भ्रांतियाँ" विषय पर आई. आई.टी. कानपुर के मैकेनिकल इन्जीनियरिंग विभाग के आचार्य डॉ. नचिकेता तिवारी का व्याख्यान हुआ। उपस्थित विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए डॉ. तिवारी ने कहा कि हिन्दू, हिन्दुइज्म तथा हिन्दुत्व अलग-अगल शब्द हैं, और इनके अर्थ भी अलग-अगल हैं। औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा हिन्दू धर्म को हीन दिखाने के उद्देश्य से हिन्दुइज्म शब्द गढ़ा गया। हिन्दुइज्म संकीर्ण अर्थों में हिन्दू धर्म की व्याख्या करता है। अत: इस शब्द के प्रयोग में बचना चाहिए। जिस स्थान पर हिन्दू जीवन मूल्यों का क्षरण होता है, वहाँ से हिन्दुस्तान क्षीण हो जाता है। अत: हिन्दुस्तान की मजबूती के लिए हमें अपने हिन्दू जीवन मूल्यों का संवर्द्धन करना ही होगा। जिस प्रकार मनुष्य के बिना मनुष्यत्व नही हो सकता, ठीक उसी प्रकार हिन्दू के बिना हिन्दुत्व की कल्पना भी नहीं की

मुख्य वक्ता डॉ. नचिकेता तिवारी जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते श्री रमाकान्त दुबे

कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. शान्तनु रस्तोगी जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते श्री रमाकान्त दुबे

अध्यक्षीय उद्‌बोधन देते हुए कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. शान्तनु रस्तोगी जी

उद्‌बोधन देते मुख्य वक्ता डॉ. नचिकेता तिवारी जी

जा सकती है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के कुलसचिव प्रो. शांतनु रस्तोगी ने कहा कि हिन्दू हम सभी भारतीयों का भौगोलिक नाम है, जिसे अज्ञानतावश हम समझ नहीं पाते। हिन्दुस्तान में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है। हिन्दू एक वैज्ञानिक शब्द और हिन्दुत्व एक वैज्ञानिक सोच है। कार्यक्रम का संचालन भौतिकी विभाग के सहायक आचार्य डॉ. शैलेन्द्र ठाकुर और अतिथि आभार ज्ञापन रक्षा अध्ययन विभाग के प्रभारी श्री रमाकान्त दूबे ने किया।

व्याख्यानमाला का पंचम दिवस (25 अगस्त, 2024)

25 अगस्त को व्याख्यान माला के पंचम दिवस "संस्कार, संस्कृति एवं ज्ञान परम्परा" विषय पर मुख्य वक्ता के रूप में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के भाषा एवं साहित्य संस्थान के आचार्य प्रो. मज़हर आसिफ का शोधपूर्ण व्याख्यान हुआ। इस अवसर पर मुख्य वक्ता ने कहा कि भारत भूमि संस्कारों की भूमि है। भारतीय ज्ञान परम्परा की रश्मिओं नें बारम्बार वैश्विक सभ्यताओं को आलोकित किया है। उन्होने बताया कि ज्ञान प्राप्ति के लिए शिक्षा मार्ग है तथा संस्कार माध्यम। ज्ञान हम अनुभव से अर्जित करते हैं, जबकि शिक्षा वाह्य रूप से विभिन्न माध्यमों द्वारा ग्रहण की जाती है। ज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से सुसंस्कृत बनता है। भारतीय संस्कृति अपने सर्वजनीय गुणों के कारण विश्व की श्रेष्ठतम्

व्याख्यानमाला के पंचम दिवस पर उपस्थित मंचस्थ अतिथिगण

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

मुख्य वक्ता प्रो. मज़हर आसिफ जी को
स्मृति-चिह्न भेंट करते डॉ. अभय श्रीवास्तव

कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. हर्ष कुमार सिन्हा जी को
स्मृति-चिह्न भेंट करते डॉ. अभय श्रीवास्तव

अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए कार्यक्रम अध्यक्ष
प्रो. हर्ष कुमार सिन्हा जी

उद्बोधन देते मुख्य वक्ता डॉ. मज़हर आसिफ जी

संस्कृति है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य प्रो. हर्ष कुमार सिन्हा ने कहा कि संस्कृति हमारे पूर्वजों की पद्चिन्ह है। जिस प्रकार का ज्ञान, संस्कार, जीवनमूल्य, वैज्ञानिक परम्पराएँ हमें हमारे पूर्वजों से विरासत में मिली है, वैसी ही संस्कृति हमें अपनी भाषा पीढ़ी को देने के लिए कृत संकल्पित रहना चाहिए। हम सभी को निज संस्कृति पर गर्व होना चाहिए। कार्यक्रम का संचालन इतिहास विभाग के अध्यक्ष श्री अनूप कुमार पाण्डेय ने तथा अतिथि आभार ज्ञापन वनस्पति विज्ञान विभाग के प्रभारी डॉ. अभय श्रीवास्तव ने किया।

व्याख्यानमाला का षष्ठम दिवस (26 अगस्त, 2024)

26 अगस्त को व्याख्यान माला के षष्ठम दिवस पर "विद्यार्थी जीवन में योग की

महत्ता" विषय पर भटवली पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर के रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग के सेवानिवृत्त आचार्य डॉ. बलवान सिंह जी का उद्बोधन हुआ। विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए मुख्य वक्ता ने कहा कि योग स्वयं में जुड़े रहने की विद्या है। योग से व्यक्ति न सिर्फ सुन्दर एवं निरोगी काया को प्राप्त करता है, अपितु स्वस्थ्य मस्तिष्क का स्वामी भी बनता है। योग मनुष्य को प्रकृति से जोड़ता है। विद्यार्थी जीवन में आने वाली अनेक शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं का निदान योग के माध्यम से सम्भव है। योग विद्यार्थी के जीवन में महानता के गुणों को सृजित एवं विकसित करने का माध्यम है।

षष्ठम दिवस पर मंचस्थ अतिथि एवं शिक्षकगण

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद के सदस्य डॉ.

षष्ठम दिवस पर 'विद्यार्थी जीवन में योग की महत्ता' विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत करते डॉ. बलवान सिंह

षष्ठम दिवस पर अध्यक्षीय उद्बोधन देते डॉ. रामजनम सिंह

षष्ठम दिवस पर कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. रामजनम सिंह को स्मृति चिह्न भेंट करते श्री हरिकेश यादव

षष्ठम दिवस पर मुख्य वक्ता डॉ. बलवान सिंह को स्मृति चिह्न भेंट करते श्री हरिकेश यादव

ISSN 0976-0849
Peer Reviewed Referral Volume

रामजनम सिंह ने कहा कि योग जीव को परमात्मा से जोड़ता है। हमें अपने जीवन में मन को नियंत्रित करने के लिए ध्यान करना आवश्यक है और यह हमें योग एवं प्राणायाम से प्राप्त हो सकता है। हम सभी को अपने दैनिक दिनचर्या में योग को एक अनिवार्य अंग के रूप में समाहित करना चाहिए। कार्यक्रम का संचालन मनोविज्ञान विभाग के प्रभारी डॉ. वेंकट रमन तथा अतिथियों के प्रति आभार ज्ञापन राजनीतिक शास्त्र विभाग के अध्यक्ष श्री हरिकेश यादव ने दिया।

व्याख्यानमाला का समापन समारोह (27 अगस्त, 2024)

27 अगस्त का सप्त दिवसीय व्याख्यानमाला का समापन समारोह आयोजित किया गया। कार्यक्रम में कार्यक्रम अध्यक्ष के रूप में दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के प्राणिविज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य प्रो. दिनेश कुमार सिंह एवं मुख्य अतिथि के रूप में हेमवतीनन्दन बहुगुणा चिकित्सा सेवा विश्वविद्यालय, देहरादून, उत्तराखण्ड के माननीय कुलपति प्रो. मदनलाल ब्रह्मभट्ट उपस्थित रहे। इस अवसर पर विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए मुख्य अतिथि ने "विश्व को भारत की देन" के संदर्भ में विस्तारपूर्वक बताया। उन्होंने कहा कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता विश्व की प्राचीनतम् संस्कृति और सभ्यता है। संपूर्ण विश्व को भारत ने समय-समय पर ज्ञान-विज्ञान, तकनीकि, दर्शन, चिकित्सा, रसायन, खगोल, ज्योतिष, गणित, व्याकरण आदि विधाओं का भेंट दी है। वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत जैसे परमज्ञान प्रदाता ग्रंथों की सौख भारत ने विश्व को दी है। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वलभी जैसे उच्च गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक संस्थान, पाणिनी, पतंजलि, कौटिल्य, कालिदास, वात्सायन, चरक और सुश्रुत जैसे विद्वान इसी भूमि में हुए। सभी प्रमुख वैज्ञानिक आविष्कार भारत में ही हुए। आधुनिक काल के सभी वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों की पृष्ठभूमि और बीज इसी भूमि से ही प्रस्फुटित हुए हैं। समग्रतः भारत ने पूरी दुनिया को विकास के मार्ग पर निरन्तर पथ प्रदर्शित किया है।

व्याख्यानमाला के समापन समारोह के अवसर पर उपस्थित मंचस्थ अतिथिगण

मुख्य वक्ता प्रो. मदनलाल ब्रह्मभट्ट जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते डॉ. विजय कुमार चौधरी

कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. दिनेश कुमार सिंह जी को स्मृति-चिह्न भेंट करते डॉ. विजय कुमार चौधरी

अध्यक्षीय उद्‌बोधन देते हुए कार्यक्रम अध्यक्ष प्रो. दिनेश कुमार सिंह जी

उद्‌बोधन देते मुख्य वक्ता प्रो. मदनलाल ब्रह्मभट्ट जी

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए प्रो. दिनेश कुमार सिंह ने कहा कि भारत ने विश्व को विश्व बन्धुत्वता का पाठ पढ़ाया। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सीख दी और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' का उपदेश दिया। प्रो. सिंह ने आगे कहा कि हमारी ज्ञान परम्परा के वाहक वेद हैं। वेद समग्र मानवजाति के उत्थान और परिमार्जन का ज्ञान देते हैं। वेदों का अध्ययन हमारी युवा पीढ़ी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह आज के युवाओं की जिम्मेदारी है कि वो इस उत्तरदायित्व को अपने सशक्त कंधो पर धारण कर उसका प्रसार करे। इस दौरान सात दिनों तक चलने वाली इस व्याख्यानमाला का प्रतिवेदन भूगोल विभाग के अध्यक्ष डॉ. विजय कुमार चौधरी ने प्रस्तुत किया। कार्यक्रम का संचालन प्राणिविज्ञान विभाग के सहायक आचार्य श्री विनय कुमार सिंह ने किया।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

प्रतिष्ठित समाचार पत्रों में सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला की कवरेज

अमर उजाला

सामाजिक समरसता के अग्रदूत रहे महंत अवेद्यनाथ : प्रमथनाथ मिश्र

एमपी पीजी कॉलेज, जंगल धूसड़ में ब्रह्मलीन महंत अवेद्यनाथ स्मृति व्याख्यानमाला का उद्घाटन

भारत ने ही विश्व को सबसे पहले सभ्यता की राह दिखाई: प्रो. मदनलाल भट्ट

एमपी पीजी

सामाजिक समरसता के अग्रदूत थे महंत अवेद्यनाथ

हिन्दुस्तान

जीवन की सभी अवस्था में योग का महत्व

व्याख्यान

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ सामाजिक समरसता के अग्रदूत-प्रमथनाथ मि

◆महाराणा प्रताप महाविद्यालय में राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ की स्मृति में सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला का उद्घाटन ◆शिक्षा के साथ संस्कार शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य-डा. प्रदीप कुमार राव

हिन्दुस्तान

ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिक्षा मार्ग है और संस्कार माध्यम: प्रो. मजहर

आध्यात्मिक पद्धति की उपज का हर क्रियाशील हिंदू

योग स्वयं से जुड़े रहने की विद्या : डॉ. बलवान

दैनिक जागरण गोरखपुर, 22 अगस्त, 2024

सामाजिक समरसता के अग्रदूत थे महंत अवे

भाषा द्वारा पहचान, अभिमान और सम्मान प्राप्त करना ही भाषायी स्वत्वबोध है-प्रो. सदानन्द गुप्त

◆महाराणा प्रताप महाविद्यालय में राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ की स्मृति में सात दिवसीय व्याख्यान-माला का तृतीय दिवस

◆भाषा, संस्कृति, हिन्दुत्व, गौ व राष्ट्र प्रेम जीवन में आवश्यक-प्रमथनाथ मिश्र

GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

1. Contribution should be submitted in duplicate, the first two impressions of the typescript. It should be typed in font Walkman-Chanakya (Hindi) and in Times New Roman (English) on a quarter or foolscap sized paper, in double-space and with at least one and a half inch margin on the right. Two copies of a computer printout along with a CD are preferred. They should subscribe strictly to the Journal format and style requirements.

2. The cover page of the typescript should contain: (i) title of the article, (ii) name (s) of author(s), (iii) professional affiliation, (iv) an abstract of the paper in less than 150 words, and (v) acknowledgements, if any. The first page of the article must also provide the title, but not the rest of the item of cover page.

3. Though there is no standard length for articles, a limit of 5000 words including tables, appendices, graphs, etc., would be appreciated.

4. Tables should preferably be of such size that they can be composed within one page area of the Journal containing about 45 lines, each of about 85 characters (letter/digits). The source(s) should be given below each table containing data from secondary source(s) or results from previous studies.

5. Figures and charts, if any, should be professionally drawn using such materials (like black ink on transparent papers) which allow reproduction by photographic process. Considering the prohibitive costs of such process, figures and charts should be used only when they are most essential.

6. Indication of notes should be serially numbered in the text of the articles with a raised numeral and the corresponding notes should be given at the end of the paper.

7. A reference list should appear after the list of notes. It should contain all the articles, books, reports, etc., referred in the text and they should be arranged alphabetically by the names of authors or institutions associated with those works.

   (a) Reference to books should present the following details in the same order: author's surname and name (or initials), year of publication (within brackets), title of the book (underlined/italic), place of publication. For example:

   Chakrabarti, D.K. (1997), *Colonial Indology: Socio-politics of the Ancient Indian Past*, pp. 224-25, New Delhi

   (b) Reference to institutional publications where no specific author(s) is (are) mentioned should present the following details in the same order. institution's name, year of publication (within brackets), title of the publication (underlined/italic), place of publication. For example:

   Ministry of Human Affairs (2001), *Primary Census Abstract*, New Delhi, pp. xxxviii.

   (c) Reference to articles in periodicals should present the following details in the same on: the author's surname and name (or initials), year of publication (in brackets), title of the article (in double quotation marks), title of periodical (underlined/italic), number of the volume and issue (both using Arabic numerals); and page numbers. For example:

   Siddiqui, F.A. and Naseer, Y. (2004), "Educational Development and Structure of Works participation in western Uttar Pradesh", *Population Geography*, Vol. 26, Nos. 1 & 2, pp. 25-26.

   (d) Reference in the text or in the notes should simply give the name of the author or institution and the year of publication, the latter within brackets; e.g. Roy (1982). Page numbers too may be given wherever necessary, e.g. (Roy 1982: pp. 8-15).

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

"

हिन्दू जीवन पद्धति दुनिया की श्रेष्ठतम जीवन पद्धति है। हमारे ऋषियों महर्षियों ने अनेक पीढ़ियों की तपस्या से मानवता को सुख और शान्ति प्रदान करने वाली संस्कृति का विकास किया। मनुष्य की कौन कहे इस सृष्टि के चर-अचर सभी में ईश्वर का दर्शन किया और इसका उपदेश दिया। ऐसी श्रेष्ठतम् संस्कृति में छूत-अछूत, ऊँच-नीच, पुरुष-महिला विभेद की बात हास्यास्पद लगती है। यह हिन्दू समाज की विकृति है जिसे दूर किए बगैर हिन्दू संस्कृति के तेजोमय प्रकाश का दर्शन नहीं किया जा सकता।

- राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

"

ISSN 0976-0849

Published by Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)
E-mail : vimarshmppg@gmail.com
Published at Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur